यजुर्वेद

...में यजुर्वेद द्वितीय वेद है। कर्मकाण्ड प्रधान ...द में जहां यज्ञों और यज्ञ के विधानों का वर्णन ...ा ज्ञान-विज्ञान, आत्मा-परमात्मा तथा समाजो-पयो... । सम्पूर्ण ज्ञान भी है।

यजुर्वेद का ज्ञान जन-साधारण तक पहुँचे इसी उद्‌देश्य से यहाँ उसे सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

22-12

यजुर्वेद

Pg 160

पूर्वकथन

भारतीय-अध्यात्म-मनीषा के द्वारा प्रतिपादित तीन काण्डों—ज्ञान, कर्म और उपासना में से यजुर्वेद मूलतः कर्मकाण्ड का ग्रन्थ है। व्यवहार में प्रचलित गणना-क्रम में चार वेदों में यह द्वितीय वेद है, किन्तु मत्स्य, कूर्म आदि पुराणों के कथनों के आधार पर वेदरूप ईश्वरीय ज्ञान केवल एक ही है और आरम्भ में वह यज्ञात्मक यजुर्वेद के रूप में एक ही था। फिर यथासमय वेदव्यास ने उसे चार भागों में विभक्त कर दिया।

'यजुष्' शब्द की व्युत्पत्ति है—'इज्यते अनेन इति यजुष्।' अर्थात् जिनके द्वारा यज्ञ किया जाय, वे यज्ञीय मन्त्र यजुर्मन्त्र हैं। जिन मन्त्रों में चरण, मात्रा और अवसान विषयक कोई नियम न हो, वे गद्य-मन्त्र यजुर्मन्त्र कहे जाते हैं। इस प्रकार यजुर्वेद में यज्ञीय मन्त्र हैं और यज्ञ का वर्णन एवं प्रतिपादन है तथा यह ग्रन्थ मुख्यतः कर्मकाण्ड का ही ग्रन्थ माना जाता है। यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—तैत्तिरीय शाखा अथवा कृष्ण यजुर्वेद और वाजसनेयी शाखा अथवा शुक्ल यजुर्वेद।

यज्ञ का अर्थ है—'इज्यते हविः दीयते यत्र' अथवा 'इज्यन्ते देवता अत्र'। अर्थात् जहाँ हवि दी जाय अथवा जहाँ देवताओं को हवि दी जाय, वह यज्ञ है। यह यज्ञ का व्युत्पत्तिपरक सामान्य अर्थ है। किन्तु, व्यापक अर्थों में यज्ञ शब्द उन सब व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियाओं तथा व्यवहारों को अपने में समेटता है, जो व्यक्ति अथवा समाज के उपकार के लिए किये जाते हैं। यथा—ज्ञानदान, दृष्टिदान, धनदान, अन्नदान, उचित-पथ-निर्देशन, अभावग्रस्त असहाय की सहायता, दुःखी का दुःख दूर करना, रोगी-सेवा, गुरु एवं गुरुजनों की सेवा आदि। इसीलिए कर्मकाण्डप्रधान इस यजुर्वेद में जहाँ अनेक यज्ञों का वर्णन, यज्ञ-विधान का वर्णन है, वहीं समाजनीति, व्यवहारनीति, राजनीति, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, धर्माधर्म, सृष्टि-प्रक्रिया, राज्याभिषेक, राजा के गुण, प्रजा-राजा का व्यवहार, राजा-प्रजा के कर्त्तव्य, राज्य-स्वराज्य-साम्राज्य, ब्रह्मचर्य, वीर्य-रक्षण, शिल्प, कृषि, व्यापार, समाज-संगठन आदि का भी उत्कृष्ट रूप में वर्णन मिलता है।

यज्ञीय देवताओं में इन्द्र, अग्नि, इन्द्राग्नि, मित्रावरुण, वरुण, वसु-रुद्र-आदित्य-मरुद्गण, अर्यमा, यम, निऋर्ति, सविता, अश्विनीकुमार, वायु, सरस्वती और सोम आदि प्रमुख हैं। यहाँ हमने यज्ञ-मन्त्रों का प्रमुख [illegible] कर्मकाण्डपरक अर्थ ही किया है; किन्तु कहीं-कहीं [illegible]

भिन्नार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। कर्मकाण्डपरक अर्थों में तो अभिधा द्वारा उक्त देवताओं का अर्थ ज्यों का त्यों है; किन्तु जहाँ प्रतीकार्थ लिया गया है, वहाँ अग्नि, इन्द्रादि पदों का संकेतित अर्थ देते हुए भिन्नार्थ प्रस्तुत किया गया है। यथा—अग्नि शब्द, अग्नि का वाचक होने के साथ-साथ परमात्मा, अश्व, विद्युदग्नि तथा अन्य अग्नियों को भी संकेतित करता है। इन्द्र शब्द इन्द्र देवता, परमात्मा, विद्युतादि के अर्थ में भी है। सूर्य; सूर्य देवता भी है, सूर्यात्मक ब्रह्म भी है। 'अश्व' शब्द से अग्नि, विद्वान्, यज्ञ लक्षित हैं। 'ग्रह' शब्द से यज्ञीय सामग्री बोधित है। 'इष्टका' शब्द का अर्थ है—इष्ट फल देने वाली यज्ञ-सामग्री अथवा वेदी की ईंटें। चौबीसवें अध्याय में जहाँ पशुओं को देवताओं से सम्बन्धित बताया है अथवा देवताओं के लिए बताया है, वहाँ यह तात्पर्य है कि उन पशुओं में उन-उन देवों के गुण हैं। पच्चीसवें अध्याय में २१ से ४५वें मन्त्र तक जो अश्वमेध का वर्णन है अथवा अन्यत्र जहाँ भी अश्व अथवा अश्व के अंगों का वर्णन है—अश्व के बलिदान की बात कही गयी है, वहाँ भौतिक अश्व से तात्पर्य नहीं है बल्कि वह 'अज' अश्व है यानी सर्वव्यापक परमात्मा का ही 'अज' अश्व के रूपक से वर्णन है। चालीसवाँ अध्याय आत्मा-परमात्मा-ब्रह्म से ही सम्बन्धित है।

यजुर्वेद में चालीस अध्याय हैं और उन सब अध्यायों में कुल मिला कर उन्नीस सौ पिचहत्तर मन्त्र हैं। यजुर्वेद के मन्त्र अनुष्टुप, जगती, बृहती, पंक्ति, गायत्री त्रिष्टुबादि छन्दों में बद्ध हैं, और कुछ छन्द-बन्धन-मुक्त यानी गद्यमन्त्र भी हैं।

अलकारों में उपमा, रूपक एवं सांगरूपक आदि प्रमुख हैं। यजुर्वेद में सांगरूपक तो बड़े सटीक और उत्कृष्ट हैं। जैसे अध्याय १७ के ९४वें मन्त्र में यज्ञ पुरुष का रूपक तथा २४वें अध्याय में विराट् अश्व का रूपक हृदयग्राही हैं। अलंकारों के उपमान प्रायः याज्ञिक परिवेशीय ही हैं। यज्ञ के उपकरणों, पात्रों, कुशा, जल, हवि आदि का मानवीकरण करके वर्णन किया गया है, मानो श्रद्धारोपण से ये निर्जीव भी सजीव हो गये हैं।

यजुर्वेद के विषय एवं ज्ञान को जन साधारण तक लघु पुस्तिका के रूप में हिन्दी में पहुंचाने का यह प्रयास है अतः यहाँ संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति का भी यथास्थान सहारा लिया गया है। हमारे इस प्रयास से यदि जन-साधारण वेद के निकट पहुंच सकें, तो हम अपने को सफल मानेंगे।

विनीत प्रस्तोता :

राजबहादुर पाण्डेय

प्रथम अध्याय

ऋषि : प्रजापति।

हे मनुष्यो ! सविता देव (परमात्मा) तुम्हारे प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियों को यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों से लगाएँ। हम उत्तम-पदार्थों की प्राप्ति के लिए दाता सविता का आश्रय ग्रहण करते हैं। तुम भी ऐसा ही करके उन्नति करो। हे भगवान् ! पृथिवी आदि लोक हमें स्वस्थ इन्द्रियाँ, पशु एवं उन्नति के साधन प्राप्त कराएँ। हमें और हमारे पशुओं, धनों और सन्तानों को कोई हानि न पहुँचाएँ। पदार्थ हमें सुख देने वाले हों ॥१॥

हे पुरुष ! शुद्धि के हेतु, वायु को सर्वत्र फैलाने वाले, संसार के धारक और सुख बढ़ाने वाले यज्ञ का त्याग मत कर ॥२॥

संसार के धारक, शुद्धिकारक, सुखदाता यज्ञ को सवितादेव पवित्र करें। हे परमेश्वर ! हमें यज्ञ से पवित्र कीजिए ॥३॥

हे परमेश्वर ! मैं तीन प्रकार की वेद वाणियों को धारण करना चाहता हूँ—वह जो विद्या प्राप्ति है; वह जो अनेक क्रियाओं को देने वाली है और तीसरी वह जो शरीर एवं आत्मा को सुख देने वाली है। हे परमात्मा ! मेरे यज्ञ के हव्य की रक्षा कीजिए ॥४॥

हे व्रतपति अग्नि ! (परमेश्वर !) मैं सत्य का व्रत लेना चाहता हूँ। मेरे व्रत की रक्षा कीजिए। मैं उस व्रत के पालन में समर्थ होऊँ और नियम पर चलूँ ॥५॥

अच्छे कर्म करने की आज्ञा तुझे कौन देता है ? वह परमेश्वर ही ऐसी आज्ञा देता है। वह तुझे सद्‌गुण और सद्विद्या प्राप्ति की आज्ञा देता है ॥६॥

मैं दुष्टों को सन्तापयुक्त करूँ, उन्हें निर्मूल करूँ। और, इस प्रकार सुखद स्थान एवं अपार सुख प्राप्त करूँ ॥७॥

हे परमेश्वर ! आप दोषनाशक एवं रक्षक हैं। इसलिए विद्वानों के सुखदाता, संसार को विद्याओं से पूर्ण करने वाले और स्तुति योग्य आपकी उपासना करते हैं। आप दुष्टों को ताड़ित कीजिए। हे मनुष्य ! तू अग्नि की स्तुति कर और चोर तथा दुष्टों को नष्ट कर ॥८॥

हे ऋत्विक् ! तुम हविर्धान (यज्ञ) को बढ़ाओ, उसका त्याग न करो। तुम पंचकर्मों से हव्य को अग्नि में हवन करो। सूर्य उस हव्य को

वायु के द्वारा शुद्ध करने के लिए अन्तरिक्ष में भेजे ॥९॥

सुखदायक परमेश्वर के द्वारा उत्पन्न जगत् में प्राण-वायु के ग्रहण और त्याग से अग्नि-विद्या के सिद्ध करने के लिए मैं विद्वानों से स्तुत्य कर्म को स्वीकार करता हूँ और अग्नि-जल की विद्या से विद्वानों ने जिन कर्मों को चाहा है, उनके फल को स्वीकार करता हूँ ॥१०॥

मैं संसार के प्राणियों के दुःख-विनाश के लिए पदार्थों के रक्षक अग्नि की स्थापना करता हूँ। श्रेष्ठ कर्मों को करने वाला मैं अनेक सुखों को देखूं। मेरे स्वजन समृद्ध हों। मैं अग्नि का कभी त्याग न करूँ ॥११॥

हे विद्वानो ! परमेश्वरोत्पन्न इस जगत् में पवित्र करने वाली सूर्य-रश्मियों से प्राणापान की गति और जल पवित्र हों। मैं यज्ञ में जलों से याज्ञिकों को पवित्र करता हूँ ॥१२॥

जैसे इन्द्र वृत्र के वध के लिए जलों का वरण करते हैं; जैसे जल वायु का वरण करते हैं; हे मनुष्यो ! तुम भी जलों को स्वीकारो और शुद्ध होओ। मैं शुद्धिकारक यज्ञ करता हूँ और उसे मेघमण्डल में पहुँचाता हूँ। यज्ञ से वे जल शुद्ध हों ॥१३-१४॥

हे मनुष्यो ! तुम्हारा घर सुखद हो, उससे दुष्ट-शत्रु दूर हों। तुम यज्ञ करने वाले होओ और यज्ञ से वायु-जल को शुद्ध करते हुए संसार के सुख को बढ़ाओ। हे विद्वानो ! तुम हमें यज्ञ का उपदेश करो। हम वर्षाकारक उस यज्ञ को जानें। यज्ञ से दुष्टों और शत्रुओं का नाश हो ॥१५-१८॥

हे मनुष्यो ! तुम सुखदायक और दुष्टविनाशक यज्ञ को जानो। यज्ञ अन्तरिक्ष और पृथिवी की त्वचा के समान है। यज्ञ से बुद्धि वृद्धि को प्राप्त होती है ॥१९॥

यज्ञ से शुद्ध पदार्थ, बल, सुख तथा दृढ़ आयु प्राप्त होती है। यज्ञ नित्य करना चाहिए और ईश्वर की स्तुति नित्य करनी चाहिए ॥२०॥

जैसे सविता (परमात्मा) के बनाये संसार में मैं यज्ञ का विस्तार करता हूँ, हे मनुष्यो ! तुम भी नित्य यज्ञानुष्ठान करो। जैसे जल ओषधियों को बढ़ाता है, वैसे हम भी यज्ञ से वायु और जलों को शुद्ध करें ॥२१॥

हे मनुष्यो ! जैसे मैं इस सुखदायक यज्ञ का विस्तार करता हूँ, वैसे तुम भी यज्ञानुष्ठान करो। यज्ञ की हवि से संसार में सुख उत्पन्न होता है। यज्ञाग्नि तुम्हारे शरीर को पुष्ट करे ॥२२-२३॥

सविता देव (परमात्मा) की प्रेरणा से, सूर्य-चन्द्र तथा पूषा के

द्वारा दिव्य सुख प्राप्त कराये जाने की इच्छा से मैं यज्ञ करता हूँ ।।२४।।

हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से मैं यह जो यज्ञ कर रहा हूँ, वह वर्षा करने वाले उस मेघ को प्राप्त हो, जो वृष्टि रूप में गुणों को और प्रकाश को वर्षाता है । जो हमसे या हम जिससे द्वेष करते हैं, उसको हमारे यज्ञ का फल बन्धन में डाले ।।२५।।

हे देव सविता ! पृथिवी पर देव-भजन से शत्रुओं का नाश हो । हम उत्तम गुणों को प्राप्त करें । हम वेदवाणी को सुन्दरता से प्रकट करें । हम जिससे या जो हमसे द्वेष करता है, हे सविता देव ! आप इस पृथिवी पर उसे बन्धनों में बाँधिए । हे दुष्ट पुरुष ! तू उन्नति को प्राप्त न हो । तेरा विद्या रूपी रस तुझे आनन्द न दे । जैसे यह सूर्य का प्रकाश पृथिवी के समान अन्तरिक्ष को भी सींचता है, वैसे ईश्वर तुम्हारी कामना को वर्षाएँ । जो हमसे द्वेष तथा हम जिससे द्वेष करते हैं, उन्हें सविता देव बन्धनों में बाँधें ।।२६।।

जिस यज्ञ से यह पृथिवी शोभायमान, सुख उत्पन्न करने वाली; अन्न वाली और प्रशंसनीय रसों वाली होती है, उस यज्ञ को मैं गायत्री आदि छन्दों से सिद्ध करता हूँ और भौतिक अग्नि को ग्रहण करता हूँ ।।२७।।

हे जगदीश्वर ! आपने प्राणियों को जीवन देने वाले अन्नादि पदार्थों से युक्त पृथिवी को ऊपर उठाकर चन्द्रलोक के समीप स्थापित किया है । इसी कारण उस पृथिवी पर आकर मनुष्य नित्य यज्ञानुष्ठान करते हैं तथा शत्रुओं को जीतकर राज्य को तथा विभिन्न पदार्थों को प्राप्त करते हैं । हे मनुष्य ! तू भी ईश्वर-पूजन एवं शत्रुओं का नाश कर ।।२८।।

मैं संग्राम में विघ्न डालने वाले और सत्य विरोधियों को दण्ड देने के लिए सेना और युद्ध-साधनों को शुद्ध करता हूँ । उस सेना मे अवगुणी अपराधियों को निकालने के लिए सेना को उत्तम-उत्तम शिक्षाओं से शुद्ध करता हूँ ।।२९।।

हे जगदीश्वर ! आप पृथिवी के पदार्थों को उत्पन्न करने वाले हैं और पदार्थों में व्यापक भी हैं । आप भौतिक अग्नि के जिह्वा रूप हैं । विद्वानों के लिए स्थान, नाम और जन्म की प्राप्ति के लिए और यजुर्वेद के मन्त्रों के अर्थ को प्रकाशित करने के लिए मैं अन्न को ज्ञान रूपी नेत्रों से देखता हूँ । आप मेरे पूजन को प्राप्त होइए ।।३०।।

जो यज्ञ परमेश्वर के द्वारा उत्पन्न संसार में निरन्तर पवित्र सूर्य

की किरणों के साथ मिलकर पदार्थों को शुद्ध करता है, मैं उस यज्ञ में यज्ञकर्त्ता को पवित्र करता हूँ। हे ब्रह्मन्! क्योंकि आप प्रकाशवान्, शुद्ध, वन्दनीय और विद्वानों के प्रिय हैं अतः मैं आपका ही आश्रय लेता हूँ ॥३१॥

द्वितीय अध्याय

ऋषि : प्रजापति !

हे इध्म ! (यज्ञीय काष्ठ !) तुम अग्नि में वास करते हो। मैं तुम्हें जल से शुद्ध करता हूँ। हे वेदी ! तुम जल की नाभि हो, तुम्हें जल से शुद्ध करता हूँ। हे दर्भ ! मैं तुम्हें जल से शुद्ध करता हूँ ॥१॥

हे जल ! तुम इस वेदी को सींचो। हे कुशाओ ! तुम यज्ञ की शिखा हो। हे वेदी ! तुम मृदु हो। देवों के बैठने के लिए मैं तुम्हारे समीप कुशासन बिछाता हूँ। ये हवियाँ परमात्मा के लिए स्वाहुत हों ॥२॥

हे परिधि ! तुम पश्चिम दिशा में स्थापित होओ। विश्वावसु तुम्हारे रक्षक हों। तुम यजमान की राक्षसों से रक्षा करो। यज्ञ में भुवनपति प्रस्तुत हों। हे परिधि, तुम इन्द्र की दक्षिण भुजा हो। अतः यजमान की विघ्नों से रक्षा करो। हे परिधि ! मित्र वरुण, वायु और आदित्य उत्तर दिशा में तुम्हारी रक्षा करें। तुम यजमान की विघ्नों से रक्षा करो ॥३॥

हे अग्नि ! महान् तुम धन-संतान एवं समृद्धिदाता हो। हम तुम्हें समिधाओं से प्रदीप्त करते हैं ॥४॥

हे इध्म ! तुम अग्नि को प्रदीप्त करते हो। हे सूर्य ! पूर्व दिशा से आगत विघ्नों से हमारी रक्षा करो। हे कुश ! तुम सविता देव की भुजाएँ हो। तुम मृदु हो। मैं देवताओं के बैठने को तुम्हें बिछाता हूँ ॥५॥

हे जूहू ! हे उपभृत ! घृतपूर्ण तुम आसनस्थ होओ। हे स्रुवा ! हे हव्य ! घृतपूर्ण तुम आसनस्थ होओ। हे विष्णु ! फल के निमित्त इस हव्य और यज्ञ तथा यजमान की रक्षा करो। हे परब्रह्म ! मुझ अध्वर्यु की रक्षा करो ॥६॥

अन्नोत्पादक हे अग्नि ! अन्नोत्पादन के विघ्नों की शान्ति के लिए मैं तुम्हारा शोधन करता हूँ। यज्ञानुष्ठान के प्रति अनुकूल पितरों और देवों को मेरा नमन। हे जूहू ! हे उपभृत, तुम सावधानी से घृत धारण करो ॥७॥

हे विष्णु ! मैं वेदी पर पैर नहीं रखता अतः यह दोष मुझे न लगे। हे अग्नि ! मैं तुम्हारे निकट बैठता हूँ। हे वसुमती ! तुम यज्ञ स्थानरूप हो। यज्ञस्थान से उठकर शत्रुहनन करने वाले इन्द्र के लिए ही यह यज्ञ हो रहा है ॥८॥

हे अग्नि ! तुम यज्ञहोता और यज्ञदूत हो। द्यावापृथिवी तुम्हारी रक्षा करें; तुम उनकी रक्षा करो। देवों के सहित इन्द्र हमारी हवि से सन्तुष्ट होकर हमारा यज्ञ एवं अभीष्ट पूर्ण करें ॥६॥

इन्द्र यजमान को दिव्य-पार्थिव-धन दें, इच्छित पूर्ण करें और कामना फलित करें। स्तुति की गयी पृथिवी माता मुझे हविशेष के भक्षण की अनुमति दें। मैं अग्नि रूप से उसका भक्षण करूँ ॥१०॥

पिता रूप सविता मुझे हविशेष के भक्षण की आज्ञा दें, मैं उसका भक्षण करूँ। हे प्राशिमी ! सविता देव की प्रेरणा से अश्विद्वय की भुजाओं तथा पूषादेव के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता एवं अग्नि देव के मुख से भक्षण करता हूँ ॥११॥

हे सविता ! तुम्हारे निमित्त ही यह यज्ञ किया जा रहा है। इस यज्ञ की, यजमान की और मेरी रक्षा कीजिए ॥१२॥

यह आज्यघृत सविता देव की सेवा करे। बृहस्पति यज्ञ का विस्तार एवं उसकी रक्षा करें। देवता इस यज्ञ से तृप्त हों। सविता देव यजमान के प्रतिकूल न हों ॥१३॥

हे अग्नि ! तुम इस समिधा से प्रदीप्त हो और हमें प्रवृद्ध एवं समृद्ध करो। तुम्हारे समृद्ध होने पर हम सन्तानादि से सम्पन्न होंगे। अग्नि-सोम देवता यज्ञदूषक राक्षसों को नष्ट करें ॥१४॥

अग्नि-सोम ने इस हवि को ग्रहण कर लिया है। इसीलिए मैं विजय प्राप्त कर सका हूँ। पुरोडाश, जूहू उपभृत ने मुझे यज्ञ-कर्म में उत्तम हित किया है। हमारे राक्षस-शत्रुओं को अग्नि-सोमदेव तिरस्कृत करें ॥१५॥

हे मध्यम परिधि ! मैं वसुओं का यज्ञ करने के लिए तुम्हें घृतसिक्त करता हूँ। हे दक्षिण परिधि ! रुद्रों का यज्ञ करने के लिए मैं तुम्हें घृतसिक्त करता हूँ। हे उत्तर परिधि ! आदित्यों के यज्ञार्थ मैं तुम्हें घृतसिक्त करता हूँ। हे द्यावा-पृथिवी ! वायु, सूर्य तथा प्राणापान तुम्हें जल-वृष्टि-वेग से बचायें। हे प्रस्तर ! अन्तरिक्ष में तुम मरुद्गण का अनुसरण करो और स्वर्ग में जाकर हमारे लिए वर्षा लाने वाले बनो ॥१६॥

हे विश्वेदेवाओ ! तुम घृतयुक्त हवि के भक्षण से ही महान् हुए

हो और परिधि से रक्षित पाषाण पर बैठते हो। यजमान के यज्ञ को निर्विघ्न करने के लिए यज्ञ में आओ। यह आहुति स्वाहुत हो ॥१८॥

हे जूहू ! हे उपमृत ! तुम घृत से युक्त होओ। हे शकट वाहक ! दोनों वृषभों को घृतयुक्त करो। हे सुखरूप ! मुझे सुख दो। हे वेदी ! प्रवृद्ध होओ, यज्ञानुष्ठान को श्रेष्ठ बनाओ। मेरा तुमको नमन ॥१९॥

हे अग्नि ! मंगल के लिए सर्वत्र व्याप्त होओ। शत्रु के पाशों से और विधि रहित यज्ञ से मुझे बचाओ। विषाक्त अन्न जल से मुझे बचाओ। अग्नि एवं सरस्वती के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ॥२०॥

हे कुशमुष्टि निर्मित पदार्थ ! तुम सबके ज्ञाता, यज्ञ-कर्म के ज्ञाता हो, मुझसे कल्याणकारी कर्म कराओ। हे देवताओ ! तुम यज्ञ में आओ। हे ईश्वर ! यह यज्ञ तुम्हें अर्पित है। यह वायुदेव को पहुँचे ॥२१॥

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। तुम हविघृत से कुशाओं को सिक्त करो। आदित्यगण, वसुगण और मरुद्गण तथा विश्वेदेवा हविघृत से कुशाओं को सिक्त करें। यह बर्हि आदित्य को प्राप्त हो ॥२२॥

हे प्रणीता पात्र ! तुम्हें कौन किस प्रयोजन से त्यागता है ? वह तुम्हें प्रजापति के सन्तोष के लिए और मैं तुम्हें यजमान के पुत्र-पौत्रादि सन्तोष के लिए त्यागता हूँ ॥२३॥

हम ब्रह्म तेज, दुग्धादि, समर्थ इन्द्रियों और शान्त कर्म एवं मन से युक्त हों। त्वष्टा हमें धन एवं स्वास्थ्य दें। जो विष्णु अपने जगती छन्द रूप चरण से स्वर्ग में चढ़े हैं, सर्वव्यापी भगवान् त्रिष्टुप छन्द रूपी चरण से अन्तरिक्ष पर चढ़े हैं और सर्वव्यापी भगवान् ने गायत्री छन्द रूपी चरण से पृथिवी पर क्रमण किया है। जो हमसे द्वेष तथा हम जिनसे द्वेष करते हैं; वे शत्रु भाग्यहीन करके स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथिवी से निकाल दिये गये हैं ॥२४॥

हम इस यज्ञ के फल से पूर्व दिशा में उदित सूर्य के दर्शन करते हैं। हम आह्वानीय ज्योति से युक्त हुए हैं ॥२५॥

हे सूर्य ! तुम स्वयंभू, श्रेष्ठ, हिरण्यगर्भ और रश्मिवन्त हो। मेरे लिए ब्रह्म तेज दो। मैं सूर्य-प्रदक्षिणा को आहुत करता हूँ ॥२६॥

हे अग्नि ! मैं तुम्हें गृहपति-रूप में स्थापित करता हूँ, मैं भी गृहपति होऊँ। हम दोनों के ऐसा करने पर यज्ञादि कर्म सौ वर्ष तक होते रहें। मैं सूर्यात्मक प्रदक्षिणा के लिए आहुति आहुत करता हूँ ॥२७॥

हे व्रतपति अग्नि ! इस यज्ञ को मैंने तुम्हारी कृपा से ही किया है। मैं तो जैसा पहले था, वैसा अब भी हूँ ॥२८॥

हमारे पितरों के निमित्त कव्य अर्पित करते हैं। यह आहुति स्वाहुत हो! पितरों के अधिष्ठान एवं सोमदेव के निमित्त यह अग्नि स्वाहुत हो। वेदी से असुर और राक्षस बाहर कर दिये गये हैं ॥२९॥

पितरों के कव्य का भक्षण करने पितृ-यज्ञ में असुर राक्षस अनेक रूपों में पितरों का रूप बनाकर घूमते हैं। ऐसे राक्षसों को अग्नि देव यहाँ से दूर करें ॥३०॥

हे पितरो! तुम कुशासन पर बैठकर हवि रूप अपना भाग प्राप्त कर तृप्त होओ ॥३१॥

हे पितरो! तुमसे सम्बन्धित वसन्त ऋतु; ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु, हेमन्त ऋतु और शिशिर ऋतु को हमारा नमस्कार। हे षड्ऋतु रूप वाले पितरो! तुम्हें नमन। हम तुम्हारे लिए देय वस्तु देते हैं, तुम हमें भार्या-पुत्रादि युक्त घर दो ॥३२॥

हे पितरो! इन ऋतुओं में देवता और तुम हमें इच्छित फल दो। अश्विद्वय सदृश सुन्दर सन्तान दो ॥३३॥

हे जलो! तुम स्वादिष्ट साररूप और पुष्पों के साररूप हो। और पितरों के लिए हवि रूप हो; मेरे पितरों को तृप्त करो ॥३४॥

तृतीय अध्याय

ऋषि: आंगिरस, याज्ञवल्क्य, मधुच्छन्दा, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, प्रबन्धु, आदि।

हे ऋत्विजो! समिधाओं से अग्नि को दीप्त करो। अतिथि अग्नि को घृतों से प्रज्वलित करो। अग्नि को हव्य-पदार्थों से प्रदीप्त बनाओ ॥१॥

हे ऋत्विजो! प्रदीप्त अग्नि के लिए स्वादिष्ट और शुद्ध-घृत प्रदान करो ॥२॥

हे अग्नि! हम तुम्हें समिधाओं और घृतों से प्रदीप्त करते हैं। तुम सदा तरुण हो अतः प्रदीप्त होओ ॥३॥

हे अग्नि! घृतसक्त यह समिधा तुम्हें प्राप्त हो। तुम तेजस्वी को मेरी समिधाएँ सेवनीय हों ॥४॥

हे अग्नि! तुम द्यावापृथिवी में सर्वत्र वर्तमान हो। हे पृथिवी! तुम यज्ञयोग्य हो, तुम पर अग्नि की स्थापना करता हूँ। फिर जैसे अन्तरिक्ष नक्षत्रपूर्ण है, वैसे मैं भी धनों से पूर्ण होऊँ, और पृथिवी के समान सबका आश्रयदाता बनें। यह अग्नि शुद्धिकर्मी और श्रेष्ठ है ॥५॥

इस अग्नि ने गार्हपत्य, दक्षिण और आह्वनीय तीन रूप बनाये हैं और पूर्व दिशा में इसने सूर्य रूप में स्थान पाया है ॥६॥

यह अग्नि प्राणापानादि रूप में शरीर के मध्य गमन करता है। जठराग्नि रूप में यह जीवन है। वायु और सूर्य रूप में संसार पर अनुग्रह करता है और यज्ञ के लिए प्रकाशित होता है ॥७॥

दिन-भर जो वाणी शोभित होती है, वही पूज्य वाणी यज्ञ के समय भी उच्चारण की जाती है। वह अग्नि की स्तुति करती है, अन्य की नहीं ॥८॥

अग्नि ही ज्योति और ज्योति ही अग्नि है, अग्नि ही सूर्य और सूर्य ही अग्नि है तथा अग्नि ही तेज और तेज ही अग्नि है, ऐसी अग्नि के लिए दी गयी आहुति स्वाहुत हो ॥९॥

सूर्य रूप परमात्मा की बनायी रात्रि को लाने वाली अग्नि को मैं यह आहुति देता हूँ। देव सविता के साथ समान प्रीति वाली उषा के देवता इन्द्र हैं, वह उषा और सूर्य इस आहुति को ग्रहण करें ॥१०॥

यज्ञस्थान की ओर जाते हुए हम दूर या समीप स्थित अग्नि के लिए स्तोत्र का उच्चारण करते हैं ॥११॥

ये अग्नि आकाश में सबसे ऊँचे रहने वाले सूर्य मण्डल में रहते हैं। वृषभ शरीर में सर्वोच्च स्थान स्कन्ध के समान अग्नि भी सर्वोच्च स्थानीय हैं। ये संसार के महान् कारण हैं, पृथिवी के पालक एवं जलों के सार को पुष्ट करने वाले हैं ॥१२॥

हे अग्नि! हे इन्द्र! तुम दोनों को आहुत करके प्रसन्न करना चाहता हूँ। तुम दोनों ही अन्न-धन-जल-दाता हो। मैं तुम्हें यज्ञ में बुलाता हूँ ॥१३॥

हे अग्नि! गार्हपत्याग्नि रूप में तुम्हारा उत्पत्ति-स्थान घर है। प्रातः-सायं तुम आह्वनीय रूप में उत्पन्न होते हो और यज्ञ में प्रदीप्त होते हो। हमारी दक्षिण वेदी में प्रदीप्त होओ और यज्ञ में धन की सुवृद्धि करो ॥१४॥

अग्नि यज्ञ के होता हैं। यज्ञ कर्म के ज्ञाता भृगुओं ने इन्हें जन-हितार्थ वनों में उत्पन्न किया ॥१५॥

ऋषिगण ने अग्नि के तेज द्वारा ही गौ से सर्वोपयोगी दुग्ध-दधि, हवि के निमित्त दोहन किया ॥१६॥

हे अग्नि! तुम स्वभावतः ही यज्ञकर्त्ताओं के देह-रक्षक हो। तुम जठराग्नि रूप में देह का पालन करने वाले हो, मेरी भी रक्षा करो।

हे अग्नि ! आयुदाता तुम मुझे पूर्णायु दो। ब्रह्मचर्य के दाता हे अग्नि ! तुम मुझे तेज दो, मेरी देह को सर्वांगपूर्ण बनाओ ।।१७।।

हे अग्नि ! तुम्हारी कृपा से ही हम तेजस्वी, अन्न-सम्पन्न एवं बलशाली हुए हैं। हम सौ वर्ष तक तुम्हें निरन्तर प्रज्वलित करते रहें ।।१८।।

हे अग्नि ! तुम रात्रि में सूर्य से संगत होते हो; तुम स्तोत्रों से संगत होते हुए स्तुतियाँ स्वीकारते हो और आहुतियों से संगत होते हो। तुम्हारी कृपा से मैं पूर्णायु, ब्रह्मचर्य तथा सन्तान-धन से संगत होऊँ।।१९।।

हे गौओ ! तुम क्षीरादि को उत्पन्न करने वाली होने के कारण अन्न रूप हो ; मैं तुम्हारे क्षीरादि का सेवन करूँ। तुम पूज्य हो, अतः मैं भी तुमसे महानता प्राप्त करूँ। तुम बलरूप हो; मैं भी तुम्हारी कृपा से बलवान् बनूँ। तुम धनपोषिका हो, मैं भी तुम्हारी कृपा से धन सम्पन्न होऊँ।।२०।।

हे धनवती गौओ ! इस यज्ञस्थान में, दोहन के पश्चात् गोष्ठ में, यजमान की दृष्टि में और उसके घर में सदा श्रेष्ठभाव से रहो, यहाँ से अन्यत्र न जाओ ।।२१।।

हे गौ ! अद्भुत रूप वाली तुम यज्ञकर्मों से सुसंगत होती हो; अपने क्षीरादि के द्वारा मुझमें प्रविष्ट होओ। हे अग्नि ! तुम रात्रि में निरन्तर निवास करने वाले हो, हम तुम्हें श्रद्धा से नमन करते हुए हवि देते हैं ।।२२।।

दीप्तमान्, यज्ञ-रक्षक, सत्यनिष्ठ और प्रबुद्ध अग्नि के सम्मुख हम उपस्थित होते हैं ।।२३।।

पुत्र जैसे पिता के पास सरलता से पहुँच जाता है, वैसे हे अग्नि ! हम तुम्हारे पास सुखपूर्वक पहुँच जाते हैं। हमारे मगल के लिए यज्ञकर्म में लगाओ ।।२४।।

हे अग्नि ! तुम वसुओं के लिए आह्वनीय हो। तुम धनदाता हो, अतः यशस्वी हो। तुम हमारे रक्षक और हितैषी हो। तुम हमारे यज्ञस्थान में आओ तथा हमें धन-प्रदान करो ।।२५।।

हे अग्नि ! तुम स्वयं दीप्तिमान् तथा अन्यों की दीप्ति के कारण हो। तुम मित्रों के कल्याण के कारण हो। हम उपासकों के आह्वान को सुनो, सभी पापों और शत्रुओं से हमारी रक्षा करो ।।२६।।

हे धेनु ! तुम पृथिवी के समान जन-पालिका हो, यहाँ आओ। तुम अदिति के समान देव-पालिका हो, यहाँ यज्ञ में आओ। तुम अभीष्टदात्री

हो। मैं तुम्हारी कृपा से इच्छित फलों को पाऊँ ॥२७॥

हे ब्रह्मणस्पति ! जैसे अक्षीवान् को तुमने सोम याग में स्तुति रूप वाणी से सम्पन्न किया था, वैसे ही मुझे करो ॥२८॥

जो ब्रह्मणस्पति सब धनों के स्वामी हैं, और पुष्टिवर्धक हैं, वे हमें सब कल्याणों से युक्त करें ॥२९॥

हे ब्रह्मणस्पति ! हमारी रक्षा करो। जो देवताओं और पितरों के निमित्त कोई कर्म नहीं करते, वे हमारे हिंसक न हों ॥३०॥

मित्र-अर्यमा-वरुण अपनी कांति तथा सुवर्णादि धनों से हमारी रक्षा करें ॥३१॥

इन तीनों के द्वारा रक्षित पुरुष की गति को गृह, मार्ग, वन और संग्राम में कोई नहीं रोक सकता ॥३२॥

मित्र, अर्यमा और वरुण अदिति के पुत्र हैं, वे यजमान को तेज एवं दीर्घायु दें ॥३३॥

हे इन्द्र ! तुम यजमान की हवि को शीघ्र ग्रहण करते हो। तुम तेजस्वी हो। यजमान तुमसे अपरिमित दान प्राप्त करता है ॥३४॥

सविता देव का हम ध्यान करते हैं। वे सर्वपापनाशक और सत्य-ज्ञान-आनन्द के पुंज हैं। हमारी बुद्धियों को वे सत्कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं ॥३५॥

हे अग्नि ! तुम्हारा रथ हमारे लिए सब दिशाओं में स्थित हो। उसी रथ से तुम यजमान की रक्षा करते हो ॥३६॥

हे अग्नि तुम्हारी कृपा से मैं श्रेष्ठ सन्तान से पूज्यवान् होऊँ और श्रेष्ठ सम्पत्तियों से सम्पत्तिवान् होऊँ। मेरे पुत्रादि की तुम रक्षा करो। तुम निरन्तर गमनशील हो ॥३७॥

हे अग्नि ! तुम सुदीप्त हो। अपरिमित धन के दाता हो। तुम अन्न-बल धन के सहित यहाँ आओ और हमें ये सब दो ॥३८-३९॥

जो दक्षिणाग्नि पुष्टिवर्धक हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूँ। हे अग्नि ! हमें धन-बल प्रदान करो ॥४०॥

हे गृह के अधिष्ठाता देवो ! तुम भयभीत न होओ। तुम्हारे पास जिस कारण से गृहपति आया है, तुम उस कारण से बलयुक्त होओ। मैं श्रेष्ठ बुद्धि और प्रसन्न मन से गृहों में प्रविष्ट हुआ हूँ ॥४१॥

विदेश जाता हुआ यजमान जिन घरों की कुशल कामना करता है, जिन घरों में उसकी प्रीति है, उन घरों का हम आह्वान करते हैं। उन घरों के अधिष्ठात्री देवता आगमन करें ॥४२॥

हे गौओ ! बकरियो ! भेड़ो ! श्रेष्ठ रूप घर में सुखपूर्वक रहो, जिससे अन्नात्मक रस हमारे घरों में रहे। हे गृहो ! मंगल और अभीष्ट शान्ति के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। मेरा कल्याण हो ॥४३॥

हे मरुद्गण ! तुम दधियुक्त सत्तू से प्रसन्न होते हो। हे पापनाशक ! मरुतो ! हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥४४॥

गाँव में, वन में, मृगया में, सभा में असत्य भाषण में तथा इन्द्रियों से जो मुझसे पाप बन गये हैं, उनके नष्ट करने के लिए पापनाशक देवता को दी गयी मेरी आहुति स्वाहुत हो ॥४५॥

हे इन्द्र ! तुम बलिष्ठ हो। मरुद्गण सहित संग्राम में हमारी रक्षा करो। तुम्हारा यज्ञीय भाग पृथक् विद्यमान है। हम तुम्हारा और मरुद्गण का पूजन करते तथा तुमको नमस्कार करते हैं ॥४६॥

हे ऋषियो ! तुमने देवों के निमित्त स्तुति के साथ अनुष्ठान को पूर्ण किया है। उसके पूर्ण होने पर घर को गमन करो ॥४७॥

अवभृथ यज्ञ ! गमनशील तुम जलाशय पर मन्द गति वाले होओ। मैंने देवों के प्रति किये गये अपराध को जलों में विसर्जित कर दिया है। वह पाप तुम्हें न लगे ॥४८॥

हे काष्ठपात्र ! तुम स्थाली से अन्न ग्रहण करो और उसे इन्द्र को भेंट करके हमारे लिए फल से भरे हुए हमारे पास आओ। हे इन्द्र ! मैं तुम्हें हवि दूँ और तुम मुझे फल दो। यह आदान-प्रदान चलता रहे ॥४९॥

हे यजमान ! तुम मुझ इन्द्र को हवि दो, मैं तुम्हें धनादि दूँगा इन्द्र के लिए दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो ॥५०॥

इस पितृभाग में पितरों ने हवि प्राप्त कर ली और तृप्त होकर सिर हिलाते हुए हमारी प्रशंसा की। हे इन्द्र ! तुम भी इन पितरों से मिलने यहाँ आओ और पितरों के साथ सन्तुष्ट होओ ॥५१॥

हे इन्द्र ! तुम कृपालु हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम अभीष्ट पूरक हो, यहाँ आगमन करो ॥५२॥

हम मनुष्यों और पितरों के इच्छित स्तोत्रों से मन के देवता का आह्वान करते हैं ॥५३॥

यज्ञानुष्ठान, कर्मोत्साह और दीर्घ जीवन के लिए हमारा मन हमें प्राप्त हो ॥५४॥

हे पितरो ! तुम्हारे अनुग्रह से दिव्य पुरुष हमारे मन को यह श्रेष्ठ कर दें। तुम्हारी कृपा से हम कर्म करते हुए जीवित रहें और सुख पायें ॥५५॥

हे सोम ! हम तुम्हारे व्रत में लगे हैं, तुममें मन लगाये हुए हैं। ुम्हारी कृपा से हम पुत्र-पौत्रादि वाले हों ॥५६॥

हे रुद्र ! अम्बिका-सहित तुम्हें प्रदत्त पुरोडाश तुम सेवन करो ॥५७॥

पापियों के लिए सन्तापकारी अपने तीन नेत्रों की ज्योति से त्रिलोक ो प्रकाशित करने वाले, और प्राणियों की आत्मा रुद्र को हम अन्य वताओं से पृथक् यज्ञभाग देते हैं। वे हमें श्रेष्ठ निवास से युक्त करें, ्ष्ठ बनाएँ और श्रेष्ठ कर्मों में लगाएँ ॥५८॥

हे रुद्र ! तुम रोगों को ओषधि के समान नष्ट करते हो। हमारे ोग नष्ट करो ॥५९॥

मनुष्यों को दोनों लोक का फल देने वाले त्रिनेत्र रुद्र की हम पूजा रते हैं। वे हमें अकाल मृत्यु से बचाएँ। हम रुद्र की कृपा से जन्म-रण-चक्र से मुक्त हों। हमें दोनों लोकों का सुख मिले ॥६०॥

हे रुद्र ! तुम हविशेष भोजन के साथ पर्वत के परवर्ती भागों में ाओ। हमारे यजमान को बाल, युवा और वृद्धावस्था वाली पूर्णायु प्राप्त ा ॥६१॥

हे जगदीश्वर ! आपका नाम शिव है। आप मेरे पालक हो, आपको रा नमस्कार। मुझे अल्पमृत्यु से बचाइए और मेरी आयु, विद्या तथा न की पुष्टि कीजिए ॥६२॥

चतुर्थ अध्याय

ृषि : प्रजापति, आत्रेय, आंगिरस, वत्स, गोतम।

हम देवयज्ञ के स्थान पर आये हैं। यहाँ विश्वेदेवा प्रसन्न बैठे हैं। ाँ सोमयाग करते हुए हम अन्न-धन से सम्पन्न हों। ये जल हमारे ाए कल्याणकर हों ॥१॥

जल हमें पवित्र करें। क्षरित जलों से हम पवित्र हों। जल पापों ो अवश्य दूर करते हैं। जल-स्नान और जल-आचमन से मैं भीतर-हर पवित्र होता हूँ। हे क्षौम वस्त्र ! मैं तुम्हें धारण करता हूँ। तुम ाों के अंग हो और कल्याणकर हो ॥२॥

हे नवनीत ! गो-दुग्धोत्पन्न तुम तेज देने वाले हो, मुझे तेज दो। अंजन ! तुम वृत्रासुर के नेत्र की कनीनिका हो, मेरे नेत्रों की ज्योति की द्धि करो ॥३॥

पवित्र ! तुम मुझे शुद्ध करो। सूर्य मुझे पवित्र करें। हे परमात्मा !
ारे द्वारा पवित्र होऊँ। मेरी कामना पूर्ण हो ॥४॥
देवो ! यज्ञारम्भ हो गया, तुम इसमें फल के साथ आओ। हम
ों के लाने के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥
ुम अपने मन से ही यज्ञ-कर्म में प्रवृत्त हुए हैं। हम द्यावापृथिवी
क्ष के लिए स्वाहा करते हैं। हमारा यह यज्ञ पूर्ण हो ॥६॥
ज्ञ की बलवती इच्छा के साथ अग्नि के निमित्त मैं आहुति देता हूँ।
ाहुति सरस्वती, पूषा एवं अग्नि के निमित्त है। हे जलो ! तुम
ल, महान् और सबको आनन्द देने वाले हो। हम द्यावा-पृथिवी,
क्ष और बृहस्पति के लिए आहुति देते हैं ॥७॥
कर्मानुसार फल के देने वाले, सविता देव की मित्रता के लिए स्तुति
वे पुष्टि के लिए अन्न प्रदान करें। उनके लिए यह आहुति स्वाहुत
॥
हे कृष्ण-शुक्लरेखा ! तुम ऋक्-साम के मन्त्रों की अधिष्ठात्री
की कुशलता के परिणामस्वरूप हो। मैं तुम्हारा स्पर्श करता हूँ।
स यज्ञ की रक्षा करो। तुम्हें मेरा नमन ॥६॥
हे मेखला ! तुम मृदुस्पर्शा हो; मुझे अन्न-रस दो। तुम सोमप्रिया
हे उष्णीष ! तुम यज्ञ में मंगलमय हो, मेरा कल्याण करो। हे
विषाण ! तुम मुझे श्रेष्ठ अन्न से सम्पन्न करो। हे वनस्पति से
त दण्ड ! तुम उन्नत होओ और यज्ञ समाप्ति तक मुझे पाप से
ो ॥१०॥
हे ऋत्विजो ! यह अग्नि तीन वेदों का रूप है, यज्ञ का साधन है।
ानार्थ देवकर्म में प्रवृत्त, मंगलदायिनी, बुद्धि हमें प्राप्त हो। यह हवि
के लिए स्वाहुत हो ॥११॥
हे जलो ! पिये जाने पर तुम शीघ्र जीर्ण होकर उदर को सुखदायक
। ये जल रोगों के शामक, यज्ञ के निमित्त रूप, दिव्य एवं अमृत-
हैं। ये हमारे लिए सुस्वादु हों ॥१२॥
हे यज्ञ पुरुष ! यह पृथिवी तुम्हारा यज्ञ-स्थान है। इसीलिए मैं
के ढेले को ग्रहण करता हूँ। हे मूत्ररूप जल ! तुम अपवित्र हो।
ी देह से निकलकर पृथिवी में प्रविष्ट होओ ॥१३॥
हे अग्नि ! हम सुखपूर्वक शयन करें। हमारी सर्वतः रक्षा करो ॥१४॥
मेरा मन फिर स मेरे पास आ गया है। मेरी आयु फिर मुझे मिल
है। प्राण पुनः प्राप्त हो गये हैं। जीवात्मा, दर्शन-शक्ति और श्रवण-

शक्ति मुझे फिर मिल गये हैं। अग्नि हमें निन्दित कर्मों से बचाएं।

हे अग्नि तुम दिव्य हो, यज्ञों में तुम्हारी स्तुति की जाती है
सोम हमें धन दो, बार-बार धन दो ॥१६॥

हे अग्नि ! तुम्हारा वर्ण तथा यह घृत दोनों उज्ज्वल हैं। तु
से एकाकार होओ। हे वाणी ! तुम वेगवती होकर यज्ञप्रीति से
होओ ॥१७॥

हे संसार के निमित्त कारण रूप परमात्मा ! जगत् में तेरी
मैं शुद्ध, और विद्वानों के लिए सुखप्रद वाणी को प्राप्त करूँ ॥१८

हे जगदीश्वर ! तेरे उत्पन्न किये इस जगत् में मैं वह वाणी
करूँ, जो चित् है, ज्ञान-साधिका है तथा यज्ञीय है, जो उत्तम गु
है, और व्यवहार तथा परमार्थ की साधिका है ॥१६॥

हे मनुष्य !रुद्र(परमेश्वर) ने तुझे जिस वाणी को उत्तम पदार्थ
और सुख-प्राप्ति के लिए दिया है, उस दिव्य वाणी को तू सतत प्राप्त
इसको ग्रहण करने के लिए तुझे तेरे सभी सम्बन्धित प्रेरित करें ॥

जो वाणी यज्ञ सम्बन्धी है, सूर्यवत् सब विद्याओं की प्रकाशि
जिसको बृहस्पति ने धारण किया है और जिसकी मैं इच्छा करता हूँ
वाणी को सिद्ध करने की तू भी इच्छा कर ॥२१॥

हे मनुष्य ! देव-भजन में द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष को जिस वा
स्वाहुत किया है और जो सर्वोत्कृष्ट है, उसको जैसे मैं प्रदीप्त कर
वैसे तू भी कर। जो विद्यादि मुझमें है, वह तुझमें भी हो। तुम्हारी
समृद्धि सब सुख के लिए हों। हम दोनों धन की पुष्टि से कभी अ
हों ॥२२॥

हे विद्वान् ! जैसे मैं दिव्य वाणी को प्रकट करता हूँ, वैसे तू भी
मैं और तू उसे अविद्या से नष्ट न करें ॥२३॥

हे अध्वर्यु ! सोम से मेरी यह प्रार्थना कहो कि हे सोम ! तुम गा
जगती आदि छन्दों से सम्बद्ध हो, तुम क्रय से हमें प्राप्त हुए हो।
विद्वान् तुम्हारे सार के ज्ञाता हैं ॥२४॥

द्यावा-पृथिवी में विद्यमान, दिव्य सविता देव का मैं पूजन
हूँ। उनकी जो दीप्ति सर्वोपरि है, उससे नक्षत्र प्रकाशित हैं। वे स्व
रचयिता हैं। हे सोम ! तुम्हारे दर्शन से प्रजा सुखी होगी। तु
अनुसरण करती हुई सब प्रजा जीवित रहे। तुम प्रजाओं का अनु
करो ॥२५॥

हे सोम ! तुम तेजस्वी हो। मैं तुम्हें सुवर्ण से क्रय करता हूँ

विक्रेता ! तुम्हें जो गौ और सुवर्ण मूल्य रूप में दिये थे, उनमें से यजमान के यहाँ आ जाय; किन्तु उसके बदले में दिया गया सुवर्ण पास रहे। हे सोम ! तुम्हारी कृपा से मैं पुत्र-पशुओं की पुष्टि ॥२६॥

हे सोम ! तुम मित्र होकर श्रेष्ठकर्माओं का पालन करने वाले हो। हाँ आओ। प्रसन्न सात देवता सोम के रक्षक हों। शत्रु भी सोम ड़ित न कर सकें ॥२७॥

हे अग्नि ! मेरे पाप को सर्वतः दूर करो। मुझे पुण्य में प्रतिष्ठित मैं दीर्घायु प्राप्त कर सोमादि देवताओं का अनुसरण करता २८॥

हम पापादि बाधाओं से रहित सुखप्रद मार्ग पर गमन करते हैं। ार्ग पर चलने वाला दुष्टों को रोकता हुआ धन-प्राप्ति करने में होता है ॥२९॥

हे कृष्णाजिन ! तुम संकट में पृथिवी की त्वचा के समान हो। हे ! इस स्थान में सुस्थित होओ। वरुण पृथिवी को विस्तृत करके व्याप्त हो गये ॥३०॥

वरुण ने आकाश को विस्तीर्ण किया, अश्वों में बल और पुरुषों में म को बढ़ाया, गौओं में दुग्ध-वृद्धि की, हृदयों में संकल्प वाले मन नाया, प्रजाओं में जठराग्नि को स्थापित किया तथा पर्वतों पर सोम न्तरिक्ष में सूर्य की स्थापना की ॥३१॥

हे कृष्णाजिन ! तुम अपने उदर में सोम रखते हो। तुम सूर्य और के नेत्रों में चढ़ो ॥३२॥

हे अनड्वाहो ! तुम शकट-वहन से दुःखी न होना। तुम शकट- को धारण करने में समर्थ हो। तुम शकट में जुड़कर यजमान के को गमन करो ॥३३॥

हे सोम ! तुम कल्याणकारी हो। यज्ञविरोधी तुम्हें न जानें। तुम ति से यजमान के घर जाओ ॥३४॥

यम और वरुण अपने तेज से प्रकाशमान और द्युलोकपालक हैं। मैं ो और सूर्य को प्रणाम करता हूँ। हे ऋत्विजो ! तुम सूर्य के लिए करो ॥३५॥

हे कृष्णाजिन ! तुम वरुण की प्रीति के लिए शकट में व्यवहृत होते हे आसन्दी ! तुम वरुण की प्रीति के लिए यज्ञ-प्राप्ति के स्थान रूप

हो। हे कृष्णाजिन ! मैं तुम्हें बिछाता हूँ। हे सोम तुम आसन
विराजो ।।३६।।

हे सोम ! ऋत्विज तुम्हारे रस से यज्ञपुरुष को पूजते हैं। तुम
आओ और हमें पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न करो ।।३७।।

पंचम अध्याय

ऋषि : गोतम, वशिष्ठ, दीर्घतमा, मधुच्छन्दा, अगस्त्य।

हे वनस्पति ! तुम अग्नि के शरीर हो। मैं तुम्हें विष्णु भगव
प्रसन्नता के लिए काटता हूँ। तुम सोम देव के प्रतिनिधि हो,
आगत अतिथि का सत्कार करने वाले हो। हे सोम ! यज्ञमान का
करने तुम यज्ञ में आओ ।।१।।

हे अधरारणि ! तुम अग्नि को उत्पन्न करने वाली हो, तु
दूसरा नाम उर्वशी है। हे आज्य ! तुम अग्नि की आयु हो
उत्तरराणि ! तुम अग्नि उत्पन्न करने वाली हो, तुम्हारा अन्य
पुरुरवा है ।।२।।

हे अग्नि ! हमारे अपराधों पर भी क्रोध करते हुए तुम यज्ञ में
और मंगल रूप होओ ।।३।।

हे अग्नि ! हमारे कल्याण के लिए निरालस्य होकर यज्ञ में
तुम्हारे लिए घृताहुति अर्पित है ।।४।।

हे आज्य ! वायु देवता के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। प्रा
प्रीति एवं रक्षा की कामना एवं जठराग्नि के लिए मैं तुम्हें ग्रहण
हूँ। तुम सर्वपूज्य हो, देवताओं के लिए सार-पदार्थ हो और हमा
के रक्षक हो। हम शुद्ध अन्तःकरण से तुम्हारा स्पर्श करते हैं ।।५।।

हे अग्नि ! हमारे यज्ञ-कर्म की रक्षा करो। हे अनुष्ठान कर्म
अग्नि और यजमान से संगति करें। सोम मेरी दीक्षा और
मानें ।।६।।

हे सोम ! तुम्हारे पान से इन्द्र प्रवृद्ध हों। हमें धन एवं मेध
हमारा कल्याण हो। द्यावा-पृथिवी को हमारा नमन। वे हमार
सम्पन्न कराएँ ।।७।।

हे अग्नि ! तुम देवों के कामफल-वर्षक और असुरों के नाशक
तुमको यह आहुति स्वाहुत हो ।।८।।

हे पृथिवी ! तुम रत्न-धन की खान और कृषि-कर्म सम्पादनकारिणी हो, मुझे इच्छित ऐश्वर्य दो और मेरी रक्षा करो। हे अग्नि ! तुम यहाँ आयु रूप होकर आओ। हे अग्नि ! मैं तुम्हारे यज्ञयोग्य अनिन्द्यरूप को यज्ञ में प्रतिष्ठित करता हूँ ॥९॥

हे वेदी ! तुम सिंहनी के समान विकराल होओ और शत्रुओं को हराओ। हे उत्तर वेदी ! तुम देवताओं की प्रसन्नता के लिए शोभित होओ और शत्रुओं को सिंहनी बनकर तिरस्कृत करो ॥१०॥

हे उत्तर वेदी ! वसुओं सहित इन्द्र तुम्हारी रक्षा करें। वरुण पश्चिम दिशा में, पितरों के सहित यम उत्तर-दक्षिण दिशा में तुम्हारी रक्षा करें ॥११॥

हे वेदी ! तुम सिंहनी-सदृश असुरनाशिका हो, तुम्हें यह हवि भेंट है। हे वेदी ! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय से प्रीति करने वाली, श्रेष्ठ प्रजा और धन को पुष्ट करने वाली तथा सिंहनी के समान पराक्रम वाली हो, तुम्हारे लिए यह हवि भेंट है। हे घृतयुक्त जूहू ! सब प्राणियों की प्रीति के लिए मैं तुम्हें वेदी पर ग्रहण करता हूँ ॥१२॥

हे मध्यम परिधि ! हे दक्षिण परिधि ! हे उत्तर परिधि ! तु[illegible] स्थिर होकर यज्ञ में रहती हो, अतः द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष को दृ[illegible] करो ॥१३॥

वेदपाठी अद्भुतकर्मा ब्राह्मण ऋषियों को परमात्मा ने रचा है। व[illegible] सविता देव (परमात्मा) महान् हैं, उसके निमित्त ही यह हवि है ॥१४[illegible]

विष्णु ने इस चराचर विश्व को विभक्त करके द्यावा-पृथिवी[illegible] अन्तरिक्ष में पदनिक्षेप किया। इनके एक पद में विश्व अन्तर्भूत हैं, य[illegible] हवि उन्हीं के लिए स्वाहुत है ॥१५॥

हे द्यावापृथिवी ! तुम विपुल-अन्नवाली और प्रभूत गौओंवा[illegible] होओ। हे विष्णु ! तुमने द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष को विभक्त क[illegible] स्तम्भित किया है ॥१६॥

हे हविर्धानिशकट ! तुम पूर्वाभिमुख हो गमन करते हुए देवता[illegible] को यज्ञभाग प्राप्त कराने के लिए जाओ। हे शकट रूप देवद्वय ! पशु[illegible] के गोष्ठ में रहो। यजमान को आजीवन रहने वाले धन दो। यजमान [illegible] आयु वृद्धि और सन्तानवृद्धि करो ॥१७॥

विष्णु की महिमा अपरिमित है। उन्होंने द्यावापृथिवी अन्त[illegible]

और समस्त प्राणियों एवं परमाणुओं की रचना की है। वे तीनों लोकों में अग्नि, वायु और सूर्य सबमें विद्यमान हैं तथा सर्वस्तुत हैं ॥१८॥

हे विष्णु ! द्यावापृथिवी-अन्तरिक्ष के धनों को आप हमें दोनों हाथों से दीजिए ॥१९॥

विष्णु पराक्रमी, अन्तर्यामी और सर्वव्यापी हैं, उन्हीं के पादप्रक्षेप में तीनों लोकों के प्राणी रहते हैं ॥२०॥

यह जगत् विष्णु के प्रकाश से प्रकाशित है। सब जगत् यज्ञ-साधन है। जड़-चेतन जगत् के उत्पन्नकर्त्ता, हे जगदीश्वर ! हम यज्ञानुष्ठान आपके लिए ही करते हैं ॥२१॥

हे विद्वान् ! सविता देव के उत्पन्न किये हुए संसार में जैसे मैं यज्ञ को ग्रहण करता हूँ, वैसे तू भी कर। जैसे परमैश्वर्य-प्राप्ति के लिए मैं महती वाणी का उपदेश करता हूँ, वैसे तू भी कर ॥२२॥

अमात्यादि के द्वारा मेरे अनिष्ट के लिए किये गये अभिचार कर्म को मैं बाहर निकालता हूँ। किसी समान पुरुष ने, मातुलादि सम्बन्धी, असम्बन्धी ने, समानजन्मा बान्धवादि ने अथवा शत्रुओं ने मेरा अहित करने के लिए यदि कृत्याकर्म किया है तो मैं उन सब कर्मों को सब स्थानों के बाहर निकालता हूँ ॥२३॥

हे प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ अवट ! तुम तेजस्वी, सर्वेश्वर और तुम चारों शत्रुनाशक हो। हमारे शत्रुओं का नाश करो ॥२४॥

हे गर्त ! तुम राक्षसनाशक तथा अभिचार कर्म-निष्फलकर्त्ता हो। मैं तुम्हें कुशाओं से ढकता हूँ और दोनों गर्तों पर दो सोमाभिषवन-फलक स्थापित करता हूँ। हे अधिषवण ! तुम विष्णु से सम्बन्धित हो और यज्ञ की रक्षा करने वाले हो ॥२५॥

हे अभ्र ! सविता देव की प्रेरणा से, मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। तुम हमारे हितकारक हो। मैं अवटों से यज्ञविघ्नकारी राक्षसों को नष्ट करता हूँ। हे शस्य ! हमारे शत्रुओं को भगाओ ॥२६॥

हे गूलरो ! तुम द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष को स्तंभित, दृढ़ और पूर्ण करो। मरुद्गण और मित्रवरुण तुम्हारी रक्षा करें। तुम ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों के द्वारा स्तुत्य हो, हमारी आयु और सन्तानों को बढ़ाओ ॥२७॥

हे औदुम्बरी ! तुम इस स्थान पर दृढ़ होओ। यह यजमान सन्तानादि का सुख पाये, इसका शरीर दृढ़ हो और इस हव्य के द्वारा पृथिवी तथा स्वर्ग में सम्पन्न रहो ॥२८॥

हे स्तुत्य इन्द्र ! तुम स्तुति को ग्रहण करो और प्रसन्न होओ।
तियाँ हमें दीर्घायु करें ।।२६।।

हे परमात्मा ! जैसे सब पदार्थों का निवास-स्थान अन्तरिक्ष है, वैसे
सबके आधार हो अतः हमको ऐश्वर्य से संयुक्त करने वाले हो और
ादि लोकों को निश्चल करने वाले हो ।।३०।।

हे जगदीश्वर ! आप सर्वव्यापक हैं। जैसे अग्नि हवा वहन करता है,
आप भी सब पदार्थों का सम्पादन करते हैं। जैसे प्राण सबको
ना देते हैं, वैसे आप भी सबको चेतना देते हैं। आप सत्कारयोग्य
र ज्ञान के बढ़ाने वाले हैं ।।३१।।

हे जगदीश्वर ! आप कान्तिमान् दुराचारियों के शत्रु, क्रान्तदर्शी,
त, स्वयंशुद्ध और सबके शोधक हैं। आप सुख-दुख से अतीत और
धाम हैं तथा हम सबके स्तुत्य हैं ।।३२।

परमेश्वर सर्वव्यापक, अजन्मा और सबको गति देने वाले हैं। उनके
पाद में ब्रह्माण्ड स्थित है। वे वाणी रूप हैं, परमैश्वर्य का स्थान हैं।
र्म का पालन करने वालो ! उनकी स्तुति करो। हे ईश्वर ! मुझे
के मार्ग में पार कीजिए, मुझे सुख दीजिए ।।३३।।

हे अग्नि रूप परमात्मा ! मुझे मित्र की दृष्टि से देखिए। मुझे
ा दीजिए। मेरी रक्षा कीजिए। मेरा आपको नमन ।।३४।।

हे सोम ! (जगदीश्वर !) आप प्रकाशमान् और सब रूपों वाले हैं।
का नियमन करने वाले हैं। मुझे धन-विद्या-बल दीजिएगा ।।३५।।

हे अग्नि ! (परमात्मा !) कृपा कीजिए। मुझे उत्तम मार्ग से ले
ए। कुटिल दुःख फल रूपी पाप को हमसे दूर कीजिए। हमारा
को नमस्कार है ।।३६।।

अग्नि (परमेश्वर) हम जीवों की निरन्तर रक्षा करें। हम शत्रुओं
नष्ट करने वाले हों और उन्हें हम विजय करें ।।३७।।

हे सर्वव्यापक विष्णु ! (परमेश्वर !) हमें निवास योग्य गृह और
-विज्ञान प्रदान कीजिए। हे पुरुष ! जैसे अग्नि घृत पीकर पुष्ट होते
वैसे तू भी अपने-अपने गुणों के द्वारा पुष्ट हो ।।३८।।

हे सविता देव ! दिव्य गुण युक्त, यह सोम तुमको अर्पित है। तुम्हारी
ा से प्राप्त हुए सोम की तुम रक्षा करो। हे सोम ! देवों को यहाँ
ओ और यजमान को धनादि से पुष्ट कराओ ।।३९।।

हे अग्नि ! तुम सब कर्मों के पालक हो। यज्ञ में जो तुम्हारा तेज
त है, वह मुझमें व्याप्त हो। अग्नि ने मेरे दीक्षा-नियम और तप को

स्वीकार कर लिया है ॥४०॥

हे विष्णु ! हमारे शत्रुओं और विघ्नों के प्रति अपना प
दिखाओ। यजमान की वृद्धि करो। हमारी यह आहुति तुम्हारे
है ॥४१॥

हे वनस्पति ! (यूपवृक्ष) अन्य वनस्पतियों को छोड़ मैं तुम्हा
आया हूँ। हम देवयज्ञ के लिए तुम्हें ग्रहण करते हैं। देवता तुम्हें स
करें ॥४२॥

हे यूपवृक्ष ! मेरे द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष अहिंसित रहें। हे व
वृक्ष ! यह कुठार तुम्हें यज्ञ के निमित्त प्राप्त करता है। तुम पुन
स्थान पर शतांकुरयुक्त होकर उत्पन्न होओ। हमारी भी वृद्धि हो।

षष्ठ अध्याय

ऋषि : अगस्त्य, शाकल्य, दीर्घतम मधुच्छन्दा, गोतम।

हे अग्ने ! सविता देव की प्रेरणा से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ
कुशासन ! तुम पर पितर विराजमान होंगे ॥१॥

हे यूप ! ऊपर उठो। सविता देव तुम्हें मधु-घृत से युक्त करें
चावलो ! श्रेष्ठ फल पाने के लिए मैं तुम्हें यूप पर स्थित करता हूँ
यूप ! तुमने अपने अग्रभाग से स्वर्ग, मध्यभाग से अन्तरिक्ष एवं मू
से पृथिवी को दृढ़ किया है ॥२॥

हे यूप ! हम तुम्हें यज्ञस्थान में पहुँचाना चाहते हैं, जो ऋषिय
साम गान की स्तुतियों से युक्त तथा विष्णु का धाम है। हे यूप
ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के द्वारा स्तुत्य हो ॥३॥

हे ऋत्विजो ! भगवान् विष्णु के कर्मों को देखो। उन्होंने अपने
के द्वारा ही यज्ञादि कर्मों की स्थापना की है ॥४॥

मेधावी जन विष्णु के परम पद रूपी मोक्ष को सदा दृष्टि मे
हैं। विष्णु ने ही सूर्यमण्डल में सूर्य को बढ़ाया ॥५॥

हे यूप ! तुम रस्सी से चारों ओर से लिपटे हुए हो। तुम स्व
हो, पृथिवी तुम्हारा आश्रय-स्थान है और वन-पशु तुम्हारे हैं ॥६॥

हे तृणो ! तुम पशु के पास रहते हो। दिव्य गुणों वाले पशु दे
समीप जायें। देवता यजमान को स्वर्ग प्रदान करते हैं। हे हवि
सुस्वादु हो ॥७॥

हे पशुओ ! तुम यजमान के यहाँ सदा रहो। हे बृहस्पति !

धन तथा पशुओं को स्थिर करो। हे दिव्य हवि ! मैं तुम्हें फलप्रदा
यज्ञ के बन्धन में बाँधता हूँ और यज्ञ के द्वारा ही बन्धन-मुक्त क
हूँ ॥८॥

हे पशुओ ! सविता की प्रेरणा से अग्नि और सोम के निमित्त
तुम्हें इस कर्म में योजित करता हूँ। मैं तुम्हें जल से स्वच्छ करता हूँ ॥

हे पशु ! जलपायी तुम जलपान करो। यह दिव्य-जल तुम्हारे लि
सुस्वादु हो ॥१०॥

हे धनयुक्त आशीर्वचनो ! यजमान की कामना पूर्ण करो और इस
ज्ञानदान देने के लिए इसके शरीर में प्रविष्ट होओ। हे जलवृष्टि
उत्पन्न तृण ! यजमान को इस यज्ञ में धारण करो। यह आहुति
के लिए स्वाहुत हो ॥११॥

हे यज्ञ ! तुम्हें नमस्कार है। तुम बाधाओं से रहित हो, सम्पन्न होअ
हे यजमान पत्नी ! यज्ञशाला शत्रुरहित है, अतः इसमें आओ ॥१२॥

हे दिव्यजनो ! तुम स्वभावतः ही पवित्र हो। इस हव्य को देवों
प्राप्त कराओ ॥१३॥

हे प्राणी ! मैं तेरी इन्द्रियों को पवित्र करता हूँ ॥१४॥

तेरे मन, वाणी, प्राण और कर्म सब शान्त और दोष-रहित ह
हे ओषधियों ! यजमान का कल्याण हो। तुम इसकी रक्षा करो ॥१५

हे तृण ! तुम राक्षसों के भाग हो। विघ्न करने वाले राक्षस नष्ट
गये। द्यावा-पृथिवी रूप में दोनों पात्र घृतयुक्त हैं। हे वायु ! इनके
रूप घृत को पियो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे अरुणोदय ! हम
अग्नि में डालते हैं। तुम स्वाहाकार होकर आकाशस्थ वायु से स
होओ ॥१६॥

हे जलो ! पाप एवं अभिशापादि से प्राप्त अशौच तथा मि
चरण से उत्पन्न दोष से हमें छुड़ाओ ॥१७॥

मुझे प्राणों की तीव्र तपस्या का प्रभाव सूर्य के प्रभाव से प्राप्त ह
मेरा मन द्वेष-भाव से पृथक् हो ॥१८॥

हे घृतपायी देवो ! इस घृत को पियो। हे हवि ! तुम अन्तरिक्ष
जाओ। पूर्वादि दिशाओं के निमित्त ये आहुतियाँ दी जाती हैं ॥१९

हे प्राणी ! तेरे प्राण और उदान प्रत्येक अंग में स्थित रहें। श्रे
व्यक्तियों की संगति से तू उच्च स्थिति को प्राप्त हो ॥२०॥

समुद्र, अन्तरिक्ष देवों, सविता देव, मित्रावरुण, अहोरात्र के देव
छन्दों के अधिष्ठात्री देवता, स्वर्ग, पृथिवी, यज्ञ के देवता, सोम दे

काश और वैश्वानर अग्नि के लिए ये हवि प्राप्त हो ॥२१॥

हे वरुण ! तुम्हारे पाशवाले स्थानों में यदि हम भयभीत हों, तो शों से मुक्त करो । हे वरुण ! हमें हिंसा के पाप से छुड़ाओ । जल-षधि हमारे बन्धु हों ॥२२॥

हविधारक यजमान का यह यज्ञ हवि-सम्पन्न हो । सूर्य हविर्वान् हों र यजमान को यज्ञफल दें ॥२३॥

हे जलो ! तुम इन्द्र और अग्नि, मित्रावरुण तथा अन्य देवों के भाग । जो जल सूर्य की रश्मियों के पास स्थित है, वे हमारे यज्ञ को तृप्त ॥२४॥

हे सोम ! मैं कर्मवान् मनुष्य और तेजवान् पितरों के लिए बुलाता । तुम यज्ञ के होताओं को स्वर्ग तक पहुँचा दो ॥२५॥

हे सोम ! तुम ऋत्विजों पर कृपा करो । हे अग्नि ! आहुति पाकर आह्वान पर ध्यान दो । हे आवास गृह ! तुम अभिषवण कर्म के ए हो । तुम सब एकाग्र मन से मेरी स्तुति सुनो ॥२६॥

हे जल देवियो ! तुम्हारी लहर हवन योग्य और तृप्तिकारिका है । उस लहर को सोमपायी देवों को दो, क्योंकि तुम भी तो देवताओं ही भाग हो ॥२७॥

हे घृत ! तुम पापनाशक हो । हे जलो ! मैं तुम्हें वसतीवरी जलों अक्षुण्णता के लिए ग्रहण करता हूँ, तुम उनसे मिलो । सभी ओषधियाँ स्पर मिलें ॥२८॥

हे अग्नि ! जिसके पास तुम हवि ग्रहण करने को जाते हो, वह श्रेष्ठ -धन पाता है ॥२९॥

हे उपांशु सवन ! सविता देव की प्रेरणा से मैं तुम्हें ग्रहण करता तुम कामनापूरक होओ । यज्ञ को विस्तृत करो । हे जलो ! तुम इस में आओ और मुझे आश्वस्त करो ॥३०॥

हे प्रजाजनो ! तुम अपने गुणों से मेरे मन, वाणी, प्राणों, चक्षुओं, श्रोतों, आत्मा, सन्तान और सेवकों को तृप्त करो, जिससे मेरे गण में उदास न हो ॥३१॥

हे सोम ! वसु, रुद्र, इन्द्र, आदित्य-इन्द्र, शत्रु हन्ता, गायत्री, अग्नि निमित्त मैं तुम्हें परिमित करता हूँ ॥३२॥

हे सोम ! तुम्हारी द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष सम्बन्धी ज्योति यजमान धनवृद्धि करे ॥३३॥

हे जलो ! तुम सोम के पालक हो । तुम यज्ञ को देवों को प्राप्त

कराओ और हवि भेंट किये जाने पर उनको तृप्त करो ॥३४॥

हे सोम ! तुम पाषाण के आघात से भयभीत एवं कम्पित न होना। हे द्यावा-पृथिवी ! तुम सुदृढ़ हो अतः सोम को भी दृढ़ करो। संस्कृ सोम से यजमान के पाप नष्ट होते हैं ॥३५॥

हे सोम ! तुम अपने चारों दिशाओं में बिखरे अंशों को एकत्र कर यहाँ यज्ञ में आओ ॥३६॥

हे इन्द्र ! तुम सर्वव्यापक महान् हो तथा बल एवं सुख देने वा तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई सुखदायक नहीं है ॥३७॥

सप्तम अध्याय

ऋषि : गोतम, वशिष्ठ, काश्यप, भरद्वाज, देवश्रवा, विश्वामित्र आदि

हे सोम ! तुम अभिलाषाओं के फलों की वर्षा करने वाले हो हमारे हाथों से शोधित तुम इस पात्र में वाचस्पति देव के निमि आओ ॥१॥

हे सोम ! हमारे अन्न को मधुर एवं सुस्वादु बनाओ। देव-प्रीत्य यह आहुत स्वाहुति हो ॥२॥

हे उपांशुगृह ! तुम सब पार्थिव और दिव्य तेजों से उत्पन्न हो। म प्रजापति तुम्हें मेरी ओर प्रेरि करें। सूर्य की प्रसन्नता के लिए मैं तु आहुति देता हूँ, इसे स्वीकारो। मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥३॥

हे इन्द्र ! तुम इस कलशस्थ सोम की रक्षा करो। हमारे पशु-अन्ना की रक्षा करो ॥४॥

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारी कृपा से द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष की अन्त स्थापना करता हूँ। तुम आहुति से तृप्त होओ ॥५॥

हे उपांशुगृह ! सब इन्द्रियों एवं पार्थिव और दिव्य प्राणियों से तु आविर्भूत हुए हो। मनरूप प्रजापति तुम्हें मेरी ओर प्रेरित करें ॥६॥

हे अग्नि ! हे वायु ! तुम यज्ञ में आओ। तुम सर्वव्यापक हो, तुम्ह हजार वाहन हैं। सोम तुम्हारी सेवा में समर्पित है। हे सोमरस ! तुम्हें वायु की प्रीत्यर्थ ग्रहण करता हूँ ॥७॥

हे इन्द्र ! हे वायु ! सोमरस तुम्हारे निमित्त अभिषुत है। इस पीने तुम हमारे यज्ञ में आओ ॥८॥

हे इन्द्र ! हे वायु ! यह यज्ञस्थल तुम्हारा स्थान है। हे सोम !

हें इन्द्र-वायु की प्रीति के लिए इस स्थान में स्थापित करता हूँ। हे
त्रावरुण ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए सोम निष्पन्न किया गया है, तुम
ारे आह्वान को सुन यज्ञ में इसे ग्रहण करने आओ। हे सोमरस ! मैं
े मित्रावरुण की प्रसन्ना के लिए उपयाम-पात्र में ग्रहण करता हूँ ॥९॥

हे मित्रावरुण ! तुम हमें अन्य पुरुष को अप्राप्य गी प्रदान
ो ॥१०।

हे अश्विद्वय ! तुम अपनी सत्यवती वाणी से इस यज्ञ को सिंचित
ो। हे सोम ! अश्विद्वय के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता
॥११॥

हे इन्द्र ! यज्ञों में बार-बार सोमरस का पान करके तुम प्रवृद्ध होते
। यज्ञ में कुशासन पर बैठकर सोम-पान करने वाले हे इन्द्र ! हम
हारी स्तति करते हैं। हे शुक्रग्रह ! यहाँ स्थापित होओ। हे ग्रहो !
तुम्हें यहाँ प्राप्त करें ॥१२॥

हे ग्रह ! तुम श्रेष्ठ धनवाले हो। इस यजमान को धन और सन्तान
पुष्ट करो ॥१३॥

हे सोम ! तुम अखंड पराक्रम से युक्त हो। हम तुम्हारी कृपा से
शील रहें ॥१४॥

मेधावी वृहस्पति देव मुख्य हैं। इन्द्र के निमित्त यह सोमाहुति दी
ती है, यह इन्द्र के द्वारा ग्रहीत हो ॥१५॥

महान् चन्द्रमा मेधावी सोम की शिशु के समान स्तुति करते हैं।
ोम ! मैं यहाँ तुम्हें स्थापित करता हूँ ॥१६॥

श्रेष्ठकर्मा मेधावी सोमभाग में मन लगाते हैं। वे सोम को अंगुलियों
त्तू में मिलाते हैं। हे मन्थगृह ! तू यजमान की सन्तति की रक्षा
॥१७॥

हे सुप्रजायुक्त गृह ! यजमान को अपत्यवान् करते हुए इसके धन
पुष्टि करो ॥१८॥

हे विश्वेदेवाओ ! तुम स्वर्ग और अन्तरिक्ष में ग्यारह रहते हो और
वी पर अपनी महिमा से बारह हो जाते हो। तुम इस यज्ञकर्म को
कार करो ॥१९॥

हे ग्रह ! तुम इस यज्ञ की और इस यजमान की रक्षा करो। यज्ञ-
मी विष्णु यज्ञ की रक्षा तीनों सवनों में करें ॥२०॥

सोम ब्राह्मणों और क्षत्रियों का प्रीतिपात्र होने के निमित्त ग्रह-पात्र
रित होता है। यह सोम अन्न, दुग्ध, अभीष्ट और धान्य की वृद्धि

ए क्षरित होता है और पृथिवी को परिपूर्ण करता तथा त्रिलोक के
यों की अभीष्ट-सिद्धि करता है ।।२१।।
हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में एकत्र हुए हो । हे उक्थग्रह ! तुम्हें
-वरुण की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ । हे वृहत्साम के पुत्र
! मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ ।।२२।।
हे सोम ! तुम्हें देव प्रसन्नकर्त्ता मानकर मित्रावरुण, अग्नि, इन्द्र,
, वृहस्पति और विष्णु आदि देवों की प्रसन्नता तथा यज्ञ की
घ्न समाप्ति के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।।२३।।
सूर्य के मूद्र्धा रूप एवं सूर्य द्वारा प्रकाशित तथा हव्य द्वारा सम्मा-
अग्नि देव को देवताओं ने चमसपात्र से प्रकट किया ।।२४।।
उपयामपात्र में रखे गये हे सोम ! तुम स्थिर निवास वालों में
तम और अच्युतों में भी अच्युत हो । इसीलिए ध्रुव नाम से ख्यात
मैं तुम्हें जनहितकारी इन्द्र देवता की प्रसन्नता के लिए इस स्थान
तिष्ठित करता हूँ ।।२५।।
हे सोम ! रसपात्र में डालते समय तुम्हारा अंश पृथिवी पर गिर
ा है. पाषाणों से कूटते समय जो अंश इधर-उधर छिटक जाता है,
षवण करते समय फलक में नीचे जो अश गिर जाता है अथवा
र्यु के द्वारा निष्पन्न करने में जो अंश नष्ट हो जाता है; उन सब
ं को भी मन से ग्रहण करके मैं तुम्हें अग्नि में होम करता हूँ ।।२६।।
हे उपांशु ग्रह ! तेजस्वी तुम मेरे प्राण-व्यान वायु, वर्चस्, वाणी,
कुशलता, श्रोतृ-शक्ति और नेत्र ज्योति में वृद्धि करो ।।२७।।
हे ग्रह ! तुम स्वभावतः कान्तिदाता हो मुझे आत्म-तेज, बल
न्धी तेज, वर्चस, आयु और सर्व तेज प्रदान करो ।।२८।।
हे द्रोण कलश ! तुम प्रजापति हो । हम तुम्हें सोम से परिपूर्ण कर
ं हैं । हमें अभीष्ट दो और यश दो । हे अग्नि ! हे वायु, हे सूर्य ! मैं
र सन्तान वाला होकर तथा धनसम्पन्न होकर यश प्राप्त करूँ ।।२९।।
हे प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि द्वादश ग्रहो ! मैं तुम्हें चैत्र, वैशाखादि
श मासों की सन्तुष्टि के लिए ग्रहण करता हूँ ।।३०।।
हे इन्द्राग्नी ! तुम ऋक्-साम-यजुर्मंत्रों से आदित्य के समान स्तुत्य
अतः सोमपानार्थ यज्ञ में आओ । और अपना भाग ग्रहण करो । हे
बीसवें ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो । मैं तुम्हें
ाग्नी के प्रीत्यर्थ ग्रहण करता हूँ । हे इन्द्राग्नी ! तुम्हारा यह स्थान है ।
तुम्हें तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त यहाँ अधिष्ठित करता हूँ ।।३१।।

हे विश्वेदेवो ! तुम हमारे रक्षक हो । तुम मनुष्यों को पुष्ट
हो । तुम यजमान के पास सोमपान के निमित्त आओ । हे पच्चीसवें
तुम्हें उपयाम पात्र से विश्वेदेवों को प्रसन्न करने के लिए मैं ग्रहीत
हूँ ॥३२-३३॥

हे विश्वदेवो ! यज्ञ में आगमन करो और आसनस्थ हो । हे
तुम्हें उपयाम पात्र में विश्वेदेवों के लिए ग्रहीत करता हूँ । हे
देवो ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हारी प्रसन्नता प्राप्ति के लिए
यहाँ स्थापित करता हूँ ॥३४।

हे इन्द्र ! जैसे शर्याति के यज्ञ में तुमने सोमपान किया था
हमारे यज्ञ में भी करो । तुम्हारे आज्ञावर्ती याज्ञिक तुम्हारी सेव
प्रस्तुत हैं । हे ग्रह ! उपयाम पात्र में ग्रहीत तुम्हें मैं इन्द्र के लिए
करता हूँ ॥३५॥

मरुद्गण से युक्त तथा वर्षाकारक इन्द्र को हम रक्षा के
बुलाते हैं । उपयाम पात्र में ग्रहीत हे द्वितीय ग्रह ! मरुत्वान् इन्
प्रीति के लिए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे तृतीय ग्रह ! तुम्हें
गण से बल-प्राप्ति के लिए स्थापित करता हूँ ॥३६॥

हे इन्द्र ! सर्वज्ञाता, वृत्रहन्ता तुम हमारे यज्ञ के स्वीकार
वाले हो, यहाँ यज्ञ में आओ और मरुतों के साथ सोमपान करो. श
को नष्ट करो । हमें अभयदान करो । हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में
हो, इन्द्र की प्रसन्नता के लिए तुम्हें स्थापित करता हूँ । तुम्हें मरु
निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥३७॥

हे मरुत्वान् इन्द्र ! तुम जलवृष्टि करने वाले हो । सोम र
करके तुम हर्षित होओ । तुम प्रतिपदादि तिथियों में सम्पन्न सो
राजा हो । हे ग्रह ! उपयाम पात्र में स्थित तुम्हें मैं इन्द्र की प्री
लिए ग्रहण करता हूँ ॥३-॥

हम पर अनुकूल इन्द्र पराक्रम के लिए प्रवृद्ध होते हैं । वे हमारे
को बढ़ाएँ । हे चतुर्थ ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो, मैं तुम्हें
की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ । यह तुम्हारा स्थान है । महे
लिए मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥३९-४०॥

सूर्य देवता रश्मियों के समूह वाले, सर्व पदार्थों के ज्ञाता और
तेज वाले हैं । सूर्य रश्मियाँ संपूर्ण जगत् को प्रकाशित करती हैं
हवि उनको स्वाहुत हो ॥४१॥

ये सूर्य दिव्य-रश्मियों के पुंज हैं । वे मित्र, वरुण और अ

प्रकाशित नेत्र रूप हैं। विश्व की आत्मा और जगत् के प्रकाशक सूर्य उदित होकर द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण करते हैं। यह आहुति सूर्य के लिए स्वाहुत हो ॥४२॥

हे अग्नि ! तुम सम्पूर्ण मार्गों के ज्ञाता हो। हमको ऐश्वर्य के निमित्त सुपथों से ले चलो। कर्म की बाधा रूप पाप को हमसे दूर करो। हम तुमको नमस्कार एवं हवि भेंट करते हैं ॥४३॥

यह अग्नि हमें धन दे। हमारे शत्रुओं को नष्ट करे। शत्रु का धन हमें दे। हम शत्रु पर विजय पायें। उनके लिए यह आहुति स्वाहुत हो ॥४४॥

दक्षिणा रूप में प्राप्त हे गौओ ! तुम्हें ब्रह्मा ऋत्विजों को दें। हम तुम्हें पाकर स्वर्ग के देवयान मार्गों को देखते हैं और अन्तरिक्ष में पितृ-यान मार्ग को देखते हैं। हे ब्रह्मा ! ऐसा करो कि ऋत्विजों को दक्षिणा में देकर भी कुछ और शेष बच जाय ॥४५॥

ओजस्वी, यशस्वी पिता और पितामह वाले, ऋषिकल्प मन्त्रों के व्याख्याता ब्राह्मण को मैं प्राप्त करूँ, जिसके पास सम्पूर्ण सुवर्ण दक्षिणा में जाय। हे दक्षिणा ! ऋत्विजों के पास जाओ और देवों को प्रसन्न करो ॥४६॥

अग्नि वरुण मुझे स्वर्ण दें। स्वर्ण मुझे नीरोगता दे। हे स्वर्ण ! तुम दाता को परमायु दो। प्रति-ग्रहीता मैं भी सुखी होऊँ। हे गौ ! रुद्र रूप वरुण तुम्हें मुझे दें। गौ मुझे नीरोगता दे। हे गौ ! तुम दाता के प्राण बल को बढ़ाओ और प्रतिग्रहीता के आयु-बल को बढ़ाओ ॥४७॥

किसने दान किया ? कामना ने दान किया। कामना ही प्रतिग्रहीता है। किसको दान किया ? यज्ञ फल की कामना को ही दान किया ॥४८॥

अष्टम अध्याय

ऋषि : आंगिरस, कुत्स, भरद्वाज, अत्रि, गोतम आदि।

हे सोम ! तुम उपयाम में ग्रहीत हो। मैं तुम्हें आदित्यों की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे स्तुत्य विष्णु ! तुम्हें सोम समर्पित है। तुम इसकी निर्विघ्न रक्षा करो ॥१॥

हे इन्द्र ! हिंसा तुम्हारा स्वभाव नहीं है। तुम हवि को पास आकर सेवन करते हो। तुम्हारा हवि-दान तुम्हीं से सम्बन्धित होता है ॥२॥

हे आदित्यो ! तुम निरालस्य हो देवों और मनुष्यों की रक्षा करते

हो। तुम्हारा, सत्य, अविनाशी, विज्ञान एवं आनन्दमय, पराक्रम सूर्य-मण्डल में प्रतिष्ठित है ॥३॥

यह यज्ञ आदित्यों की प्रसन्नता प्राप्ति के लिए है। हे आदित्यो! कल्याण करो, हमें मंगलमयी वृद्धि प्राप्त कराओ, पापियों की धनवृद्धि भी हमारे अभिमुख करो ॥४॥

हे सूर्य! तुम अन्धकारनाशक हो। पात्र में तुम्हारे निमित्त जो सोम है, उसे पीकर प्रसन्न होओ। हे कर्मवान् पुरुषो! तुम्हारे सशक्त आशीर्वाद से यजमान-दम्पति यज्ञ के फल एव पुत्रोत्पत्ति को प्राप्त करे ॥५॥

हे सविता देव! हमें वरणीय यज्ञ-फल दीजिए। हम भविष्य में भी नित्य यज्ञफल प्राप्त करते हुए स्थायी-दिव्य-सिद्ध-फल भोगें ॥६॥

हे सोम! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। तुम सविता से संबन्धित हो। तुम अन्न-धारक हो, अतः मुझे भी अन्न दो। मुझे यज्ञ-फल दो। मुझसे और यजमान से स्नेह करो। मैं सविता के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥७॥

हे महावैश्व देवग्रह! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। भली प्रकार पात्र में स्थित हो। विश्व के रचयिता प्रजापति के लिए यह अन्न है। मैं तुम्हें विश्वेदेवों के लिए ग्रहीत करता हूँ ॥८॥

हे सोम! तुम दिव्य हो। उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। ब्राह्मण ऋत्विजों से निष्पन्न तुम्हें, तुम्हारे रसयुक्त बल को मैं समृद्ध करता हूँ। परमात्मा रूप होकर मैं ही स्वर्गादि उन्नत लोकों में और पृथिवी पर स्थित हूँ। अन्तरिक्ष मेरा पिता समान पालक है। परम रूप होकर ही जो हृदय रूप गुहा अत्यन्त गोप्य है, वह मैं ही हूँ ॥९॥

हे अग्नि! तुम त्वष्टा-सहित सोमपान करो। तुम्हारे लिए यह आहुति स्वाहुत हो। हे उद्गाता! तुम वीर्यवान् हो, प्रजापालक हो। तुम्हारी कृपा से मैं बलवान् पुत्र पाऊँ ॥१०॥

हे पंचम ग्रह! तुम उपयाम-पात्र में ग्रहीत हो। तुम्हारे वर्ण वाले सोम रूप हों। मैं ऋक् एवं सामवेद की प्रीति के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे सोमयुक्त धान्यो! तुम इन्द्र के दोनों हर्यश्वों के निमित्त ग्रह से मिलते हो ॥११॥

हे सोमसिक्त धान्य! यजुर्मन्त्रों से कामना किये गये और ऋक् मन्त्रों से स्तुत तथा उक्थों से प्रवृद्ध हे सोम! तुम्हारे सेवन से वशुधन प्राप्त होता है। तुम्हारे भक्षण के उस फल की कामना करता हुआ मैं

हारा भक्षण करता हूँ ॥१२॥

हे शकल ! अग्नि में डालने योग्य तुम देवों के प्रति किये गये, मनुष्यों प्रति किये गये, पितरों के प्रति किये गये सभी प्रकार के अपराधों और पों को नष्ट करते हो। मैंने जो जाने या अनजाने में पाप किये हैं ारे उन सभी पापों को दूर कीजिए ॥१३॥

हम ब्रह्म तेज से युक्त होते हुए दुग्ध-रसादि को प्राप्त करें, अपनी की न्यूनता को पूर्ण करें ॥१४॥

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। हमें श्रेष्ठ मन तथा गवादि धन दो। श्रेष्ठ विद्वानों से युक्त करो और हमारा कल्याण करो। हमारा यज्ञ तुम्हारे निमित्त हो ॥१५॥

हम ब्रह्म तेज से युक्त हों, सामर्थ्यवान् देह वाले हों और दुग्धादि ार्थ पायें। त्वष्टा हमें ऐश्वर्य दें और देहगत न्यूनता दूर करें ॥१६॥

दानशील धाता, सविता, त्वष्टा, प्रजापति और विष्णु हमें ऐश्वर्य ान करें और हमारी हवि ग्रहण करें। ये यजमान को धन-सन्तान दें र आहुति स्वाहुत हो ॥१७॥

हे देवों ! तुम यज्ञ में यज्ञ सेवन के लिए आये हो। तुम्हारे स्थानों हमने वरणीय बना दिया है। हे देवो ! तुम सबमें निवास करने वाले । हव्य को अपने रथों में रखकर ले जाते हो। जिनके पास रथ नहीं है, का भी हव्य उन तक पहुँचाओ। हमें श्रेष्ठ धन दो। यह तुम्हारे ए दी गयी आहुति स्वाहुत हो ॥१८॥

हे अग्नि ! तुम यज्ञ में जिन देवताओं को बुलाकर लाये थे, उन्हें ने-अपने स्थानों में पहुँचाओ। हे देवो ! तुम सभी पुरोडाश खाकर न पीकर यज्ञ पूर्ण होने पर स्वर्ग में स्थान ग्रहण करो। यह आहुति ाहुत हो ॥१९॥

हे अग्नि ! यज्ञार्थ हमने इस स्थान का वरण किया, तुम्हें प्रदीप्त ा, देवों का आह्वान किया और यज्ञ किया। अब यज्ञ पूर्ण हुआ, तुम अपने स्थान को जाओ। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२०॥

हे यज्ञ के जानने वाले देवगण ! यज्ञ में आओ, तृप्त होओ और फिर ने-अपने मार्ग से गमन करो। हे परमात्मा ! यज्ञ तुम्हें समर्पित है। इसे वायु में प्रतिष्ठित करो ॥२१॥

हे यज्ञ ! तू सुफल के निमित्त विष्णु की ओर एवं सुफल देने के लिए मान की ओर तथा वायु की ओर जा। यह आहुति स्वाहुत हो।

हे यजमान, तुम्हारा ऋक्-साम मन्त्रों और पुरोडाश वाला यज्ञ सर्वांगपू
है। तुम यज्ञ का फल पाओ। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२२॥

हे रज्जु-मेखला ! तुम जल में गिरकर सर्पाकार न होना। हे कृष्ण
विषाण ! तुम अजगराकार मत होना ॥२३॥

हे अग्नि ! तुम्हारा मुख अपांनपात है, उसे जलों में प्रविष्ट क
और राक्षसों को मारो। फिर समिधा युक्त घृत से मिलो। तुम्हा
जिह्वा घृत-ग्रहण के लिए उद्यत हो ॥२४॥

हे सोम ! तुम्हारा हृदय जलों में है, मैं तुम्हें वहीं भेजता हूँ। तु
औषधियों और जलों में प्रविष्ट होओ। यज्ञ के पालक तुमको हमा
नमन। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२५॥

हे जलो ! सोमकुंभ तुम्हारा स्थान है। तुम इसे पुष्टिप्रद करो
हे सोम ! तुम्हारा स्थान जलरूप है। तुम इसमें अवस्थान करते हु
कल्याणकारक हवन करो और हमारी दुःखों से रक्षा करो ॥२६॥

हे अवगृथ यज्ञ ! तीव्रगति वाले तुम अब मन्दगति से गमन करो
देवों के प्रति, ऋत्विजों तथा यज्ञदर्शकों के प्रति हमसे जो पापापराध ब
गया है, उसे हमने जल में विसर्जित कर दिया है। तुम्हारी कृपा से ह
पापों से दूर हों ॥२७॥

दश महीने पूर्ण होने पर जरायु में लिपटा गर्भ चलायमान हो औ
जैसे वायु तथा समुद्र की लहरें हिलती हैं, वैसे हिलता हुआ वह जरा
सहित बाहर आये ॥२८॥

हे सुलक्षणा नारी ! तेरा गर्भ यज्ञ से सम्बद्ध है, वह यज्ञसदृश शु
है। उसके सर्वावयव पूर्ण हैं, वह अकुटिल और श्रेष्ठ है। उसे मैं भ
प्रकार माता (तुझ) से मिलाता हूँ। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२९॥

गर्भाशय स्थित मेधावी गर्भ महिमा को प्रकट करे। वह माता
एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी और चतुष्पदी रूप में तथा चारों वर्णों
चारों आश्रमों से युक्त अष्टपदी रूप में प्रशंसित करें। आहुति स्वा
हो ॥३०॥

हे मरुद्गण ! जिस यजमान के यज्ञ में तुमने सोमपान किया,
चिरकाल जिये ॥३१॥

प्रशंसनीय द्यावापृथिवी यज्ञानुष्ठान को पूर्ण करें और जलवर्षा क
उपयोगी स्वर्णादि धन दें ॥३२॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! ऋक्-साम-यजुर्मन्त्रों से तुम्हारे अश्व रथयो

हुए हैं। तुम रथ पर चढ़ो, यज्ञ में आओ। सोमाभिषव में उत्पन्न प्रस्तरों की ध्वनि तुम्हारे मन को यज्ञाभिमुख करे ॥३३॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे दोनों हरितवर्णी अश्व दृढ़ावयववान् और दीर्घकेश हैं, उन्हें रथ में योजित करो। यहाँ आओ, सोमपान करके प्रसन्न होओ और हमारी स्तुतियों को सुनो ॥३४॥

इन्द्र के घोड़े महान् इन्द्र को यज्ञ में स्तोताओं की स्तुतियों के और यजमानों के समीप लाते हैं ॥३५॥

सर्वश्रेष्ठ, अन्तर्यामी रूप से त्रैलोक्य में विद्यमान, सोलह कलात्मक इन्द्र प्रजाओं के स्वामी हैं और प्रजाओं के द्वारा व्यादृत हैं। वे प्राणिपालन के निमित्त सूर्य, अग्नि और वायु-तीनों तेजों में प्रविष्ट होते हैं ॥३६॥

हे सोऽसोग्रह ! इन्द्र और वरुण ने ही प्रथम तुम्हारे सोम को ग्रहण किया था। उसके पश्चात् अब मैं सोमान्न का भक्षण करता हूँ। सरस्वती तृप्ति को प्राप्त हो। यह आहुति स्वा त हो ॥३७॥

हे अग्नि ! तुम यजमान को धन दो। हमें ब्रह्मतेज दो। हे तेजस्वी अग्नि ! मैं तुम्हारी कृपा से तेजस्वी होऊं ॥३८॥

हे इन्द्र ! तुम अपने तेज-सहित उठकर सोमरस का पान करते हुए चिबुक कम्पित करो। हे द्वितीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो, मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ और यहाँ स्थापित रहता हूँ। हे ओजस्वी इन्द्र ! मुझे सर्वाधिक ओज दो ॥३९॥

सूर्य रस्मियाँ सब पदार्थों में व्याप्त हैं, जैसे अग्नि। हे तृतीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो। मैं तुम्हें सूर्य की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ और यहाँ स्थापित करता हूँ। हे सब देवताओं में अधिक तेजस्वी सूर्य ! मैं तुम्हारी कृपा से सर्वाधिक तेजस्वी होऊँ ॥४०॥

विश्व को दृष्टिदान देने के लिए सूर्य रश्मियाँ सूर्य को वहन करती हैं। तब अन्धकार दूर होने पर दृष्टि काम करने लगती है। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो, तुम्हें सूर्य के निमित्त ग्रहण करता हूँ और यहाँ स्थापित करता हूँ ॥४१॥

हे गौ ! इस द्रोणकलश को सूंघो। तुम्हारी नासिका में पहुँचे। फिर तुम श्रेष्ठ दुग्ध-रस हमें दो। हमारे द्वारा स्तुत तुम हमें विपुल धन, दुधारू गौएँ और ऐश्वर्य देकर हमारा घर भर दो ॥४२॥

हे गौ ! सर्वस्तुत्य तुम मनुष्यों और देवताओं द्वारा अभिलषित,

अदिति के समान अदीना, दुग्धवती, अवध्या और महिमामयी हो। तुम्
अनेक नाम हैं। यज्ञ में आह्वान की गयी तुम हमारे रमणीय यज्ञ को दे
को जनाओ ॥४३॥

हे इन्द्र ! समुपस्थित युद्ध में शत्रुओं को पतित करो, पराजित क
हमारे पीड़क को नरक में डालो। हे इन्द्र ग्रह ! तुम उपयाम पात्र
ग्रहीत हो, रणक्षेत्र में ग्रहीत इन्द्र के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥४४॥

इन्द्र को हम यज्ञ में अपनी समृद्धि और रक्षा के लिए बुलाते है
हे इन्द्र ग्रह ! तुम्हें तुम्हारे स्थान पर विश्वकर्मा इन्द्र के लिए स्थापि
करता हूँ ॥४५॥

हे परमात्मन् ! तुम भक्तों को प्रवृद्ध करते हो। हवि-प्रदान
स्तुति को चाहते हो, प्राचीन ऋषियों से भी तुम प्रणम्य हो, तुमने इ
को विश्व-रक्षा करने तथा स्वयं अवध्य रहने वाला और प्रणम्य बनाया
तुम्हारे हविरूप पराक्रम से ही इन्द्र भी महिमावान् हुए। हे ग्रह ! तु
उपयामपात्र में ग्रहीत हो। तुम्हें परमात्म देव की प्रसन्नता के लि
ग्रहण करता हूँ और यहाँ स्थापित करता हूँ ॥४६॥

हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। गायत्री छन्द के वरणी
तुम्हें अग्नि की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ। हे द्वितीय ग्रह ! अनुष्टु
छन्द के वरणीय, तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ
उपयाम पात्र में ग्रहीत जगती छन्द के वरणीय तृतीय ग्रह को विश्वेदे
की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे सोम ! अनुष्टुप् छन्द तुम्हा
स्तुति के लिए प्रयुक्त है ॥४७॥

हे सोम ! उदरस्थ जल वाले मेघों से कल्याणकारी वृष्टि कराने
लिए मैं तुम्हें कम्पायमान करता हूँ। हे सोम ! तुम पवित्र हो, मैं तु
पवित्र जल से कम्पित करता हूँ और सूर्य-रश्मियों से कम्पित करत
हूँ ॥४८॥

हे वृषभरूप सोम ! तुम सेवन-समर्थ हो, तुम्हारा ककुभ् आदित्य
समान तेजस्वी है। आदित्य सोम के पुरोगामी हैं अथवा सोम ही सो
के पुरोगामी हैं। हे सोम ! चैतन्य नाम वाले तुमको मैं ग्रहण करत
हूँ ॥४९॥

हे सोम देव ! तुम्हें प्राप्त करके सभी सेवन की इच्छा वाले होते
अतः तुम अग्नि के भक्ष्य बनो। हे सोम ! तुम तेजस्वी हो, और इ
के प्रिय अन्न हो तथा हमारे मित्ररूप हो ॥५०॥

हे गौओ ! तुम यजमान से सन्तुष्ट रहो, उससे प्रीति करो, उसी

यहाँ रमण करो। यह आहुति स्वाहुत हो। धारणकर्त्ता अग्नि पार्थिव अग्नि को आविर्भूत करता और पृथिवी के रस का पान करता हुआ हमें पुत्रपौत्रादि ऐश्वर्य से सम्पन्न करे। यह आहुति स्वाहुत हो ॥५१॥

हे हविर्धान! तुम यज्ञ-समृद्धि के समान हो। हम तुम्हारी कृपा से सूर्य-ज्योति को प्राप्त करते हुए अमृतत्त्व की कामना करते हैं और देवता जानें कि हम स्वर्ग जाने की कामना भी करते हैं ॥५२॥

हे इन्द्र और मरुत्! हमसे संग्राम के इच्छुक शत्रु को तुम वज्र से हिंसित करो। तुम्हारा वज्र दूर रहने वाले शत्रु को भी पा जाय और उसे चीर डाले। हे अग्नि, वायु, सूर्य! तुम्हारी कृपा से हम श्रेष्ठ सन्तान धन प्राप्त करें ॥५३॥

सोमयाग में प्रवृत्त 'सोम' का नाम 'परमेष्ठी' है। यज्ञ में विघ्न होने पर 'परमेष्ठिनः स्वाहा' कहकर आज्य-आहुति दे। सोम के निमित्त जब मन्त्र वाणी उच्चरित होती है, तब सोम का नाम प्रजापति होता है। तब यज्ञ में विघ्न होने पर 'प्रजापतये स्वाहा' मन्त्र से आहुति दें। सोम जब अभिमुख होता है, तब उसका नाम होता है—'अन्ध'। तब विघ्न होने पर 'अन्धसे स्वाहा' मन्त्र से आज्याहुति दें। यज्ञ-भाग रक्षित होने पर सोम-नाम होता है—सविता। तब विघ्न होने पर 'सवित्रे स्वाहा' से आज्याहुति दें। दीक्षा में सोम नाम होता है—'विश्वकर्मा' तब विघ्न होने पर 'विश्वकर्मणे स्वाहा' से आहुति दें। क्रयणी गौ लाने पर नाम 'पूषा' होता है, तब विघ्न होने पर 'पूष्णे स्वाहा' मन्त्र से आज्याहुति दें ॥५४॥

क्रयार्थ प्राप्त होने पर सोम के इन्द्र, मरुत नाम होते हैं, तब विघ्न होने पर 'इन्द्राय मरुद्भ्यः स्वाहा' इस मन्त्र से आज्याहुति दें। क्रय करने पर 'असुर' नाम होता है। तब विघ्न होने पर 'असुराय स्वाहा' यह कह कर आज्याहुति दें। क्रय किया हुआ सोम 'मित्र' नाम वाला होता है तब विघ्न होने पर 'मित्राय स्वाहा' मन्त्र से, यजमान के अंश में प्राप्त हुआ सोम विष्णु संज्ञक होता है तब विघ्न होने पर 'विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा' इस मन्त्र से आज्याहुति दें। शकट में रखकर ग्रहण किया जाता हुआ सोम का नाम है—'विष्णु' तब विघ्न शान्ति के लिए 'विष्णवे स्वाहा' इस मन्त्र से आज्याहुति दें ॥५५॥

शकट के द्वारा आने वाला सोम 'सोम' होता है। उस समय विघ्न शान्ति के लिए 'सोमाय स्वाहा' मन्त्र से आज्याहुति दें। आसन्दी में रक्षित सोम 'वरुण' नामक है। तब विघ्न होने पर 'वरुणाय स्वाहा' इस

मन्त्र से आज्याहुति दें। अग्नीध्र में विद्यमान सोम का नाम है—'अग्नि'। तब विघ्न होने पर 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से आज्याहुति दें। हविर्धान में विद्यमान सोम 'इन्द्र' नाम का है। तब 'इन्द्राय स्वाहा' कहकर आहुति विघ्न शान्ति के लिए दें ॥५६॥

खण्डों में खण्डन करके रखा हुआ सोम 'विश्वेदेवा', वृद्धि को प्राप्त सोम 'विष्णु', सोमाभिषव होने पर 'यम' नामक, अभिषुत सोम विष्णु संज्ञक है, छाना जाता हुआ सोम 'वायु' संज्ञक, छनकर शुद्ध हुआ 'शुक्र' संज्ञक, छना हुआ 'शुक्र' संज्ञक, सत्तू मिश्रित 'मन्त्र' संज्ञक होता है। इन उक्त समयों पर विघ्न उपस्थित होने पर क्रमशः 'विश्वेभ्ये देवेभ्यो स्वाहा' 'विष्णवे स्वाहा', 'यमाम स्वाहा, वायवे स्वाहा, शुक्राय स्वाहा, शुक्राय स्वाहा' 'मन्थिने स्वाहा,' इन मन्त्रों मे आज्याहुतियाँ दें ॥५७॥

चमस पात्रों में ग्रहीत सोम विश्वेदेवा नामक. होम को उद्यत सोम 'असु' नामक, हूयमान सोम 'रुद्र' नामक, हुतशेष सोम 'वात' नामक, हुत-शेष, रसपान के लिए निवेदित सोम 'नृचक्ष' नामक भक्षण किया जाता हुआ 'भक्ष' नामक और भक्षण कर लेने पर 'पितर' नामक, होता है। उक्त स्थितियों में यज्ञ में विघ्न होने पर क्रमशः—विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा, असवे स्वाहा, रुद्राय स्वाहा, वाताय स्वाहा, नृचक्षसे स्वाहा, भक्षणे स्वाहा, और पितृभ्यो नाराशंसेभ्यः स्वाहा इन मन्त्रों को बोल कर आज्याहुति दें ॥५८॥

अवगृथ के निमित्त उद्यत सोम 'सिन्धु' नामक, ऋजीष कुंभ में जल के ऊपर अवस्थित सोम 'समुद्र' नामक और ऋजीष कुम्भ मे जलमग्न किया जाता हुआ सोम 'सलिल' नामक होता है। इन स्थितियों में यज्ञ में विघ्न होत पर क्रमशः सिन्धवे स्वाहा, समुद्राय स्वाहा और सलिलाय स्वाहा इन मन्त्रों से आज्याहुति दें। विष्णु और वरुण के ओज से सब लोक अपने-अपने स्थानों पर अवस्थित हैं, ये दोनों अपने पराक्रम से परा-क्रमी हैं और उनका बल अधर्ष्य है, अतः यज्ञ में पहले इन दोनों का ही आह्वान होता है। इन्हीं विष्णु और वरुण के पास सोम गया। विष्णु ही वरुण और वरुण ही विष्णु हैं। यह मंगलमयी हवि इन दोनों को ही अर्पित है ॥५९॥

स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के निमित्त यह यज्ञ उनकी ओर गया। स्वर्ग रूप उस यज्ञ के फल के रूप में विशिष्ट भोग मुझे प्राप्त हो। फिर वह मनुष्य लोकों में आता हुआ अन्तरिक्ष में पहुँचा। अन्तरिक्षस्थ उसके फल के रूप में मुझे धन प्राप्त हो। यह यज्ञ धुएँ के द्वारा पितरों के पास

आये तब वह मुझे ऐश्वर्य की प्राप्ति कराए ॥६०॥
जाकर जब पृथिवी पर आये तब वह मुझे ऐश्वर्य की प्राप्ति कराए ॥६०॥

चौंतीस प्रायश्चित्तों के पश्चात् यज्ञ की वृद्धि करने वाले प्रजापति
आदि चौंतीस देवता अन्नादि का पोषण करते हैं। यज्ञ-विस्तारक देवों
का जो अंश छिन्न हुआ है, उसे मैं धर्मपात्र में एकत्र करता हूँ। यह
आहुति उन देवों की प्रसन्नता के लिए उनके लिए स्वाहुत हो ॥६१॥

जो यज्ञ आहुति वाला है, उसका फल बढ़े और सब दिशाओं में
व्याप्त हो। द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष में व्याप्त यह यज्ञ मुझे सन्तान और
महानता दे। मैं यश और पूर्णायु पाऊँ। यह आहुति स्वाहुत हो ॥६२॥

हे सोम ! तुम इस यूपस्तम्भ को शुद्ध करो और हमें स्वर्ण, अश्व,
गौ और अन्नादि दो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥६३॥

नवम अध्याय

ऋषि : इन्द्र-बृहस्पति, वशिष्ठ, तापस, वरुण, देववात।

हे सविता देव ! वाजपेय यज्ञ को प्रारम्भ करो। यजमान की ऐश्वर्य
प्राप्ति के लिए अनुष्ठान को प्रेरित करो। सूर्य हमारे अन्न को पवित्र
करें। वाचस्पति हमारी हवि का आस्वादन करें। यह आहुति स्वाहुत
हो ॥१॥

हे प्रथम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। इन्द्र के लिए मैं
तुम्हें ग्रहीत करता हूँ। हे द्वितीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो
तथा जल, घृत और आकाश में रहने वाले हो। मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता
के लिए ग्रहण करता हूँ। हे तृतीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत
हो। तुम पृथिवी, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, देवों और देव-स्थानों में स्थित होने
वाले हो। मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए तुम्हारे इस स्थान पर
स्थापित करता हूँ ॥२॥

हे चतुर्थ ग्रह ! सूर्य में विद्यमान जलों के सार वायु और वायु के
सार प्रजापति हैं। उन्हें मैं देवों की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ।
हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। प्रजापति की प्रसन्नता के लिए
मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥३॥

हे ग्रहों ! अन्न-रस के आह्वान के कारण तुम इन्द्र को श्रेष्ठ मति
प्राप्त कराते हो। मैं भी यजमान के लिए अन्न-रस प्राप्त करता हूँ। हे
पंचम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। मैं इन्द्र की प्रसन्नता के

लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे सोम ! हे सुराग्रह ! तुम दोनों सम्मिलित हो, मुझे कल्याण युक्त करो। तुम दोनों अलग भी हो, मुझे पाप से अलग रखो ॥४॥

हे अन्नदाता रथ ! तुम इन्द्र के समान हो। तुम्हारी सहायता पाकर यजमान अन्न-लाभ करे ॥५॥

जलों में अमृत है और ओषधियाँ भी स्थित हैं। हे अश्वो (सूर्य रश्मियो !) ऐसे जलों में वेगवान् होकर तुम प्रशस्त मार्गों में प्रविष्ट होओ। हे जलो ! तुम्हारी ऊँची लहरों से सिक्त अश्व यजमान को श्रेष्ठ-अन्न देने में समर्थ हों ॥६॥

१० प्राण + वायु तथा मन २ + १० इन्द्रियां + ५ सूक्ष्म भूत—ये कुल सत्ताईस पदार्थ (गन्धर्व) हैं। वे जगत् में अश्व को (व्यापकता और वेगादि गुणों को) योजित करते हैं और वेग को धारण करते हैं ॥७॥

हे अश्व ! योजित किये जाने पर तुम इन्द्राश्व के समान शोभित हो। तुम्हें मरुद्गण रथ में योजित करें, त्वष्टा तुममें वेग-स्थापन करें ॥८॥

हे अश्व ! तुम्हारा जो वेग हृदयस्थित है, उससे वेगवान् हो हमारे लिए अन्न-विजेता होओ और वृहस्पति के चरु को सूँघो ॥९॥

सविता देव की आज्ञा में रहने वाला मैं वृहस्पति के स्वर्ग में चढ़ता हूँ। इन्द्र के स्वर्ग में चढ़ता हूँ। स्वर्ग की कामना से मैं रथ के पहियों पर चढ़ता हूँ और स्वर्ग कामना के चक्र पर चढ़ता हूँ ॥१०॥

हे दुन्दुभियो ! वृहस्पति से निवेदन करो कि हे वृहस्पति ! तुम अन्न जीतो। वृहस्पति के लिए अन्न लाभ कराओ। तुम इन्द्र से कहो—' हे इन्द्र ! तुम अन्न को जीतो ॥११॥

हे इन्द्रनियो ! वृहस्पति ने अन्न जीत लिया। अब तुम वृहस्पति के रथ को दौड़ाओ ॥१२॥

सविता देव की आज्ञावर्ती मैं वृहस्पति-सम्बन्धी अन्नों को जीतूँ। हे अश्वो ! अन्नजेता तुम मार्गों को तय करते हुए योजनों को पार करो। तुम अठारह निमेष में ही एक योजन चले जाते हो ॥१३॥

यह अश्वग्रीवा, कक्ष और मुख में बँधा है। वह मार्ग के विघ्नों को पार करता है और द्रुतगति से दौड़ता है। यह आहुति स्वाहुत हो ॥१४॥

यह अश्व विघ्नों को पार करता हुआ वेग से जाता है। जैसे पक्षी को पंख शोभित करते हैं, वैसे इस अश्व को अलंकारादि शोभित करते हैं ॥१५॥

यज्ञ में आहुति दिये जाने पर प्रचुरवेगवान् अश्व बाधाओं का नाश करके कल्याण देने वाले हैं। वे हमारी सब व्याधियों को दूर करें ॥१६॥

यजमान के मनोनुकूल चलने वाले ये अश्व हमारे आह्वान को सुनने वाले हैं। ऋजु कुटिल मार्गों पर चलने वाले ये हमें अन्नादि से संतुष्ट करते हैं। और युद्ध में अपरिमित धनों को जीत लाते हैं ॥१७॥

हे अश्वो ! तुम मेधावी और अविनाशी हो। दौड़ने से पहले तुम मधुर-हवि को सूँघो, तृप्त होओ फिर देवयान मार्ग में जाओ ॥१८॥

अन्न हमारे घर आए और द्यावापृथिवी, पिता-माता के समान हमारे रक्षक हों। सोम हमारे लिए अमृत हो जाय। हे अश्वो ! तुम अन्न को जीतने के लिए चरु को शुद्ध करके वृहस्पति-सम्बन्धी भाग को सूँघो ॥१९॥

व्यापक संवत्सर और आदित्य के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। प्रजापति के निमित्त दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो। व्यापक प्रजापति, यज्ञरूप, जगत् के कारण और स्थिति रूप के लिए, दिन के स्वामी के लिए, मुख्य नाम वाले के लिए, सब लोकों के स्वामी के लिए, प्राणों की उत्पत्ति-स्थिति और विनाश करने वाले के लिए दी गई आहुतियाँ स्वाहुत हों ॥२०॥

इस वाजपेय यज्ञ के फलस्वरूप हमारी आयु की और प्राणों की वृद्धि हो। इस यज्ञ के फल से हमारी नेत्रेन्द्रिय एवं कर्णेन्द्रिय समर्थ हों। यज्ञफल से हमारी पीठ का बल और यज्ञ की क्षमता बढ़े ॥२१॥

हे चारों दिशाओ ! तुमसे सम्बन्धित इन्द्रियाँ हममें हों; तुम्हारा धन हमें प्राप्त हो; तुमसे सम्बन्धित यज्ञकर्म और तेज हमारे हों। पृथिवी माता को नमस्कार है ॥२२॥

प्रजापति ने सृष्ट्यारम्भ में ओषधि और जलों में तेजस्वी सोम को उत्पन्न किया। सोम, ओषधि और जल हमारे लिए रसमय और मधुर हों। उनसे अभिषिक्त हम राज्य में सबका कल्याण चाहते हुए सावधानी से रहें ॥२३॥

परमात्मा ने स्वर्ग और सबलोक बनाये हैं। वे मुझ हविदाता को आहुति-दान को प्रेरित करते हैं। वे हमें सन्तान-धन-सम्पन्न करें। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२४॥

प्रजापति ने सब लोकों को उत्पन्न किया। वे सर्वज्ञ और सर्वप्रिय हैं। वे हमें सन्तान-धन दें। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२५॥

प्रजापति ने हमारे पालन करने के लिए सोम, वैश्वानर अग्नि,

द्वादश आदित्य, ब्रह्मा और वृहस्पति को नियुक्त किया है। प्रजापति के लिए हम आहुति देते हैं। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२६॥

हे प्रभो! तुमने अर्यमा, वृहस्पति, इन्द्र, सरस्वती, विष्णु आदि को रचा है। इनको हमें धन-अन्न देने को प्रेरित करो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२७॥

हे अग्नि! इस यज्ञ में हमारी ओर अभिमुख होओ, श्रेष्ठ मन वाले होओ और हमारे लिए हितकारी वचन कहो। धनदाता! तुम हमें धन दो, हमारी याचना स्वीकारो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥२८॥

हे परमात्मा! तुम्हारी कृपा से अर्यमा, पूषा, वृहस्पति, सरस्वती हमारी कामनाएँ पूर्ण करें ॥२९॥

सविता देव की प्रेरणा से यजमान को वृहस्पति के राज्य में अभिषिक्त करता हूँ और सरस्वती के ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित करता हूँ ॥३०॥

एकाक्षर छन्द से अग्नि ने प्राण को जीता। मैं भी उसके प्रभाव से जीतूं। दो अक्षर वाले छन्द से अश्विद्वय ने मनुष्यों को जीता, मैं भी उससे मनुष्यों को जीतूं। तीन अक्षर वाले छन्द से विष्णु ने तीन लोकों को जीता, मैं भी उससे त्रिलोक-विजयी होऊँ। चार अक्षर वाले छन्द से सोम ने चौपायों को जीता, मैं भी उससे पशुओं को जीतूं ॥३१॥

पंचाक्षर छन्द से पूषा ने पाँच दिशाओं को जीता, मैं भी उससे दिग्विजयी होऊँ। षडक्षर छन्द से सविता ने छह ऋतुएँ जीतीं, मैं भी उससे ऋतुविजयी होऊँ। सप्ताक्षर छन्द से मरुद्गण ने गौआदि सात ग्राम-पशुओं को जीता, मैं भी उससे पशु-विजयी होऊँ। अष्टाक्षर छन्द से वृहस्पति ने गायत्री देवताओं को जीता, मैं भी उससे उसे जीतूं ॥३२॥

नवाक्षर छन्द से मित्रदेव ने त्रिवृतसोम को जीता, मैं भी उससे जीतूं। दशाक्षर मन्त्र से वरुण ने विराट् को जीता, मैं भी उससे विराट् को जीतूं। एकादशाक्षर छन्द से इन्द्र ने त्रिष्टुप छन्द के देवता को जीता, मैं भी उसे जीतूं। द्वादशाक्षर स्तोत्र से विश्वदेवताओं ने जगती छन्द के देवता को जीता, मैं भी उससे जीतूं ॥३३॥

त्रयोदशाकर छन्द से वसुओं ने त्रयोदशस्तोम को जीता, मैं भी उससे उसी प्रकार जीतूं। चतुर्दशाक्षर छन्द से रुद्रगण ने चतुर्दश स्तोम को जीता, मैं भी उससे जीतूं। पंचदशाक्षर छन्द से आदित्यों ने पन्द्रहवें स्तोम पर विजय पायी, मैं भी उसके द्वारा पाऊँ। षोडशाक्षर छन्द से अदिति ने सोलहवें स्तोम को जीता, मैं भी उसके द्वारा जीतूं।

सप्तदशाक्षर छन्द से प्रजापति ने सत्रहवें स्तोम को जीता, मैं भी जीतूँ ॥३४॥

हे पृथिवी ! तुम अपने यज्ञभाग का सेवन करो, यह आहुति स्वाहुत हो। पूर्व दिशा के निवासी देवताओं के नेता अग्नि, दक्षिण दिशा के देवों के नेता यम, पश्चिम के विश्वेदेवा और उत्तर दिशा के मित्रावरुण अथवा मरुद्गण—इन सभी देवों को दी गयी हमारी आहुतियाँ स्वाहुत हों ॥३५॥

पूर्व दिशा के जिन देवताओं के नेता अग्नि हैं, उन देवों को; दक्षिण दिशा के उन देवताओं को, जिनके नेता यम हैं; पश्चिम दिशा के जिन देवताओं के नेता विश्वदेवा हैं; उन देवों को और उत्तर दिशा के जिन देवों के नेता मरुद्गण हैं, उन देवों को दी गयी हमारी आहुति स्वाहुत हो ॥३६॥

हे अग्नि ! शत्रु-सेना को हराओ, शत्रु-सेना को चीर डालो। तुम्हारी गति अरोक है, शत्रुओं का तिरस्कार कर अनुष्ठाता यजमान को तेज प्रदान करो ॥३७॥

हे आयुध ! सविता देव की प्रेरणा से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे आयुध ! मैं तुम्हें राक्षसों के संहारार्थ प्रक्षेप करता हूँ। राक्षसवंश नष्ट हुआ, शत्रु-वध हुआ, शत्रु हत हो गया ॥३८॥

हे राजन् ! सविता देव प्रजा के शासन-कार्य में तुम्हें प्रेरित करें। अग्नि देवता तुम्हारा गृहस्थों पर आधिपत्य स्थापित कराएँ। सोमदेव वनस्पतिविषयक सिद्धि दें। वृहस्पति तुम्हें वाणी पर प्रतिष्ठित करें। इन्द्र ज्येष्ठाधिपत्य में, रुद्र पशु आधिपत्य में, मित्र सत्य व्यवहार में और वरुण तुम्हें धर्माधिपत्य में प्रतिष्ठित करें ॥३९॥

हे देवो ! अमुक नामवाले अमुक के पुत्र को महान् क्षात्रधर्म के लिए और जन-शासक होने के लिए शत्रु-शून्य करो तथा इसे अमुक जाति का राजा बनाओ। हे प्रजागण ! यह तुम्हारा राजा हो और ब्राह्मणों का राजा सोम हो ॥४०॥

दशम अध्याय

ऋषि : वरुण, देववात, वामदेव, शुनःशेप।

इन मधुर-रसयुक्त-सुशोभित जलों को इन्द्रादि देवों ने ग्रहण किया। जलों से मित्रावरुण ने अभिषेक किया, उन जलों को हम ग्रहण करते हैं ॥१॥

हे जल की लहर ! तुम शक्तिशालिनी हो, मुझे शक्तिशाली राष्ट्र प्रदान करो, यजमान को शक्तिशाली राष्ट्र प्रदान करो । यह तुम्हें दी गयी आहुति स्वाहुत हो ॥२॥

हे प्रवाहयुक्त जलो ! तुम स्वभावत: ही राष्ट्रदाता हो; मुझको राष्ट्र-दान दो, अमुक यजमान को राष्ट्र-दान दो । यह आहुति स्वाहुत हो ॥३॥

हे जलो ! तुम सूर्य की त्वचा में रहने वाले हो और स्वभाव से राष्ट्र-प्रदाता हो, मुझे और अमुक यजमान को राष्ट्रदान दो। तुम्हें दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो । हे तृणस्थ, तृणाग्रस्थ जलो, हे मधुरूप जलो, हे गौ से सम्बन्धित जलो, हे जनभृत जलो ! हे विश्वभृत जलो ! हे मरीचिरूप जलो ! हे मधुरस जलो ! तुम सब स्वभावत: ही राष्ट्र के प्रदाता हो, मुझे तथा इस यजमान को शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र का दान करो । तुम सबके लिए पृथक्-पृथक् दी गयी आहुतियाँ स्वाहुत हों ॥४॥

हे चर्म ! तुम सोम कान्ति-युक्त हो, वह कान्ति मुझमें प्रविष्ट हो । यह आहुति अग्नि के लिए, सोम की प्रसन्नतार्थ, सविता की प्रीति के लिए, सरस्वती के लिए, इन्द्र की प्रीत्यर्थ, घोषयुक्त देवता के लिए, जलों के प्रशंसित कर्मों के लिए, पाप-पुण्य विभाजन के लिए और अर्यमा के लिए पृथक्-पृथक् स्वाहुत हो ॥५॥

हे पवित्र कुशद्वय ! तुम यज्ञ-कार्य में लगो । सविता देव की आज्ञा से मैं छिद्ररहित 'पवित्री' से और सूर्यरश्मियों से तुम्हें सींचता हूँ । हे जलो ! तुम राक्षसों से कभी नहीं हारे। तुम वाणी के बन्धु हो । 'स्वाहा' से शुद्ध होकर तुम इस यजमान को राज्यश्री से विभूषित करो ॥६॥

यह जल चार पात्रों में स्थित है । ये पात्र अभिषेक-कर्म में वरण किये गये हैं । ये घर के समान सबके धारक और मातृरूप में विश्व-निर्माणकर्त्ता हैं । जलों के शिशु रूप यजमान ने इन्हें सादर स्थापित किया है ॥७॥

हे वस्त्र ! तुम यजमान के लिए गर्भधारणभूत जल-सदृश हो । हे रक्त कम्बल ! तुम इस यजमान के लिए हो । हे उष्णीष ! तुम इसके लिए हो । हे धनुष ! तुम यजमान के पुत्र रूप शत्रु-वधकर्त्ता आयुध हो । हे धनुष की दक्षिण कोटि ! तू मित्र सम्बन्धी और वाम कोटि, तू वरुणदेव सम्बन्धित है । हे धनुष ! तेरे द्वारा यह शत्रु-वध करे । हे बाणो ! तुम इसके शत्रुओं के भंगकर्त्ता, कँपाने वाले और चीरने वाले होओ और

इसकी पूर्व, पश्चिम, उत्तर दिशा तथा सभी दिशाओं में रक्षा करने वाले होओ ।।८।।

पृथिवी पर रहने वाला मनुष्य-समूह, अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुण, सूर्य चन्द्रमा, पूषा, विश्वेदेवा, द्यावापृथिवी और अदिति इस यजमान को जानें ।।९।।

हे यजमान ! अब तुम पूर्व दिशा को जाओ । गायत्री छन्द तुम्हारी रक्षा करे । रथन्तर सोम, त्रिवृत स्तोम, वसन्त ऋतु परब्रह्म और धनरूप ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करें ।।१०।।

हे यजमान ! तुम दक्षिण दिशा में जाओ । वृहत्साम, पंचदश-स्तोम, सप्तदश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु क्षात्र धर्म और ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करें ।।११।।

हे यजमान ! तुम पश्चिम दिशा में जाओ । जगती छन्द, वैरूप साम, सप्तदश सोम, वर्षाऋतु, वैश्यधर्म और ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करें ।।१२।।

हे यजमान ! तुम उत्तर दिशा में जाओ । अनुष्टुप छन्द, वैराज साम, एकविंश स्तोम, शरद् ऋतु और ऐश्वर्य तुम्हारे रक्षक हों ।।१३।।

तुम ऊर्ध्वलोक पर आरोहण करो । पंक्ति छन्द, शक्वर सोम, तैंतीस स्तोम, हेमन्त-शिशिर ऋतु, तेजात्मक ऐश्वर्य तुम्हारे रक्षक हों ।।१४।।

हे व्याघ्र चर्म ! तुम सुनहरी त्वचा के सदृश तेजवान् हो । तुम्हारा तेज मुझमें प्रविष्ट हो । हे सुवर्ण ! तुम मुझे शत्रु से बचाओ । हे सुवर्ण मुकुट ! तुम विजय के लिए साहसी होओ । तुम साहस के कारण बल-रूप हो और अविनाशी हो ।।१५।।

हे शत्रु-निवारक दक्षिण युग्म और मित्र-सम-हितैषिणी वाम भुजा ! तुम दोनों वरुण-मित्र रूप हो । तुम दोनों इस पुरुष में संगत होओ । सुवर्णालंकारों से युक्त और सामर्थ्यवाली तुम दोनों रात्रि के अन्त तक जागृत रहो । प्रातः सूर्य तुम्हारी सम्भावनाओं के प्रकट करने को उदित होते हैं । फिर दिति और अदिति तुम्हारे पाप-पुण्य को देखते हैं ।।१६।।

हे क्षत्रपति यजमान ! मैं तुम्हें चन्द्र कान्ति से अभिषिक्त करता हूँ । तुम अभिषिक्त होकर राजाधिराज होकर, प्रवृद्ध होओ, शत्रु-नाश करो और प्रजा-पालन करो । हे सोम ! तुम यजमान की रक्षा करो । हे यज-मान ! मैं तुम्हें अग्नि के तेज से अभिषिक्त करता हूँ । तुम क्षत्रियाधिपति हो, समृद्ध होओ । शत्रुजय एवं प्रजापालन करो । हे यजमान ! तुम्हें

सूर्यतेजाभिषिक्त करता हूँ। तुम क्षत्रियाधिपति, शत्रुरहित और प्रजा-पालक होओ ॥१७॥

हे श्रेष्ठ हविवाले देवो ! इस अमुक के पुत्र अमुक नाम वाले को इन्द्र के समान ऐश्वर्य देकर अमुक स्थान और अमुक जाति की प्रजा का पालन करने के लिए अधिष्ठित करो तथा इसे शत्रुहीन करो। हे प्रजा-जनो ! ये तुम्हारे राजा हैं और ब्राह्मणों के राजा सोम हैं ॥१८॥

संसार को सींचने वाले, गतिशील, फलप्रेरक और आहुति के परिणामरूप जल, पर्वत पृष्ठ से सूर्यमण्डल को ओर गमन करते हैं। (यजमान भी इसी प्रकार उन्नति की ओर गमन करे) ॥१९॥

हे प्रजापति ! संसार के ये जो जीव-प्रकृति आदि सब वस्तुएँ हैं, उन्हें आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जान सकता। हम जिस कामना से यह यज्ञ कर रहे हैं, वह पूर्ण हो। यह आहुति स्वाहुत हो। २०॥

हे रथ ! तुम इन्द्र के वज्र के समान काष्ठ से निर्मित हो। हे अश्वो ! तुम्हें मित्रावरुण के बल से इस रथ में योजित करता हूँ। हे रथ ! देश के भय निवारणार्थ एवं सुभिक्षसम्पादनार्थ इन्द्र के समान मैं तुम पर चढ़ता हूँ। हे अश्व ! तू मरुद्गण की आज्ञा पाकर वेगवान् हो और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो ॥२१॥

हे इन्द्र ! तुम वज्रधारी और तेजस्वी हो। तुम जिस रथ पर चढ़ते हो, उससे हम विमुक्त न हों ॥२२॥

गृहपति अग्नि को यह आहुति स्वाहुत हो। सोम की प्रसन्नता के लिए, मरुद्गण के ओज के लिए, इन्द्र के पराक्रम के लिए दी गयी आहुतियाँ स्वाहुत हों। पृथिवी माता तुम मुझे हिंसित न करो, मैं भी तुम्हें असन्तुष्ट न करूँ ॥२३॥

आदित्य रूप आत्मा पवित्र स्थान में स्थित होकर अन्धकार को दूर करता है। वायु रूप से अन्तरिक्षस्थ होता है। अग्नि रूप से पृथिवी पर और प्राण रूप से जीवों में रहता है। इस प्रकार सर्वत्र रहता है। मत्स्यादि रूप से जल में, पशु आदि रूप से वीर्य में, अग्नि रूप से पाषाण में तथा अग्नि रूप से ही जल में रहता है। ऐसा परब्रह्म ही उपासनीय है ॥२४॥

हे परमेश्वर ! इतनी आयु मुझे दीजिए, जितनी आप सब को देते हैं। आप वर्चस् (तेज) हैं, मुझको तेज धारण कराइए। आप बल-पराक्रम हैं, मुझको बल धारण कराइए। हे पुरुषो ! इन्द्र (परमात्मा) के आश्रय से तुममें पराक्रम धारण कराता हूँ ॥२५॥

हे आसन्दी (राजपत्नी) ! आप सुखरूप हैं, सुन्दर व्यवहार वाली हैं और न्यायकर्त्री हैं । इसलिए आप सुखकारक सुशिक्षा में तत्पर हों तथा प्रजाजनों को भी सुखकरी शिक्षा दें ।।२६।।

हे आसन्दी (राजपत्नी) ! जैसे आपका सदाचारी, बुद्धिमान् सुक्रिया-युक्त उत्तम पति साम्राज्य को चलाने के लिए न्याय करता है, वैसे आप भी न्यायकारिणी हों ।।२७।।

हे सर्वजेता यजमान राजा ! पाँच दिशाएँ तुम्हारे अधीन हैं । हे ब्रह्मन् ! तुम ब्रह्मा ही हो । हे यजमान ! तुम अत्यन्त महिमावान् होने से सविता हो । अमोघवीर्य तुम प्रजाओं के दुःख दूर करने से वरुण हो । जनों के ऐश्वर्यरक्षक होने से इन्द्र हो । आश्रितों को सुख देने वाले तथा शत्रुओं को रुलाने वाले होने से तुम रुद्र हो और महिमावान् होने से ब्रह्मा हो ।।२८।।

अग्नि सर्वदेवों में प्रथम पूजनीय हैं । वे संसार के धारणकर्त्ता, हवि-सेवनकर्त्ता और गृहस्थ धर्म के साक्षी हैं । हमारी अग्नि को दी गयी आज्याहुति स्वाहुत हो ।।२९।।

सविता, वाणीरूप, सरस्वती रूप के अधिष्ठाता त्वष्टा, पशुओं के अधिष्ठाता पूषा, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, अग्नि, चन्द्रमा और यज्ञस्वामी विष्णु का आज्ञावर्ती मैं देवों के समीप जाता हूँ ।।३०।।

हे क्षत्रपति ! हे प्रजाजनो ! तुम अश्विद्वय के समान शुद्ध बुद्धिवाले होओ । परम ऐश्वर्य के लिए पुरुषार्थ करो । शुद्ध धर्म के आचरण से वायु के समान निर्दोषता प्राप्त करो । सद्गुणों से युक्त ऐश्वर्य से युक्त, ज्ञानागार परमेश्वर के भक्त होओ ।।३१।।

हे ज्ञानवान् राजा ! बहु ऐश्वर्यवान्, विद्वान्, सदाचारी आपको हम अपनी रक्षा के लिए स्वीकार करते हैं । सत्-असत् का विचार करके हमारी रक्षा कीजिए ।।३२।।

हे अश्विद्वय ! तुमने सोम को प्राप्त करके इन्द्र की सुरक्षा की ।।३३।।

हे इन्द्र ! जब तुम अशुद्ध सोम को पीकर विपत्तियों में पड़े तब अश्विद्वय ने तुम्हारी उसी प्रकार रक्षा की, जैसे माता-पिता पुत्र की रक्षा करते हैं ।।३४।।

एकादश अध्याय

ऋषि : प्रजापति, शुनःशेप, गृत्समद, सिन्धुद्वीप आदि ।

सविता मन को एकाग्र करके, अग्नि के तेज का विस्तार करके और अग्नि को पशु आदि सब में प्रविष्ट जानकर प्रारम्भ में उसे पृथिवी से निकालकर लाये ।।१।।

सर्वप्रेरक सविता की प्रेरणा से हम एकाग्र मन से स्वर्ग-प्राप्ति के कर्म में लगते हैं ।।२।।

सविता देव कर्म और ज्ञान से दिव्य स्वर्गलोक में गमन करने वाले तथा महान् ज्योति के संस्कर्त्ता हैं । वे देवों को अग्नि चयन और यज्ञकर्म में लगाते हैं तथा स्वयं अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ।।३।।

होता, अध्वर्यु, अपने मन और बुद्धि को अग्नि-चयन में लगाते हैं । सविता देव ऋत्विजों के उद्देश्य को जानते हैं । सविता ने ही विश्व-रचना की है, उनकी महिमा वेदों में उक्त है ।।४।।

हे यजमान दम्पति ! मैं तुम्हारे लिए वह अग्नि-चयन कर्म करता हूँ, जो कि अन्न एवं घृताहुति वाला है, ऋषि अनुष्ठित है और आत्म-ज्योतिवर्धक है । यजमान का यज्ञ दोनों लोकों में बढ़े । देवता यज्ञ को स्वीकारें ।।५।।

महिमामय सविता देव को अन्य देवता अपने अनुकूल कर लेते हैं । सविता देव ने सब लोकों की रचना की है और वे सब प्राणियों में व्याप्त हैं ।।६।।

हे सविता देव ! यजमान को यज्ञ-कर्म के सौभाग्य के प्रति प्रेरित कीजिए । सविता देव हमारे ज्ञान को ब्रह्म-ज्ञान से पवित्र करें तथा वाणी को मधुर बनाएँ ।।७।।

यज्ञ देवताओं को तृप्तिदायक है, ब्रह्म को वश में करने वाला और धनदाता है । हे सविता देव ! ऐसे यज्ञ के फल को सम्पन्न करो । यह आहुति स्वाहुत हो ।।८।।

हे अग्नि ! सविता देव की प्रेरणा से गायत्री छन्द प्रभाव से अंगिरा के समान मैं तुझे ग्रहण करता हूँ । तू पृथिवी के भीतर से अग्नि का आहरण कर ।।९।।

हे अभ्रि ! तुम काष्ठ विशेष से निर्मित हो और शत्रु-शून्य हो । जगती छन्द के प्रभाव से तुम पृथिवी के भीतर व्याप्त अग्नि को अंगिरा के समान बाहर लाने में समर्थ हो ।।१०।।

हे सविता देव ! अंगिरावत् सुवर्ण-अभ्रि को हाथ में लेकर अनुष्टुप छन्द के प्रभाव से पृथिवी के भीतर से अग्नि-ज्योति को बाहर लाइए ॥११॥

हे अश्व ! इस यज्ञ-स्थान पर शीघ्र आओ । आदित्य के समान तुम स्वर्गोत्पन्न हो, अन्तरिक्ष में तुम्हारी नाभि और पृथिवी पर तुम्हारा स्थान है ॥१२॥

हे यजमान दम्पति ! तुम दोनों धन-वृद्धि करने वाले हो । अग्नि-कर्म में अपने हितकारी अग्नि का वहन करने वाले अश्व को युक्त करो ॥१३॥

परस्पर मित्रभाव को प्राप्त, उत्साही एवं बलवान् ऋत्विज-यजमान इस देवयज्ञ-पितृयज्ञ में रक्षार्थ 'अज' (परमात्मा) के लिए आहुति देते हैं ॥१४॥

हे अश्व (अज) ! तुम शत्रुहन्ता, रुद्रगणों पर आधिपत्य प्राप्त हो, अतः हमारे सुख के लिए यहाँ यज्ञ में आओ और कल्याणकारी द्यावा-पृथिवी के वहन करने वाले होओ ॥१५॥

हे अभ्रि ! पृथिवी के स्थान से अंगिरा ऋषि के समान तू अग्नि को निकाल । हम उस अग्नि से अगिरा के समान यज्ञ-सम्पादन करें ॥१६॥

उषाकाल से पूर्व प्रकाशमान अग्नि सूर्य-रश्मि-संचालक हैं । वे ही द्यावापृथिवी में क्रमशः व्याप्त होते हैं ॥१७॥

हे अश्व ! तू पृथिवी को कुरेदता हुआ यह बता कि अग्नियुक्त मृत्तिकावाले इस प्रदेश में अग्नि कहाँ है, जिससे हम उसे खोदकर निकालें ॥१८॥

यह द्रुतगामी अश्व युद्धों को कम्पायमान करता है तथा यज्ञस्थल को प्राप्त स्थिर नेत्रों से अग्नि को देखता है ॥१९॥

हे अश्व ! स्वर्ग तुम्हारी पीठ है, पृथिवी तुम्हारे पाँव है, अन्तरिक्ष तुम्हारी आत्मा है और समुद्र तुम्हारा उत्पत्ति-स्थान है । तुम शत्रुओं को अपने पैरों से रौंद डालो ॥२०॥

हे अश्व! धनदाता तुम सौभाग्य वृद्ध्यार्थ यहाँ से उठो और पृथिवी को पैरों से खोदकर पृथ्वी के ऊपरी भाग में विद्यमान अग्नि का संकेत करो ॥२१॥

हम अश्व के द्वारा पृथिवी स्थित अग्नि को खोजने का प्रयत्न करते हैं ॥२२॥

सर्वलोकवासी अग्नि को मैं प्रदीप्त करता हूँ ॥२३॥

सर्वत्र व्याप्त अग्नि को मैं आज्याहुति से प्रदीप्त करता हूँ । तुम

आहिताग्नि का सेवन करो । अग्नि सेवनीय है, अग्राह्य नहीं ।।२४।।

हे मन्थनोत्पन्न अग्नि ! तुम 'पुरुष' रूप से शरीरों में रहकर उनका पालन करते हो; ब्रह्म रूप से राक्षसों एवं पापों के नाशक हो। हम तुम्हारा ध्यान करते हैं ।।२५।।

हे अग्नि ! तुम जनपालक, पवित्र, तेज से अन्धकार एवं आर्द्रता के निवारक एवं नित्य जलों में विद्युत्-रूप से रहते हो । तुम पाषाण-घर्षण एवं अरणि-मन्थन से उत्पन्न होते हो तथा यज्ञकर्त्ता यजमान के रूप हो ।।२६।।

हे अग्नि ! सविता की प्रेरणा से, अश्विद्वय की भुजाओं एवं पूषा के हाथों से भूमि के अन्तर्प्रदेश से मैं पशु-सम्बन्धी अग्नि को खनन-द्वारा प्राप्त करता हूँ ।।२७।।

हे अग्नि ! तुम ज्वालामुख हो । प्रजा के हितार्थ शान्त रहते हो। मैं अंगिरा के समान तुम्हें पृथिवी के नीचे से खनन करता हूँ ।।२८।।

हे विद्वान् ! आप सर्वत्र व्याप्त विद्युदग्नि के ज्ञाता तथा विद्या एवं क्रिया-कुशलता के बढ़ाने वाले हैं। अतः जलों के आधारभूत समुद्र एवं उसमें विद्यमान सभी पदार्थों को जानकर उनके तथा विद्युत् के उपयोग से बढ़ने वाले सुखों को अपने ज्ञान से बढ़ाइए ।।२६।।

हे दम्पती ! तुम दोनों ने गृहस्थाश्रम एवं उसकी सामग्री को प्राप्त किया है । अतः उसकी सब प्रकार से रक्षा करते हुए एवं उसके सुख बढ़ाने वाले पदार्थों को बढ़ाते हुए तथा अग्नि-आराधन (यज्ञ) करते हुए निर्दोष तुम दोनों सुखपूर्वक रहो ।।३०।।

हे दम्पती ! तुम भली प्रकार सुख को प्राप्त करते हुए रहो। प्रकाशयुक्त एवं सब पदार्थों में विद्यमान विद्युत्-अग्नि को उत्पन्न करके और उसके विभिन्न उपयोग करके लक्ष्मी प्राप्त करो और उसका भोग करो ।।३१।।

हे अग्नि ! तुम पशुओं के हितैषी और सब प्राणियों के पालक हो। सर्वप्रथम अथर्वा ने जल के मन्थन से तुम्हें उत्पन्न किया और फिर ऋत्विजों ने सादर तुम्हें अरणि-मन्थन से उत्पन्न किया ।।३२।।

हे अग्नि ! तुम श्रेष्ठ मार्ग में अवस्थित मन को पुष्ट करने वाले हो । तुम पापी के धनों के जेता हो । मैं तुम्हें प्रदीप्त करता हूँ ।।३३।।

हे अग्नि ! तुम सचेष्ट हो, यज्ञ कार्यारम्भ करो । देवों को प्रसन्नता देने वाले हे अग्नि ! तुम हवि द्वारा देवों को तृप्त करते हो । यजमान को दीर्घायु एवं विपुल अन्नवान् बनाओ ।।३४-३५।।

तेजस्वी और सहस्रों के पालक पार्थिव-अग्नि प्रदीप्त हो प्रतिष्ठित होते हैं ।।३६।।

हे अग्नि ! तुम देवों के प्रीतिपात्र और महान् हो । तुम प्रदीप्त होते हुए आज्याहुति से दर्शनीय रूप वाले होते हो । तुम धूम का त्याग करो ।।३७।।

हे अध्वर्यु ! प्राणियों के अरोग के निमित्त दिव्य एवं तेज सम्पन्न जलों से इस प्रदेश को सींचो और यहाँ से श्रेष्ठ ओषधियों को खनन-द्वारा प्राप्त करो ।।३८।।

हे पृथिवी ! तुम्हारा हृदय उदार है । वायु देवता तुम्हें जल-प्रक्षेप एवं तृणादि से पूर्ण करें । हे वायु देव ! तुम सर्वत्र विचरते ही हो, तुम्हें हम प्रजापति रूप से वषट्कार से युक्त करते हैं ।।३६।।

हे अग्नि ! तुम भली प्रकार दीप्त होकर ज्योतिर्मय-वैभव वाले हो । तुम इस कृष्णाजिन को व्यवहार में लो ।।४०।।

हे अग्नि ! तुम यज्ञ-कर्म-निर्वाहक हो । उठो और दिव्य-गुण-कर्म-वाली वृद्धि से पुष्ट करो । तुम श्रेष्ठरश्मियों से युक्त, तेजस्वी एवं दर्शनीय हो ।।४१।।

हे अग्नि ! सविता देव हमारी रक्षा करें । हमें सविता देव एवं तुम अन्न प्रदान करो । तुम्हारे निमित्त ऋत्विज मन्त्रोच्चारण कर रहे हैं ।।४२।।

हे अग्नि ! तुम श्रेष्ठ, पूजनीय, ओषधिपोषक एवं द्यावापृथिवी के मध्य उत्पन्न होने वाले उनके गर्भ के समान हो । तुम अधिकार को हटाते हुए ओषधियों-वनस्पतियों के समीप से गमन करो ।।४३।।

हे पुत्र ! तू विद्याग्रहणार्थ दृढ़ हो । नीतियुक्त होकर बलवान् अवयवों से युक्त हो और शीघ्र कर्म करने वाला हो । तू अग्नि सम्बन्धी सुन्दर व्यवहारों में स्थित और शुभ कर्मों का करने वाला एवं सुख का विस्तार करने वाला हो ।।४४।।

हे प्रिय संतान ! तू मनुष्यों आदि प्रजाओं के लिए कल्याणकारी हो । द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष और वनस्पतियों के विषय में शोक रहित होकर पदार्थों की रक्षा का विधान एवं उनके उपकार के लिए प्रयोग कर ।।४५।।

वेगवान् अश्व शब्द करता हुआ, दिशाओं को कम्पित करता हुआ चले और कर्म से पूर्ण रहता हुआ, नष्ट न हो । यह जलों में विद्युत् रूप और समुद्र में वरुण रूप अग्नि को धारण करता हुआ चले । हे अग्नि !

हवि-भक्षणार्थ आओ ।।४६।।

आदित्य रूप और ऋत-सत्य रूप अग्नि का अंगिरा के समान हम चयन करते हैं। ओषधियो! इस स्थान में आते हुए अग्नि को प्रसन्न करो। हे अग्नि! तुम यहाँ विराजमान होकर हमारे सब अकल्याणों एवं रोगादि को दूर करते हुए हमारी मति को यज्ञोन्मुख करो ।।४७।।

हे ओषधियो! तुम इस अग्नि को ग्रहण करो। यह अग्नि ऋतुकाल प्राप्त एवं प्राचीन स्थान में स्थित है ।।४८।।

हे अग्नि! तुम महान् बल वाले हो। ऋतु के कुप्रभावों, शत्रुओं और व्याधियों तथा राक्षसों को दूर करो ।।४९।।

हे जलो! तुम कल्याणप्रद एवं सुखदायक हो। तुम हमारे लिए श्रेष्ठदर्शन एवं ब्रह्मानन्द की अनुभूति के निमित्त स्थापित होओ ।।५०।।

हे जलो! तुम्हारा यह जो कल्याणप्रद रस है, उसको तुम हमें उसी प्रकार दो, जैसे माता शिशु को दूध पिलाती है ।।५१।।

हे जलो! तुम्हारे विश्वपालक रस की प्राप्ति के लिए हम तुम्हारे समीप आये हैं। तुम हमें वह रस दो और हमें प्रजोत्पादक बनाओ ।।५२।।

द्यावापृथिवी की ज्योति रूप 'अंग' (आत्मा) को मित्र देवता मुझे देते हैं। मैं उस प्राणरूप अग्नि को पिण्ड (शरीर) में स्थापित करता हूँ ।।५३।।

जिन रुद्रों ने पार्थिव पिण्ड को पाषाण रूप देकर उससे अग्नि उत्पन्न की, उन रुद्रों का तेज देवों के मध्य प्रकाशित है ।।५४।।

अमावस्या की देवता सिनीवाली, वसुगण एवं रुद्रगण सुसिद्ध मृत्तिका को हाथों में ले मृदु करके उसे कर्मयोग्य बनायें ।। ५५।।

हे पूजनीय देवमाता अदिति! हे सुन्दर केश, मस्तक और देह-वाली सिनीवाली! अपने हाथों में पाकपात्र 'उखा' को स्थापित करो ।।५६।।

अदिति सुमति से पाकपात्र को अपने हाथों में पकड़े और वह पाकपात्र अपने में अग्नि को उसी प्रकार धारण करे, जैसे माता अपनी गोद में शिशु को धारण करती है ।।५७।।

हे उखा! गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण तुम्हें पृथिवी के समान दृढ़ करें; त्रिष्टुप-छन्द के प्रभाव से रुद्रगण तुम्हें अन्तरिक्ष के समान दृढ़

करें; जगती छन्द के प्रभाव से आदित्यगण तुम्हें स्वर्ग के समान दृढ़ करें; तथा अनुष्टुप के द्वारा विश्वेदेवा तुम्हें दिशाओं के समान दृढ़ करें; तुम मुझ यजमान के लिए सन्तान-पशु-धन-पुष्टि-वीर्य प्रदान करके बान्धवों का सौहार्द दृढ़ करो ।।५८।।

हे उखा ! तुम्हारे मध्यभाग को अदिति ग्रहण करें। अदिति ने उरवा को बनाया और यह कहते हुए पाककार्य के निमित्त देवताओं को दिया कि पुत्रो ! तुम इससे पकाओ ।।५६।।

हे उखा ! गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण; जगती छन्द के प्रभाव से आदित्यगण; अनुष्टुप छन्द के प्रभाव से वैश्वानर विश्वेदेवा; अंगिरा के समान तुम्हें धूपित करते हैं। तुम्हें इन्द्र और विष्णु भी धूपित करें ।।६०।।

हे गर्त ! पृथिवी के ऊपरी भाग में अदिति तुम्हें खनन करें; देवियाँ और देवता तुम्हें पृथिवी पर स्थापित करें; वाणी तुम्हें पृथिवी के ऊपर दीप्तियुक्त करें; देवों-सहित अहोरात्र के देवता तुम्हें पृथिवी के ऊपर पकाएँ और नक्षत्रों के देवता सब देवों के साथ पृथिवी के ऊपर तुम्हें पकाएँ ।।६१।।

मनुष्यों के पुष्टिदाता, मित्र देवता से रक्षित और श्रवणीय यज्ञ की हम याचना करते हैं ।।६२।।

हे उखा ! सूर्य और सविता अपनी वुद्धि-शक्ति से तुम्हें प्रकाशित करें ।।६३।।

हे उखा ! पाक गर्त से बाहर आकर महिमामयी बनो और अपने काम में लगो। हे मित्र देवता ! प्राणिहितकारिणी उरवा को मैं तुम्हें रक्षार्थ देता हूँ ।।६४।।

हे उखा ! गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण तुम्हें अजा-दुग्ध से सींचें तथा त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से रुद्रगण; जगती छन्द के प्रभाव से आदित्यगण और अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से विश्वेदेवा तुम्हें अंगिरा के समान अजा-दुग्ध से सींचें ।।६५।।

यज्ञ-प्रेरक अग्नि के लिए दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो। प्रजापति एवं वैश्वानर के लिए दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो ।।६६।।

सभी मनुष्य फल प्राप्त कराने वाले परमात्मा की मित्रता की कामना करें। ज्ञान-तुष्टि के लिए अन्न की कामना करें। जिस परमात्मा से धन की याचना की जाती है, उसके लिए दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो ।।६७।।

हे उखा ! तुम विनष्ट मत होना । प्रसन्नतापूर्वक अग्नि और तुम हमारे इस कर्म को पूरा करो ॥६८॥

हे उखा ! यजमान के मंगल के लिए दृढ़ होओ । हमारा हविरन्न देवों को प्रसन्न करने वाला हो । जब तक यज्ञपूर्ण हो, तुम यहीं रहना ॥६९॥

अग्नि का मुख्य भक्ष्य पलाश-काष्ठ और मुख्य पेय घृत है । ऐसे अग्नि इन समिधाओं का भक्षण करें ॥७०॥

हे अग्नि ! शत्रुओं के द्वारा किये संग्राम में हमारे वीरों की रक्षा के लिए सम्मुख आओ । इस स्थान की सुरक्षा करो ॥७१॥

हे अग्नि देव ! तुम सर्वप्रिय हो और दूरवर्ती स्थान के वासी हो । हमारे यज्ञ में तुम आओ और रणक्षेत्र में शत्रुओं को नष्ट करने वाले होओ ॥७२॥

हे अग्नि ! तुम्हें जो समिधा भेंट की जाय, उसे तुम घृत के समान प्रिय मानकर भक्षण करो ॥७३॥

हे अग्नि ! दीमक लगा काष्ठ तुम्हें घृत के समान प्रिय हो ॥७४॥

हे अग्नि ! हम अत्यन्त सावधानी के साथ तुम्हें समिधा भेंट करते हैं । जैसे अश्वशाला में अश्व को तृणादि देते हैं, वैसे तुम हमें धन और अन्न दो ॥७५॥

पृथिवी की नाभि के समान उरवा के मध्य प्रदीप्त, साम-उक्थ और अन्न से सन्तुष्ट, अग्नि का हम यजमान की धनपुष्टि के लिए आह्वान करते हैं ॥७६॥

जो शत्रु-सेना हमें ललकार रही है, जो शस्त्रधारी चोर-डाकू हैं, उन सबको हे अग्नि ! मैं तुम्हारे मुख में डालता हूँ ॥७७॥

ऐश्वर्य सम्पन्न हे अग्नि ! प्रत्यक्ष चोरी करने वाले अथवा अप्रत्यक्ष धन का अपहरण करने वाले तस्करों को तुम चबा डालो । डकैतों और अन्य चोरों को पीड़ित करो तथा दुष्कर्मियों का भक्षण करो ॥७८॥

मलिम्लुच, स्तेन, तस्कर और लोभवश मनुष्यों के हिंसक पापियों को, हे अग्नि ! मैं तुम्हारी दाढ़ों में डालता हूँ ॥७९॥

हमारे शत्रुओं, हमें देय धन न देने वालों, हमारे निन्दकों और हमारे हिंसक पापियों को, हे अग्नि ! तुम भस्म करो ॥८०॥

हे अग्नि ! तुम्हारी कृपा से मेरा ब्राह्मणत्व तीक्ष्ण हुआ है, मेरी इन्द्रियाँ कार्यों के करने के लिए सामर्थ्यवान् हुई हैं और मेरे यजमान का क्षात्रधर्म विजयशील हुआ है ॥८१॥

अग्नि की कृपा से ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने अपनी भुजाओं को ऊँचा किया है, ब्रह्मतेज दीप्त हुआ है, बल सन्दीप्त हुआ है। मैं अभिमन्त्रित जल से शत्रुओं को नष्ट करता हूँ और अपने पुत्र-पौत्रादि को श्रेष्ठ बनाता हूँ ॥८२॥

हे अन्न के पालनकर्त्ता अग्निदेव! हमारे लिए बलदायक अन्न दीजिए। हमारे मनुष्यों और पशुओं को अन्न दीजिए। हमारी सब प्रकार की वृद्धि कीजिए ॥८३॥

द्वादश अध्याय

ऋषि : वत्सप्री, कुत्स, श्यावाश्य, शुनःशेप, विरूपाक्ष आदि।

जैसे दिव्य-सूर्य प्रकाशवान् हैं, उसी प्रकार पुरोडाश से प्रदीप्त अग्नि प्रकाशवान् है। कुमार, हरित, भिषक्, वरुण आदि देवों ने अग्नि को प्रकट किया ॥१॥

जैसे माता और धाय बालक को दूध पिलाती हैं, वैसे ही दिन और रात्रि सबकी रक्षा करती हैं। जो विद्युत् रूप में सर्वत्र व्याप्त है, वह अग्नि सूर्य आदि का कारण है ॥२॥

जो ग्रहण करने योग्य है; जिसकी दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है; जो सर्वत्र है; वह परमेश्वर सवितारूप में प्रातःकाल प्रकाशित होता है और द्विपद, चतुष्पद सब जीवों तथा सब पदार्थों को प्रकाशित करता है ॥३॥

जैसे शाखा-पत्र-पुष्प-फलादि से वृक्ष शोभित होते हैं, वैसे वेदादि-शास्त्रों के पढ़ने वाले विद्वान ज्ञान से प्रकाशित होते हैं। जैसे पशु; पूँछ आदि अवयवों से अपने काम करते हैं, जैसे पक्षी पंखों से आकाश-मार्ग से जाते-आते हैं और आनन्दित होते हैं, वैसे ही मनुष्य विद्या और सुशिक्षा से पुरुषार्थ के साथ सुखों को प्राप्त हों ॥४॥

हे मनुष्यो! तुम विष्णु (व्यापक ईश्वर) की कृपा से शत्रुओं का नाश करो। पृथिकादि पदार्थों के प्रति अनुकूल व्यवहार करो। ज्ञान को ग्रहण करो और सुखों से संयुक्त होओ। विज्ञान को प्राप्त होओ ॥५॥

हे अग्नि! तुम शब्द करते हुए पृथिवी का आस्वादन करो। प्रदीप्त होकर अपनी ज्वालाओं से वृक्षों को अंकुरित करते हुए ओषधियों में व्याप्त हो। हम तुम्हारी पर्जन्य के समान स्तुति करते हैं ॥६॥

हे अग्नि! तुम हमारे समक्ष प्रदीप्त होते हो। तुम आयु, तेज,

सन्तान, श्रेष्ठ बुद्धि, धन और सुस्वास्थ्य आदि हमें प्रदान करो ॥७॥

हे अग्नि ! तुम सैकड़ों पराक्रमों से मुक्त हो। अपनी शक्तियों से हमारी धन-पुष्टि करो ॥८॥

हे अग्नि ! तुम दुग्धादि रसों के साथ पुनः आओ और आयु तथा अन्नादि हमें देते हुए पापों से हमारी रक्षा करो ॥९॥

हे अग्नि ! तुम हमें देने योग्य धन लेकर आओ। वृष्टि की जल धारा से तृण, लता, धान्य, ओषधियों और वनस्पतियों आदि को सिंचित करो ॥१०॥

हे अग्नि ! मैंने तुम्हारा आहरण किया है। तुम अविचल स्थित होओ। हमारी प्रजाएँ तुम्हारी कामना करें। राष्ट्र तुमसे कदापि शून्य न हो ॥११॥

हमारे अंगों को पाश-मुक्त करो। हे वरुण ! तुम बन्धनों के मोचक हो। हे वरुण ! हम अदीन होकर ऐश्वर्यवान् हों ॥१२॥

अग्नि रात्रिरूपी अन्धकार से निकलकर उषाकाल से पूर्व उन्नत हो। दिन में प्रकट हुए प्रकाश-रश्मियों से आवृत हो। सुन्दर देह वाले हुए और उत्पन्न होते ही इन्होंने सब लोकों में अपना तेज व्याप्त किया ॥१३॥

कर्मों के प्रवर्तक वेदी में स्थित अग्नि वायु-द्वारा अन्तरिक्षस्थ होते हैं। वे होता रूप में पूजनीय अग्नि प्राणरूप में मनुष्यों के शरीरों में स्थित हैं। हे अग्नि ! तुम महिमामय हो ॥१४॥

सर्वज्ञाता हे अग्नि ! तुम उखा माता की गोद में स्थित हो, इसे सन्तप्त न करना और प्रकाशित रहना ॥१५॥

उखा रूप स्वगृह में दीप्त सर्वज्ञाता हे अग्नि ! तुम स्वज्योति से तेजस्वी होते हुए मंगलकारी होओ ॥१६॥

हे अग्नि ! तुम मेरे लिए मंगलमय एवं कल्याणकारी होते हुए उखारूप श्रेष्ठ-स्थान में प्रतिष्ठित होओ ॥१७॥

जातवेद अग्नि सूर्यरूप से अन्तरिक्ष में उदित हुए। ब्राह्मण रूप में पृथिवी पर आविर्भूत हुए। जल में 'बड़वा' रूप से प्रकट हुए। इस प्रकार ये बहुजन्मा हैं। बुद्धिमान् यजमान इस अग्नि को प्रकट करने वाला है ॥१८॥

हे अग्नि ! तुम्हारे तीन रूप—सूर्य, अग्नि और बड़वा—हैं। गार्हपत्य, आह्वनीय, अन्वाहार्य, पचन, शुष्य और विद्युत आदि भी तुम्हारे ही रूप हैं ॥१९॥

हे अग्नि ! तुम्हें प्रजापति ने हितकारी 'बड़वा' रूप में जलों में, विद्युत् रूप में, सूर्यमण्डल में सूर्यरूप में और मनुष्यों में प्राणरूप में प्रवृद्ध किया है ॥२०॥

मेघ-सम गर्जनशील अग्नि पृथिवी पर वनस्पति और ओषधिरूप में अंकुरित होते हैं। वे द्यावापृथिवी में व्याप्त होते हुए स्वमहिमा से तेजस्वी होते हैं ॥२१॥

ये अग्नि ऐश्वर्यदाता, धनधारक, अभीष्टवर्धक, यज्ञरक्षक, सबके निधान, मन्थन-पुत्र, जलस्थ हो वरुण रूप में, मेघस्थ हो विद्युत् रूप हैं तथा सूर्य के पूर्व उदित प्रकाशवती उषारूप हैं ॥२२॥

ये अग्नि संसार के केतुरूप, हृदय में प्राण वायु-रूप—आत्मारूप हैं। ये द्यावापृथिवी को तेज-परिपूर्ण करते हैं। ये चन्द्ररूप में गतिशील हैं तथा मेघविदारक भी हैं। हम उन्हीं के लिए पंचजन-यज्ञ करते हैं॥२३॥

प्राणियों द्वारा काम्य, सर्व-शोधक, मेधावी, अमृतरूप अग्नि देवों के द्वारा मनुष्यों में स्थापित किये गये हैं। ये अपने निरुपद्रव-धूम को आकाश में व्याप्त करके वर्षा के कारण बनते हैं। ये विश्वधारक हैं और अपनी महिमा से स्वर्ग में भी व्याप्त हैं ॥२४॥

अतिरस्कूरणीय अग्नि अपने प्रकाश से प्राणियों को श्री-सम्पन्न करते हैं। ये पुरोडाशादि से प्रदीप्त होते हैं। देवों ने महान्कर्मा अग्नि को प्रकट किया है ॥२५॥

मंगलमयी दीप्ति तथा दिव्य गुणों से सम्पन्न, हे अग्नि ! जो यजमान तुम्हें घृत सिंचित् करता है अथवा घृताक्त पुरोडाश देता है, उसे उत्कृष्ट स्थान एवं दिव्य-सुख दो ॥२६॥

हे अग्नि ! यजमान के यशवृद्धि-कारक यज्ञानुष्ठान में अनुकूल होओ। यजमान को अपना प्रीतिपात्र बनाओ। इसे पुत्र-पौत्रादि सन्तानवान् एवं सुख-समृद्धिवान् करो ॥२७॥

हे अग्नि ! यज्ञानुष्ठान में लगे तुम्हारे सेवक यजमान सर्वसुख प्राप्त करते हुए देवयान-मार्ग से स्वर्ग को जाते हैं ॥२८॥

जठराग्नि रूप में जनहित-कारक तथा सोमरक्षक अग्नि की ऋषि स्तुति करते हैं। और द्वेषरहित द्यावा-पृथिवी की अधिष्ठात्री देवता अग्नि को आहुति करते हैं। देवो ! हमें वीरसन्तान एवं ऐश्वर्य प्रदान करो ॥२९॥

ऋत्विजो ! समिधादान से अतिथि रूप अग्नि की सेवा करो और इन्हें प्रदीप्त करने के लिए आज्याहुति दो ॥३०॥

हे अग्नि ! देवता तुम्हें स्वबुद्धियों से उन्नत करें और ऊँचे उठते हुए तुम सुमुख एवं सुदीप्तिवान् होकर हमारा कल्याण करो ।।३१।।

हे अग्नि ! तुम कल्याणकारिणी ज्वालाओं से प्रकाशित होओ। स्वरश्मियों से दीप्तिमान होकर हमारी सन्तानों को सुख दो और हमारे संकटों को दूर करो ।।३२।।

हे अग्नि ! तुम मेघसम गर्जना करते हुए पृथिवी का आस्वादन करो और अन्न-वृक्षादि को अंकुरित करते हुए प्रदीप्त होओ। जैसे मेघ विद्युत् के द्वारा द्यावापृथिवी के मध्य प्रकाशित होता है, वैसे महिमामय अग्नि भी प्रकाशित होते हैं ।।३३।।

अग्नि हविधारक यजमान के आह्वान को सुनकर प्रदीप्त होते हैं। जो अग्नि युद्ध में राक्षसों के संहारक हैं, वे हमारा कल्याण करें ।।३४।।

हे दिव्य-जलो ! तुम (वेदीस्थ) भस्म को ग्रहण करो। यह मंगलमयी भस्म, पुष्प-धूप अग्नि के योग से सुरभित हुई है। हे जलो ! तुम्हारे देवता वरुण हैं। तुम वृक्षादि के तथा अग्नि के उत्पन्न-कर्त्ता हो। जैसे माता पुत्र को गोद में धारण करती है, वैसे तुम भी इस भस्म को अंक में धारण करो। हम अनुष्ठाता तुम्हें प्रणाम करते हैं ।।३५।।

हे भस्म रूप अग्नि ! तुम्हारा स्थान जल में ही है। वही भस्म जल के द्वारा गवादि के रूप में परिणत होकर अरणी के मध्य से पुनः प्रकट होती है ।।३६।।

हे अग्नि ! तुम ओषधियों, वनस्पतियों, सभी प्राणियों और जलों के गर्भरूप हो और सबके उत्पन्न करने वाले हो ।।३७।।

हे अग्नि ! तुम भस्म के द्वारा जलों और पृथिवी को प्राप्त होकर पुनः तेजयुक्त हो उरवा स्थित होओ ।।३८।।

हे अग्नि ! तुम महान् कल्याण रूप हो। तुम जलों और पृथिवी को प्राप्त करके माता रूप उखा में शयन करते हो ।।३९।।

हे अग्नि ! तुम दुग्ध-अन्न और जीवन को लेकर यहाँ आओ और हमारी पापों से रक्षा करो ।।४०।।

हे अग्नि ! तुम धनदाता रूप में आओ और सर्वोपयोगी वर्षा की जलधारा से तृणों, लताओं, तथा वनस्पतियों को सींचो ।।४१।।

हे युवा श्रेष्ठ धन सम्पन्न अग्नि ! मेरे बार-बार के निवेदन को सुनो, मेरे अभिप्राय को जानो। कुछ मनुष्य तुम्हारे स्तोता हैं और कुछ निंदक। मैं तो तुम्हारा स्तोता ही हूँ, तुम्हारी वन्दना करता हूँ ।।४२।।

हे धन स्वामी, धनदाता अग्नि ! सर्वज्ञ ! तुम हमारे अभिप्राय को

जानो और हमसे प्रसन्न हो हमारे दुर्भाग्य को दूर करो। तुम जगत्स्रष्टा हो। हमारी तुम्हारे लिए दी गयी आहुति स्वाहृत हो ॥४३॥

हे अग्नि! तुम धन के निमित्त हो। तुम्हें आदित्य, रुद्र और वसुगण प्रदीप्त करें। ऋत्विज तुम्हें प्रदीप्त करें। तुम घृत से प्रवृद्ध हो और तुम्हारी वृद्धि से ही तो यजमान के मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥४४॥

हे यमदूतो! तुम इस स्थान से दूर जाओ। तुम अनेक स्थानों से दूर चले जाओ। इस यजमान को यम ने पृथिवी का अवकाश दिया है और यम ने भी इसे यह पृथिवी लोक दिया है ॥४५॥

हे उषा! तुम ज्ञान सम्पादन की सामर्थ्य यजमान को दो। हे सिकता! तुम भस्मरूप हो। हे सर्करा! तुम पृथिवी पर सर्वत्र हो, इस गार्हपत्य स्थान पर आओ ॥४६॥

यह अग्नि है। अग्नि-चयन के इच्छुक इन्द्र के अभिषव किये हुए अन्न को इन्होंने उदर में धारण किया है। हे अग्नि! तुम हव्य भक्षण करते हुए ऋत्विजों की स्तुतियाँ प्राप्त करते हो ॥४७॥

हे अग्नि! तुम्हारी ज्योति स्वर्ग में है। पृथिवी पर ओषधियों में, जलो में है और अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में है। वह ज्योति संसार को प्रकाशित करने वाली और मनुष्यों के कर्मों को देखने वाली है ॥४८॥

हे अग्नि! तुम जलों में विद्यमान हो। प्राणों में विद्यमान हो और सूर्यमण्डल के जलों तथा सूर्य मण्डल के परे और नीचे जो जल हैं, उनमें भी विद्यमान हो ॥४९॥

अग्नि पशुओं के हितैषी,समान मनवालों में प्रीति युक्त और अहिंसाशील हैं। वे इस यज्ञ को सेवित करें और हमें अन्नदान दें ॥५०॥

हे अग्नि! हमें गौ और अन्न प्रदान कीजिए। हम प्रजावान् पुत्र पायें। हमें हितकारिणी बुद्धि प्राप्त हो ॥५१॥

हे अग्नि! गार्हपत्याग्नि तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है। प्रदीप्त तुम दक्षिण कुण्ड में आरोहण करो। इस यज्ञ के फल रूप में हमारी धन वृद्धि करो ॥५२॥

हे इष्टका! तुम चित् हो, परिचित् हो। तुम अंगिरा देवता के समान दृढ़ता से स्थित होओ ॥५३॥

हे इष्टके! तुम पूर्व इष्टकाओं से अनाक्रान्त होती हुई रिक्त स्थान को भरो और दढ़तापूर्वक स्थित होओ। इन्द्र, अग्नि, वृहस्पति तुम्हें इस स्थान पर स्थापित करते हैं ॥५४॥

दिव्य एवं धान्यादि के सम्पादक जल द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष में

यज्ञात्मक सोम को परिपक्व करते हैं ॥५५॥

हे अग्नियो ! तुम स्तुति रूप हो, समुद्र के समान व्यापक हो और महारथी, अन्न स्वामी तथा सत्य के अधीश्वर इन्द्र को प्रवृद्ध करती हो ॥५६॥

हे अग्नियो ! तुम ज्योतिर्मान हो, समान मन वाले और श्रेष्ठ हो। तुम अन्न-घृतादि का उपभोग करते हुए यज्ञ-कर्म का सुसम्पादन करो ॥५७॥

हे अग्नियो ! तुम्हारे मनो को और कर्म को सुसंगत करता हूँ। हे पुरीष्याग्नि ! तुम हमारे स्वामी हो। यजमान को अन्न और बल दो ॥५८-५९॥

हे विवाहित दम्पती ! तुम दोनों हमारे लिए एक विचार वाले, एक बोध वाले और अपराध रहित होओ। धर्म को हिंसित न करो। यज्ञ-पति के प्रति अपराध न करो। हमारे लिए मंगलकारी होओ ॥६०॥

मृत्तिका रूप पृथिवी से बनी हुई उखा ने हितकारक अग्नि को अपने में उसी प्रकार धारण किया, जैसे माता गर्भ को अपने में धारण करती है। विश्वेदेवा, प्रजापति और ऋतुएँ उसे पाशमुक्त करें ॥६१॥

हे निऋति! यज्ञ न करने वाले और देवों को हव्य न देने वाले पुरुषों के पास ही तू जा। हमारे पास मत आ। हम तुझे नमन करते हैं ॥६२॥

हे निऋति ! तुमको हमारा नमन है। तुम जन्म मरण रूपी हमारे लौह-पाश के समान दृढ़ बन्धन को तोड़ो और इस यजमान को स्वर्ग प्रदान करो ॥६३॥

हे क्रूर निऋति ! मैं यजमान के पाप-पाश को नष्ट करने के लिए तुम्हारे लिए हव्य देता हूँ। किन्तु मैं तुम्हें पाप देवी ही मानता हूँ ॥६४॥

हे यजमान ! मैं अग्नि के द्वारा तुम्हारे निऋति-पाश को काटता हूँ। तुम इस श्रेष्ठ हव्यान्न को भक्षण करो। देवी निऋति हमारा नमन ॥६५॥

अग्नि यजमान के यहाँ स्थित होते, और यज्ञ-सम्पादन करते हैं। अग्नि ही सब रूपों को प्रकाशित करते हैं। अग्नि ही इन्द्र के समान संग्राम में स्थित होते हैं ॥६६॥

मेधावी एवं क्रान्तदर्शी अग्नि ही हलों से बैलों को जोड़ते हैं और बैलों के जोड़ों को वहन करने की शक्ति देते हैं ॥६७॥

हे कृषको ! हलों को ठीक करो। बैलों के कन्धों पर जुआ रखो। संस्कारित भूमि में बीज बोओ। सभी अन्न सफल होकर पुष्ट हों। पकने

पर अन्नों को दरांती से काटो और काटकर हमारे निकटस्थ घर में उन्हें रख दो ।।६८।।

हे हल ! तुम श्रेष्ठ फाल से युक्त हो । इस भूमि को जोतो । हल-बैलों के साथ कृषक सुख पूर्वक विचरण करें ।।६९।।

हे फाल ! तुम मधुर-घृत-सिंचित होओ और अन्न तथा दुग्ध-दधि-घृतादि से दिशाओं को भर दो ।।७०।।

यह फाल युक्त हल पृथिवी को खोदने वाला, सोम-निष्पादक एवं यजमान को सुखकारी है । वह गौ आदि पशुओं को प्राप्त कराता है ।।७१।।

हे हल ! तुम अभीष्टदाता हो । मित्र, वरुण, इन्द्र, पूषा और अश्वि-द्वय प्रजाओं के लिए काम्य भोगों का सम्पादन करें ।।७२।।

हे मनुष्यो ! तुम जैसे दिव्य-भोगों की प्राप्ति के लिए रक्षा योग्य गौओं को प्राप्त होते और सुसंस्कृत अन्नों का उपभोग करके रोग मुक्त रहते हो, वैसे हम भी हों ।।७३।।

जलों का देने वाला संवत्सर मास-दिवसादि अपने अवयवों से प्रीति करता है । उषा गौओं से प्रीति करती है । अश्विद्वय चिकित्सादि कर्मों से प्रीति करते हैं । इन सबके लिए यह आहुति स्वाहुत हो ।।७४।।

जो पृथिवी से उत्पन्न सोमलतादि ओषधियां हैं, जो पूर्ण-सुख-दान में समर्थ हैं; जो सेवन करने वाले रोगियों की एक सौ सात नाड़ियों के मर्मों में व्याप्त हो उन्हें निरोग करती हैं, उनको मैं जानूं ।।७५।।

हे बुद्धि एवं क्रियाओं से युक्त चिकित्सको ! तुम शत-सहस्रांकुर ओषधियों से मेरे इस शरीर को निरोग करो । हे माता ! तू भी ऐसा ही कर ।।७६।।

हे मनुष्यो ! तुम लोग अश्व के समान शक्तिशाली, रोगजेता, दुःखों से पार लगाने वाली, सोमलतादि ओषधियों को प्राप्त करके सुख प्राप्त करो ।।७७।।

हे ओषधियो ! तुम माता के समान पालन करने वाली और जगत्-निर्मात्री हो । हे यज्ञपुरुष ! हम तुम्हारी कृपा से अश्व, गौ, वस्त्र और नीरोग शरीर को भोगें । हमारी प्रार्थना को ओषधियाँ भी सुन लें ।।७८।।

हे मनुष्यो ! ओषधियों के द्वारा ही तुम इस भंगुर शरीर में निवास करते हो । कमल-पत्र पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने तुम्हें जन्म दिया है । अतः तुम ओषधियों से पूर्ण देहवाले होओ और सुख प्राप्त करते हुए संसार में रहो ।।७९।।

हे ओषधियो ! तुम रोगों को जीतने के लिए चिकित्सक के पास ऐसे जाते हो, जैसे राजा शत्रु जीतने को संग्राम में जाता है। चिकित्सक रोगों का नाश करता है और रोगों का नाशक होने से ही वह वैद्य कहाता है ॥८०॥

इस यजमान के रोगादि को दूर करने के लिए गवादि पशुओं को उपयोगी, सोमभागादि में उपयोगी और बल-प्राणपोषक ओषधियों को मैं भली प्रकार जानता हूँ ॥८१॥

-हे यज्ञपुरुष ! तुम्हारे धनरूप हवि देने की कामना करती हुई ओषधियों के द्वारा ही बल प्रकट होता है। जैसे गोष्ठ से गौएँ निकलती हैं, वैसे ही व्यवहार में आने पर ओषधि-गुण प्रकट होता है ॥८२॥

हे ओषधियो ! भूमि तुम्हारी माता है। जैसे भूमि सब रोगों की नाशिका है, वैसे तुम भी रोगनाशिका हो। तुम मनुष्यों के रोगों को नष्ट करो ॥८३॥

ये सब ओषधियाँ सब ओर से सब रोगों को दूर करती हैं। ओषधियाँ शरीर में व्या हो जाती हैं और शरीर-रोग को अपनी सामर्थ्य से नष्ट करती हैं ॥८४॥

जब मैं इस ओषधि का पूजन कर इसे हाथ में ग्रहण करता हूँ, तो यक्षमा रोग इसके खाने से पहले ही नष्ट होने लगता है। जैसे वध-गृह को ले जाता हुआ पुरुष वध होने से पहले ही अपने को वध किया हुआ मान लेता है, वैसे ही रोग अपने को नष्ट हुआ मानता है ॥८५॥

हे ओषधियो ! तुम जिस रोगी के अंगों में रमती हो, तो उसके यक्ष्मा रोग को बाधित करती है ॥८६॥

हे व्याधियो ! तुम श्लेष्मा एवं पित्तरोग, वातरोग तथा सर्वांगतापी वेदना के साथ चली जाओ ॥८७॥

हे ओषधियो ! तुम परस्पर एक-दूसरी ओषधि के गुणों की रक्षा करती हो। ऐसी ओषधियाँ मेरे लिए समान गतिवाली होकर मेरे रोग-नाश के निवेदन को सत्य करें ॥८८॥

वृहस्पति के द्वारा ज्ञात फलवाली, पुष्पवाली, फलरहित और पुष्प-रहित सब ओषधियाँ हमारे रोग का नाश करें ॥८९॥

शपथ के कारण, पाप के कारण, जलविहार के कारण, यम सम्बन्धित पाप से अथवा देवों के क्रोध के कारण जो रोग हुआ है, ऐसे सभी रोगों को ओषधियाँ नष्ट करें ॥९०॥

स्वर्ग से पृथिवी पर आती हुई ओषधियाँ कहती हैं कि हम जिसे

शरीर में रम जाती हैं, उस पर रोग आक्रमण नहीं करते ॥६१॥

जिन ओषधियों के राजा सोम हैं, वे अति गुणवती ओषधियाँ उनके मध्य विद्यमान हों। हे ओषधि ! तू श्रेष्ठ हो और हमारी कामना-पूर्ति तथा कल्याण करने वाली हो ॥६२॥

सोम जिनके राजा हैं, वे विभिन्न ओषधियाँ, हमारे द्वारा ग्रहण की गयी ओषधि को शक्तिशाली बनाएँ, जिससे हमारी रक्षा हो ॥६३॥

निकटस्थ अथवा दूरस्थ ओषधियाँ हमारे निवेदन को स्वीकार करके हमारे द्वारा ग्रहीत ओषधि को बलवती करें, जिससे हमारी रक्षा हो सके ॥६४॥

हे ओषधियो ! रोग-चिकित्सार्थ जो खननकर्त्ता तुम्हें खोदता है, उसके अपराध पर ध्यान न दो। तुम्हें मैं चिकित्सार्थ खोदता हूँ, मेरा अनिष्ट न हो। हमारे स्त्री-पुरुष रोगरहित हों ॥६५॥

सोम राजा से ओषधियों ने कहा कि जो ब्राह्मण चिकित्सार्थ हमारे मूल-फल-पत्रादि को ग्रहण करता है, उसके भी रोग को हम दूर करती हैं ॥६६॥

हे ओषधि ! तुम क्षय, मेदरोग और श्लीपदादि रोगों की नाशिका हो और शताधिक अन्य रोगों की भी नाशिका हो ॥६७॥

हे ओषधि ! गन्धर्वों, इन्द्र और वृहस्पति ने तुम्हारा खनन किया। सोम ने तुम्हारे गुणों को जानकर सेवन किया और यक्ष्मा रोगों से मुक्ति पायी। तुम्हारे गुणों के ज्ञाता तुम्हें पाकर रोगमुक्त हुए ॥६८॥

हे ओषधि ! तुम शत्रुओं को तिरस्कृत करने में समर्थ हो। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और हमारे अमंगलों को दूर करो ॥६९॥

हे ओषधि ! तेरा खननकर्त्ता दीर्घायु हो। जिस रोगी के लिए तुझे खोदा गया है, वह दीर्घायु हो। तुम भी दीर्घायु प्राप्त करो ॥१००॥

हे ओषधि ! तुम श्रेष्ठ हो। तुम्हारे समीपस्थ शाल, तमालादि वृक्ष उपद्रवों को दूर करने वाले एवं छायादि से प्राणियों का उपकार करने वाले हैं ॥१०१॥

प्रजापति पृथिवी के उत्पन्न करने वाले और जल-स्रष्टा हैं। वे प्रजापति हमारे रक्षक हों। यह हवि उनके लिए है ॥१०२॥

हे पृथिवी ! यज्ञानुष्ठान और उसके सुफल-वृद्धि के सहित हमारे अभिमुख होओ। प्रजापति के द्वारा प्रेरित अग्नि तुम पर प्रतिष्ठित हो ॥१०३॥

हे अग्नि ! उज्ज्वल-ज्योति-सम्पन्न, यज्ञ-सम्पादक तुम्हारे श्लाघनीया देह को हम देव-कार्य-सिद्धि-हेतु प्रदीप्त करते हैं ।।१०४।।

यज्ञोत्पत्ति के कारण रूप अन्न-दधि-दुग्ध-घृत आदि की कामना वाले अग्नि के निमित्त मैं हव्य धारण करता हूँ। अग्नि मेरे पुत्रादि का कल्याण करें ।।१०५।।

हे अग्नि ! तुम ज्योति रूप ऐश्वर्यवाले हो और यजमान के अभीष्ट को जानते हो। तुम्हारा प्रकाशित धूम देवों के पास पहुँचता है। तुम यजमान को शस्यादि देने वाले हो ।।१०६।।

हे अग्नि ! तुम शुद्ध-ज्योति-सम्पन्न एवं निर्मल दीप्तिवान् हो, अपनी महिमा से श्रेष्ठ एवं पूर्ण शक्तिशाली हो; सर्वत्र विचारशील एवं देवों तथा मनुष्यों के रक्षक हो ।।१०७।।

हे अग्नि ! तुम अन्नपालक, यज्ञ में स्तुतियों से वर्धित अनेक रूपवाले हो। तुम्हारा बल अद्भुत और जन्म सुन्दर हैं। तुम हव्य-ग्राहक यजमान के अनुकूल होओ ।।१०८।।

हे अग्नि ! यजमानों के हव्य से प्रदीप्त तुम हमें धन से प्रवृद्ध करो। अत्यन्त दर्शनीय तुम हमारे सकल्पों की पूर्ति में पूर्ण समर्थ हो ।।१०९।।

हे अग्नि ! तुम श्रेष्ठ मन वाले और यज्ञ स्रष्टा हो। तुम यजमान के लिए उत्कृष्ट ऐश्वर्य देत हो। इस यजमान को श्रेष्ठ धन दो ।।११०।।

हे अग्न ! सुबुद्धि वाले ऋत्विज-यजमान पूर्णिमादि पर्वों में तुम्हारी स्तुति करते हैं और सत्यरूप, महिमामय दर्शनीय, यशस्वी, देवहितैषी तुमको यज्ञ के निमित्त आह्वनीय रूप से पूर्वभाग में स्थापित करते हैं ।।१११।।

हे साम ! तुम्हें तेज सर्वतः प्राप्त हो। तुम श्रेष्ठ वीर्य से स्वयं प्रबुद्ध होओ। रसयुक्त तुम यज्ञादि कर्मों के लिए प्राप्त होओ ।।११२।।

हे सोम ! तुम पापनाशक उत्तम पेय हो। तुम दुग्धरूप अन्न से सुसंगत होओ और हम तुमसे सुसंगत हों। तुम यजमान की वृद्धि करो। हमारी श्रेष्ठ अन्नवाली आहुति ग्रहण करो ।।११३।।

हे साम ! तुम्हारा अन्तःकरण तृप्त है। तुम्हारा मन सर्वत्र प्रसृत है। तुम अपने सूक्ष्मावयवों से सदा प्रबुद्ध होओ। मित्र रूप में तुम हमारी सहायता करो ।।११४।।

हे अग्नि ! यजमान तुम्हारे पुत्र के सदृश हैं। वह तुम्हारी स्तुति कर रहा है। वह अपने मन को स्वर्ग से भी हटाकर तुम्हारी स्तुति में

और यज्ञ में लगा रहा है ॥११५॥

हे अग्नि तुम हवि-भक्षक हो। स्वर्ग लोक की प्रापक और अभीष्ट वर्षक स्तुतियाँ तुम्हारे लिए की जा रही हैं ॥११६॥

उत्पन्न अथवा उत्पन्न होने वाले सभी प्राणियों के कामनापूरक तथा सबके सम्राट् रूप अग्नि अपने श्रेष्ठ तथा प्रिय स्थानों में विराजित होते हैं ॥११७॥

त्रयोदश अध्याय

ऋषि : वत्सार, हिरण्यगर्भ, वामदेव, त्रिशिरा, अग्नि आदि।

मैं यजमान, धन-पुष्टि, सन्तान, पराक्रमादि की इच्छा करता हुआ इस अग्नि को आत्मा में ग्रहण करता हूँ। सब देवता मुझे आश्रय दें ॥१॥

हे परमेश्वर! तुम सब ओर से सर्वत्र व्यापक जलों के अधिकरण हो। अग्नि के उत्पत्तिकर्त्ता हो, समुद्र के कारण हो। मेरे हृदय रूपी अन्तरिक्ष में अपनी व्यापक शक्ति के साथ विराजो ॥२॥

सूर्यरूप ब्रह्म ने प्रथम पूर्व दिशा में उदित होकर भूलोक तथा अन्य लोकों को प्रकाशित किया। इन्होंने अन्तरिक्ष तथा दिशाओं और घट-पटादि पदार्थों को भी प्रकाशित किया ॥३॥

सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति उत्पन्न हुए। उन्होंने स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकों की रचना की। उन्हीं की प्रीति के लिए। हम हवि का विधान करते हैं ॥४॥

सर्वप्रथम उत्पन्न, सबके आदि रूप, सबको रस से तृप्त करने वाले और तीनों लोकों में विचरणशील आदित्य को प्रजापति ने स्थापित किया ॥५॥

जो इस जगत् में लोक-लोकान्तर में, अन्तरिक्ष में और जो स्वर्ग में प्राणी हैं, उन सब प्राणियों के लिए नमस्कार है ॥६॥

जो यातुधानों के साधन रूप प्राणी हैं, जो वनस्पतियों पर आश्रित प्राणी हैं, जो गुप्त स्थानों में रहने वाले प्राणी हैं, उन सबको हमारा नमस्कार है ॥७॥

जो स्वर्ग के ज्योतिर्मय स्थान में हैं, जो अप्रत्यक्ष हैं, जो सूर्यरश्मियों में या जल में रहने वाले हैं, उन सभी जीवों को हमारा नम ा हो ॥८॥

हे अग्नि! तुम शत्रु-नाश करने में समर्थ हो। अतः हमारे शत्रुओं का नाश करो। तुम शत्रुओं पर आक्रमण करो और राक्षसों को ललकारो ॥९॥

हे अग्नि ! आप अपनी द्रुतगामी ज्वालाओं से सन्तापदायी राक्षसों को भस्म कर दो। वे नाश को प्राप्त हों ।।१०।।

हे अग्नि ! हमारे दूरस्थ तथा समीपस्थ शत्रुओं पर अपना वेगवान् बन्धन फेंको। हमारी सन्तान की रक्षा करो ।।११।।

हे अग्नि ! उठो, चैतन्य हो, ज्वालाओं को बढ़ाओ और उत्साहित होकर शत्रुओं को भस्म करो। हमारे दान के बाधक शत्रु को भस्म कर डालो ।।१२।।

हे अग्नि ! ऊँचे उठो। हमारे ऊपर आक्रमण करने वाले शत्रुओं को प्रताड़ित करो और देव सम्बन्धी कर्मों को प्रारम्भ करो। राक्षसों के धनुषों को प्रत्यंचाहीन करो ।।१३।।

यह अग्नि स्वर्गलोक के शिर के समान है। जैसे बैल का कंधा उसके शरीर में सर्वोच्च होता है ।।१४।।

हे अग्नि ! जब तुम अपनी ज्वालाओं को प्रकट करते हो, तब हव्य देवता यज्ञ के और उस यज्ञ के फलस्वरूप जल के प्रवृत्त करने वाले होते हैं। तुम सूर्य मण्डल के मध्य स्थित होते हो ।।१५।।

हे स्वयमातृणे ! तुम जगत् की धारणकर्त्री हो और विश्वकर्मा द्वारा विस्तृत की जाती हुई दृढ़ होती हो। तुम्हें समुद्र और वायु नष्ट न करें। तुम अविचल रह भूभाग को दृढ़ करने वाली होओ। हमारी भूमि को दृढ़ करो ।।१६।।

तुम विस्तृत जलों के ऊपर समुद्र में स्थापित कीजाओं और प्रजापति के द्वारा विस्तार को प्राप्त होओ। तुम पृथिवी द्वारा बनने के कारण पृथिवी रूप ही हो ।।१७।।

हे स्वयमातृणे ! तुम विश्वपोषिका अदिति हो। तुम सब जग की धारिका होकर इस भूमि के अनुकूल होओ और भूभाग को दृढ़ एवं अविनाशी बनाओ ।।१८।।

हे स्वयमातृणे ! विश्व के प्राण, अपान, उदान और व्यान के लिए मैं तुम्हें इस स्थान पर स्थापित करता हूँ। तुम्हारी महिमा के द्वारा अनल देव तुम्हारी रक्षा करें ।।१९।।

हे दूर्वा ! तुम प्रत्येक काण्ड और पर्व मे अंकुरित होती हो। सैकड़ों हजारों अंकुरों के समान हमारे पुत्र-पौत्रादि को बढ़ाओ ।।२०।।

हे दिव्य गुणवाली दूर्वा इष्टके ! तुम सैकड़ों शाखाओं और हजारों अंकुरों से बढ़ती हो, हम तुम्हारे लिए हवि देते हैं ।।२१।।

हे अग्नि ! सूर्यमण्डल में स्थित हो, स्वर्गलोक को प्रकाशित करने वाली अपनी ज्योति को हमारे पुत्र-पौत्रादि की प्रसिद्धि के लिए प्रेरित करो ।।२२।।

हे इन्द्राग्नि ! हे वृहस्पते ! हे देवो ! आपकी जो ज्योति सूर्यमण्डल, गौओं और अश्वों में वर्तमान है, उनसे हमारे पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि कीजिए ।।२३।।

उन सभी दीप्तियों से अत्यन्त शोभित होकर तुम हमारे लिए आरोग्य और कान्ति दो । विराट् रूप संसार ने अग्नि की ज्योति को धारण किया । ज्योतिष्मान् विराट् रूप देवलोक ने अग्नि-तेज को धारण किया । हे अग्नि ! सम्पूर्ण जगत् के लिए प्राण-अपान-व्यान के निमित्त प्रजापति रूप में ज्योति दीजिए ।।२४।।

चैत्र-बैशाख दोनों मास वसन्त ऋतु से सम्बन्धित हैं । तुम दोनों अग्नि को अन्तर्विद्यमान करके दृढ़ता से स्थित होओ । समान कर्मस्थित अनेक नामवाली अग्नियाँ वसन्तऋतु का सम्पादन करती हुई इस कर्म के आश्रित हों ।।२५।।

हे इष्टका ! तुम स्वभावतः शत्रुओं को जीतने वाली हो । तुम शत्रु को सहन न करती हुई उसे तिरस्कृत करो । युद्धेच्छुक शत्रुओं को परास्त करो । तुम अत्यन्त पराक्रम वाली हो और मुझ पर प्रसन्न हो ।।२६।।

यज्ञानुष्ठान के इच्छुक यजमान के लिए वायु पुष्प-रसरूप मधु को वहन करें, नदियाँ मधुर जल बहाएँ और ओषधियाँ मधुर रस से युक्त हों ।।२७।।

पिता के समान पालक स्वर्ग लोक मधुमय हो, माता के समान पृथिवी मधुमय हो और रात्रि-दिवस हमारे लिए मधुमय हों । सब ओर हमारा मंगल हो ।।२८।।

सभी वनस्पतियाँ हमारे लिए मधुमयी हों । सूर्य हमें माधुर्य से भरें । गौ हमें मधुर दुग्ध दें ।।२९।।

हे मनुष्य ! तू ग्रीष्म ऋतु में जलों के गहन स्थान में स्थित हो, सूर्य तुझे सन्तप्त न करें । वैश्वानर अग्नि तुझे सन्तप्त न करें । प्रजा तेरे अनुकूल हों । शुद्ध गुणयुक्त वर्षा तुझे प्राप्त हो ।।३०।।

हे विद्वान् ! जैसे प्राणों के रक्षक सूर्य जल को धारण करते हुए कामनापूर्त्यर्थं तीनों लोकों को प्राप्त होते हैं, वैसे तुम भी सुख प्राप्त

कराने वाले लोकों को प्राप्त करो ॥३१॥

द्यावापृथिवी अपने-अपने अंशों से हमारे यज्ञ को पूर्ण करें। तथा जल-वृष्टि, धान्य, सुवर्ण, पशु, प्रजा आदि सभी से हमें समृद्ध करते हुए हमारा सब प्रकार से कल्याण करें ॥३२॥

हे ऋत्विजो! विष्णु के सृष्टि-रचना कार्य को देखो। उनके द्वारा कृत व्रतानुष्ठान के विधान को देखो। विष्णु इन्द्र-सखा हैं। पदार्थ विष्णु के बलविक्रम के साक्षी हैं ॥३३॥

हे पुरुष! तू गुणयुक्त है प्रकाशमान है। हे स्त्री! तू सदाचार से शोभित है। तुम दोनों विज्ञान, धन, बल, यश, अन्न, पराक्रम और सुसन्तान-प्राप्ति का यत्न करो ॥३४-३५॥

हे दिव्य गुण सम्पन्न अग्नि! तुम्हारे गमन में कुशल जो अश्व तुम्हें यज्ञ में लाते हैं, उन्हीं अश्वों को अपने रथ में योजित करो ॥३६॥

हे अग्नि! अश्वों को तुम रथ में योजित करो, और हमारे श्रेष्ठ यज्ञस्थान में आकर विराजमान होओ ॥३७॥

अग्नि के मध्य स्थित हिरण्मय पुरुष शुद्ध-अन्न और घृत की धारा स्रवित करते हैं। हिरण्मय पुरुष को हवन की गयी हवियाँ उसी तरह पहुँचती हैं, जैसे समुद्र तक नदियाँ पहुँचती हैं ॥३८॥

हे हिरण्मय! यज्ञादि कर्मों की सिद्धि के लिए और तेज-प्राप्ति के लिए मैं तुम्हें वाम-दक्षिण नासिका में प्रकाशित करता हूँ तथा वाम-दक्षिण चक्षु का स्पर्श कराता हूँ और दोनों कानों का प्राशन कराता हूँ ॥३९॥

अग्नि हिरण्मय-कान्ति से कान्तिमान हैं और सुवर्ण के तेज से तेजस्वी हैं। हे पुरुष! तुम यजमान की कामनाओं को सिद्ध करने में समर्थ हो, अतः मैं तुम्हें अपने अनुकूल करता हूँ ॥४०॥

हे पुरुष! तुम अग्नि-चयन करने के कार्य में लगे हो। सभी प्राणियों के पालक विश्वरूप आदित्य इस अग्नि को दुग्धादि से सिंचित करें तथा यजमान को अग्नि के तेज से हिंसित न होने दें एवं उसे सुखी करते हुए शतायु करें ॥४१॥

हे अग्नि! तुम वायु-सम वेगवान् हो। अतः वरुण के नाभि रूप जलों में आविर्भूत, नदियों के शिशु रूप हरित वर्णी इस अश्व को हिंसित न करना ॥४२॥

ऐश्वर्यवान्, अविनाशी, प्राचीन ऋषियों के द्वारा चयनीय और सर्वप्राणिपोषक अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। ये अग्नि प्रत्येक ऋतु के

कर्मों के सम्पादक हैं। वे दुग्धादि से पुष्ट अग्नि अदिति रूपिणी गौ को हिंसित न करें ।।४३।।

हे अग्नि ! तुम श्रेष्ठ आकाश में स्थापित, रूपों की रचयित्री, वरुण की नाभि रूप रक्षा योग्य, दिशालोक से उत्पन्न और प्राणि-उपकारक हवि को हिंसित न करना ।।४४।।

जो अग्नि रूप अज प्रजापति के सन्ताप से उत्पन्न हुआ है, उस पर हे अग्नि ! तुम्हारा क्रोध न हो ।।४५।।

यह कितने विस्मय की बात है कि रश्मि-समूह रूप तथा मित्रावरुण एवं अग्नि के नेत्ररूप, अन्तर्यामी सूर्य संसार को प्रकाशित करने के लिए उदय होते हैं और प्रकाश से तीनों लोकों को पूर्ण करते हैं। ऐसे सूर्य के लिए दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो ।।४६।।

हे अग्नि ! तुम यज्ञ-कर्म के लिए चयन किये गये हो। इस दुपाये पशु रूप मनुष्य को हिंसित न करना। तुम्हारा ताप हमारे द्वेषी हिंसित करें ।।४७।।

हे अग्नि ! हिनहिनाने वाले वेगवान् अश्व को हिंसित न करना। तुम्हारा सन्तापदायी ताप मृग को अथवा हमारे द्वेषी को ही प्राप्त हो ।।४८।।

हे अग्नि ! यह गौ श्रेष्ठ-स्थान में रहने वाली है। अदिति रूप इस गौ को पीड़ित न करना, तुम्हारा क्रोध अन्य पशु को प्राप्त हो ।।४९।।

हे अग्नि ! श्रेष्ठ ऊन से ढकी, और सृष्टि में प्रथम उत्पन्न भेड़ को हिंसित न करना। तुम्हारा सन्तापदायी तेज ऊँट पर पड़े ।।५०।।

यह भेड़ अज प्रजापति के द्वारा उत्पन्न हुई है। इसने प्रजापति को देखा है। अतः हे अग्नि ! अपने सन्तापदायी ताप से इसे पीड़ित न करना। तुम अपने ताप से शरभ को पीड़ित करना ।।५१।।

हे तरुणतम अग्नि ! तुम हमारी स्तुतियाँ सुनो। हविर्दान करने वाले यजमानों की रक्षा करो ।।५२।।

हे इष्टके ! मैं तुम्हें ओषधियों विद्युत, भूमि, प्राण, मन, वाणी, क्षोभ, स्वर्ग, समुद्र, सिकता, अग्नि और त्रिष्टुप-अनुष्टुप-पंक्ति छन्दों में स्थापित करता हूँ ।।५३।।

हे इष्टके ! ये अग्नि प्रथम उत्पन्न हुए हैं। तुम इनके समानरूप वाली हो। अतः मैं अग्नि रूपा तुमको स्थापित करता हूँ। प्राण अग्नि का पुत्र है। मैं उस अग्नि का स्मरण करता हुआ तुम्हें स्थापित करता

हूँ। प्राण का पुत्र वसन्त है। वसन्त की सन्तान गायत्री। कामना न करता हुआ मैं इष्टका को स्थापित करता हूँ ।।५४।।

यह इष्टका विश्वकर्मा नामबाली है। यह दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती है। मैं दक्षिण दिशा में वायु का मनन करता हुआ इष्टका स्थापन करता हूँ ।।५५।।

यह आदित्य पश्चिम की ओर गमन करते हैं। आदित्य से उत्पन्न चक्षु, चक्षु से ऋतु, ऋतु से जगती छन्द; जगती से ऋक्-साम; ऋक्-साम से शुक्र ग्रह; शुक्र ग्रह से सप्तदशस्तोम; सप्तदशस्तोम से वैरूप, वैरूप से जमदग्नि। मैं इन सबका मनन करता हुआ इष्टका स्थापन करता हूँ ।।५६।।

उत्तर दिशा में स्वर्गलोग स्थित है। उस स्वर्ग लोक से उत्पन्न श्रोत्र, श्रोत्र से शरद्ऋतु; शरद्ऋतु से उत्पन्न अनुष्टुप् छन्द, अनुष्टुप् से ऐड साम; ऐड से मन्थीग्रह; मन्थीग्रह से उत्पन्न इक्कीसवाँ स्तोम; इक्कीसवें स्त्रोम से वैराज; वैराज साम से उत्पन्न विश्वामित्र का तथा उक्त सभी का मनन करता हुआ मैं इष्टका स्थापन करता हूँ ।।५७।।

चन्द्रमा रूप मति से उत्पन्न वाणी का मनन करता हुआ मैं इष्टका-सादन करता हूँ। वाणी से प्रकट हेमन्त-ऋतु; हेमन्त ऋत से हेमन्त नामक पंक्ति छन्द; पंक्ति छन्द से निधनवत्साम, निधनवत्साम से प्रकट आग्रयेण ग्रह; आग्रयण से त्रिणव और त्रयस्त्रिंश स्त्रोम; त्रिणव और त्रयस्त्रिंश स्तोमों से विदित शाक्वर और रैवत साम, और शाक्वर तथा रैवत साम से विदित विश्वकर्मा नामक ऋषि का तथा उक्त इन सभी का मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ ।।५८।।

चतुर्दश अध्याय

ऋषि : उशना, विश्वेदेवा विश्वकर्मा।

हे स्त्री ! तू श्रेष्ठ-धर्म वाली, बुद्धि को प्रेम से सेवन करती हुई, स्थिर वास करने के लिए स्थिर स्थान में रहने की इच्छुक और दृढ़ धर्म से युक्त है। तुझे इस स्थिर-गृह में गृहस्थाश्रम में अश्विनी कुमार, सुस्थापित करें ।।१।।

हे सुखदायनी स्त्री ! तेरी सब विद्वान् प्रशंसा करें। तू सुन्दर-सम्पत्ति और विद्याधन को प्राप्त करे। अश्विनीकुमार तुझे इस गृहस्थाश्रम में सुस्थापित करें ।।२।।

हे स्त्री ! तू इस लोक में वृद्धि को प्राप्त कर और सुख में स्थित हो। सुखयुक्त तू सुन्दर शरीर पर वस्त्रालंकार धारण करती हुई अपने पति के साथ इस गृह में प्रवेश कर। अश्विनीकुमार तुझे गृहस्थाश्रम में सुस्थापित करें ॥३॥

हे स्त्री ! स्तुतियों को जानने की इच्छुक तू सुन्दर नाम रूप एवं विपुल पदार्थों से युक्त है। विद्वान् तेरी प्रशंसा करें। तू इस गृहस्थाश्रम में वर्तमान रह। अश्विनीकुमार तुझे गृहस्थाश्रम में सुस्थापित करें ॥४॥

हे स्त्री ! तू शुभ गुणों से युक्त है। मैं (तेरा पति) अविनाशी कीर्ति-वाली, सुख और सन्तान प्राप्त कराने वाली तुझको सूर्य रश्मि के समान इस गृह में घर की अधिकारिणी के रूप में स्थापित करता हूँ। तुझे अश्विनीकुमार गृहस्थाश्रम में सुस्थापित करें ॥५॥

ज्येष्ठ और आषाढ़ मिलकर ग्रीष्मऋतु कहते हैं। हे स्त्री-पुरुषो ! तुम भी मिलकर ऐसी विद्याएँ और ज्ञान प्राप्त करो कि ग्रीष्म-ऋतु सुख-दायिनी हो। उसमें कफ के रोगों का निवारण हो तथा जल, ओषधियाँ, अग्नि, विद्युत सभी सुखदायी हों ॥६॥

हे मनुष्य ! इस जगत् में तुझको अश्विनीकुमार सब पदार्थों की प्राप्ति एवं अग्नि विद्या के ज्ञान के लिए नियुक्त करें और हम लोग भी जिस ज्ञान-प्राप्ति के लिए तुझे नियुक्त करें, तू उन सब पदार्थों और उस ज्ञान को प्राप्त करे ॥७॥

हे इष्टका ! मेरे प्राण-अपान-व्यान-चक्षुओं और श्रोतों की रक्षा करो। तुम ओषधियों को पुष्ट करो, मनुष्यों और पशुओं की रक्षा करो, तथा आकाश से जल-वृष्टि करो ॥८॥

गायत्री रूप होकर प्रजापति ने यज्ञ के द्वारा मूर्द्धा रूप ब्राह्मण की रचना की। अनिरुक्त छन्द रूप होकर वय से क्षत्रिय की रचना की। छन्द रूप होकर वैश्य को बनाया। वय-द्वारा छन्द रूप को प्राप्त हुए प्रजापति ने शूद्र की उत्पत्ति की। एकपद नामक छन्द से प्रजापति न अजा को ग्रहण किया। तब पुरुष उत्पन्न हुए—पशु उत्पन्न हुए। गायत्री छन्द से मेघ हुए, पंक्ति छन्द होकर प्रजापति ने किन्नर रूप ग्रहण किया। जगती छन्द रूप से सिंह, निरुक्त से गर्दभादि पशु, ककुप् छन्द से उक्षर और वृहती छन्द से ऋषभ को ग्रहण करके भालू आदि को उत्पन्न किया ॥९॥

पंक्ति छन्द रूप से बलीवर्द (बैल), जगती से गौएँ तथा त्रिष्टुप् गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप् इन छन्दों के रूप से प्रजापति ने क्रमशः ऋषि,

दित्यवाट्, भचावि, त्रिवक्ता, तुर्यवाट् की रचना की। हे इष्टके! पूर्व-स्थापित इष्टकाओं से अहिंसित रहते हुए सम्पूर्ण छिद्रों को पूर्ण करती हुई तुम स्थित होओ। इन्द्र-अग्नि-बृहस्पति तुम्हें श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करें। जलों के पृथिवी पर गिरने पर द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष सोम को परिपक्व करते हैं। देवताओं की स्तुतियाँ इन्द्र को अर्पित होती हैं॥१०॥

हे इन्द्राग्नी! तुम अचल रहते हुए इष्टका को दृढ़ करो। हे इष्टका! तुम द्यावापृथिवी-अन्तरिक्ष को व्याप्त करने में समर्थ हो॥११॥

हे स्वयमातृणे! तुम अवकाश युक्त और विस्तृत हो। विश्वकर्मा तुम्हें अन्तरिक्ष में स्थापित करें। वायु तुम्हारी सुरक्षा करें। तुम अंगिरा के समान अचल होओ॥१२॥

हे इष्टके! तुम दश दिशाओं में विद्यमान गायत्री रूप होओ॥१३॥

वायुरूप हे इष्टके! तुमको विश्वकर्मा अन्तरिक्ष के ऊपर स्थापित करें। तुम यजमान के प्राणापान, व्यान और उदान के निमित्त तेजों को दो॥१४॥

श्रावण-भादों दोनों मिलकर वर्षात्मक ऋतु हैं। तुम दोनों महीने एकरूप-एक कार्य में लगे हुए अपनी श्रेष्ठता कल्पित करो॥१५॥

आश्विन-कार्तिक ये दोनों मिलकर शरदात्मक हैं। ये मुझ यजमान को श्रेष्ठ बनायें॥१६॥

हे इष्टका! मेरी आयु, प्राणापान, व्यान, चक्षुओं, श्रोतों, वाणी, मन, आत्मा और तेज की रक्षा करो, इन्हें पुष्ट करो॥१७॥

हे इष्टका! तुम्हें इस लोक के मननपूर्वक स्थापित करता हूँ। हे इष्टका! तुम्हें द्युलोक, अन्तरिक्ष, पंक्ति छन्द, उष्णिक् छन्द, बृहती, अनुष्टुप्, विराट्, गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती छन्द के तथा उक्त सभी के पृथक्-पृथक् यथापूर्वक स्थापित करता हूँ॥१८॥

मैं पृथिवी देवता से सम्बन्धित छन्द का मनन करता हुआ इष्टका स्थापना करता हूँ॥१९॥

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता और वरुण देवता के मननपूर्वक तथा उक्त सभी देवताओं के मननपूर्वक इष्टका स्थापन करता हूँ॥२०॥

हे बालखिल्य इष्टका! तुम समूर्धा के समान श्रेष्ठ हो; धारण करने वाली तथा स्थिर हो। अतः स्थिर रूप से इस स्थान को धारण करो॥२१॥

हे बालखिल्ये ! तुम इस स्थान में विधिपूर्वक निवास करो। तुम स्वयं नियम में रहती तथा अन्य से नियम पालन कराती हो। तुम पृथिवी के समान अविचल स्थित हो। तुम्हें मैं अन्न एवं धन-पुष्टि-प्राप्ति के निमित्त स्थापित करता हूँ ।।२२।।

हे इष्टका ! निवृत स्तोम के रूप में व्याप्त तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ।।२३।।

हे इष्टका ! तुम अग्नि का भागरूप हो। दीक्षा का तुम पर आधिपत्य है। इसलिए निवृत सोम के द्वारा तुमने ब्राह्मणों की मृत्यु से रक्षा की। उस निवृत स्तोम का स्मरण करते हुए मैं इष्टका स्थापन करता हूँ ।।२४।।

हे इष्टका ! तुम वसुओं का भाग हो। तुम पर रुद्रगण का अधिकार है। चतुर्विंश स्तोम द्वारा तुमने पशुओं को मृत्यु से बचाया। उस स्तोम का मनन कर, मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ।।२५।।

हे इष्टका ! तुम शुक्ल पक्षीय तिथि के भाग हो और तुम पर कृष्ण पक्षीय तिथि का अधिकार है। चत्वारिंश स्तोम का मनन करते हुए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ।।२६।।

मार्गशीर्ष और पौष दोनों मिलकर हेमन्त ऋतु कहाते हैं। ये अग्नि के अन्तश्लेष हैं। अग्नि-चयन करते हुए मुझ यजमान की श्रेष्ठता को द्यावापृथिवी जल और ओषधि कल्पित करें ।।२७।।

प्रजापति ने एक वाणी से आत्मा का स्तवन किया, जिससे यह प्रजाएँ उत्पन्न हुईं और प्रजापति ही उनके अधिपति हुए। प्राणोदान-व्यान द्वारा स्तुति की, जिससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए और उनके अधिपति हुए, ब्रह्मणस्पति। पंचभूतों में स्तुति की, तो उससे पंचभूतात्मक सृष्टि हुई और उसके अधिपति हुए, भूतनाथ महादेव। श्रोत्र, नासिका, चक्षु और जिह्वा द्वारा स्तुति की, इससे सप्तर्षि उत्पन्न हुए और उनके अधिपति धाता हुए ।।२८।।

नवद्वार के शरीर-द्वारा स्तुति की, जिससे पितर, वायु, अग्नि उत्पन्न हुए और उनकी स्वामिनी हुई, अदिति, प्राणादि दश तथा ग्यारहवीं आत्मा से स्तुति की, तो उससे ऋतुएँ हुई और उनके अधिपति हुए—ऋतुपति देवता। दश प्राण ग्यारहवीं आत्मा और दो प्रतिष्ठाएँ—इन तेरह से स्तुति की, तो बारह महीने और एक अधिमास वाले संवत्सर की उत्पत्ति हुई। उसका अधिपति संवत्सर हुआ। दोनों हाथ, दश अंगुलियाँ, दो भुजाएँ और एक नाभि के ऊपर का भाग इन पन्द्रह से स्तुति करने पर क्षत्रिय

उत्पन्न हुए, जिनका आधपात हुआ—इन्द्र । दो पाँव, दश अँगुलियाँ, दो जानु और एक नाभि के नीचे का भाग—इन पन्द्रह के द्वारा स्तुति करने पर ग्राम्य पशु उत्पन्न हुए, जिसका अधिपति हुआ— वृहस्पति ।।२६।।

प्रजापति ने हाथों की दस अँगुलियां और ऊपर-नीचे के छिद्र रूप नौ वाणियों से स्तुति की; उससे शूद्र और आर्य जाति उत्पन्न हुई, उनकी स्वामिनी अहोरात्र हुई। हाथ और पाँव की बीस अँगुलियों और आत्मा इन इक्कीस से स्तुति करने पर एक खुर वाले पशु हुए और उनके स्वामी वरुण हुए। हाथ-पाँव की बीस अँगुलियों और दो चरणों और एक आत्मा से स्तुति करने पर अजा आदि पशु हुए और उनके स्वामी हुए—पूषा। बीस अँगुलियाँ, दो हाथ, दो पाँव और आत्मा इन पच्चीस से स्तुति करने पर वन के मृगादि पशु हुए और उनके अधिपति हुए—वायु। बीस अँगु-लियाँ, दो हाथ, दो उरू, दो प्रतिष्ठा—इनसे स्तुति करने पर द्यावापृथिवी, वसुगण, रुद्रगण और आदित्यगण प्रकट हुए ।।३०।।

बीस अँगुलियों और नव प्राण के छिद्रों सहित स्तुति की, तो वनस्पतियाँ हुई और उनके स्वामी हुए—सोम। बीस अँगुलियों, दस इन्द्रियों और एक आत्मा से स्तुति की तो सभी प्राणियों की सृष्टि हुई, उसके स्वामी पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष हुए। बीस अँगुलियों, दश इन्द्रियों, दो पाँवों और आत्मा से स्तुति की तो सब प्राणियों में परस्पर प्रीति की और परमेष्ठी प्रजापति उनके अधिपति हुए ।।३१।।

पञ्चदश अध्याय

ऋषि : परमेष्ठी, प्रियमेधा, वसिष्ठ, मधुच्छन्दा।

हे अग्नि ! हमारे प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं को दूर करो। प्रसन्नचित्त आप हमें अभीष्ट वर दो। हम उत्तम पदार्थों से युक्त हों, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों सुख प्राप्त करें ।।१।।

हे अग्नि ! आप हमारे वर्तमान और भविष्य शत्रुओं को सर्वतः नष्ट कीजिए। आप हमें प्रसन्नचित्त होकर अभीष्ट वर दीजिए। मैं आपकी कृपा से शत्रुओं में सब प्रकार से बलवान होऊँ ।।२।।

हे इष्टका ! तुम्हें षोडशी स्तोम तथा चत्वारिंश-स्तोम के प्रभाव से स्थापित करता हूँ। इस स्थान में हमें ओज और धन की प्राप्ति हो ।।३।।

हे इष्टका ! पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, अन्न, मन, वायु, वाणी, प्राण, उदान, वेदत्रय, जल, स्वर्ग, भूलोक, पाताल लोक और विद्युत के मननपूर्वक तुमको स्थापित करता हूँ ।।४।।

शरीराच्छादित एवं शरीराच्छादक अन्न, कर्म निवृत्तिकारिणी रात्रि, कर्म प्रवर्तक दिवस विस्तीर्ण द्युलोक, पृथिवी, घोर शब्दकारिणी वायु, विविधा कृतिवान् भूत पिशाचादि, भक्षणकारिणी अग्नि, वैखरी वाणी, मध्यमा वाणी, भूलोक, प्रभामंडल, जठराग्नि, यज्ञादि कर्म से सिद्ध ज्ञान रूपी सूर्य तथा जल का मनन करता हुआ हे इष्टका ! मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ।।५।।

हे इष्टका ! तुम रश्मिरूप अन्न के द्वारा सत्य के लिए सत्य वाणी को पुष्ट करो, कर्म के निमित्त धर्म को प्रवृद्ध करो । स्वर्ग लोक के निमित्त स्वर्ग को, अन्तरिक्ष को, पृथिवी लोक को, वृष्टि जल को और रात्रि को पुष्ट करो । तुम वसुओं और आदित्यों के साथ प्रीति करो ।।६।।

हे इष्टका ! शरीर को बढ़ाने वाले अन्न के प्रभाव से धन की पुष्टि के लिए उपहित हुई तुम धन का पोषण करो, शास्त्रों के लिए उपहित हुई तुम शास्त्रों की वृद्धि करो, ओषधियों के लिए उपहित तुम ओषधियों को पुष्ट करो ।।७।।

हे इष्टका ! तुम जीवन का अस्तित्व रखने वाले, इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में समर्थ करने वाले, धन का प्रतिपादन करने वाले और तेजस्वी बनाने वाले अन्न के समान हो, मैं तुम्हें जीवन, इन्द्रिय-सामर्थ्य, धन और तेज प्राप्त करने के लिए स्थापित करता हूँ ।।८।।

हे इष्टका ! तुम कृषि, वृष्टि और बीज के द्वारा उत्पन्न होने वाले, प्राणियों को कर्म-प्रवृत्त करने वाले इन्द्रियों को अपने-अपने कर्म में लगाने वाले, जीवन के साथ चलने वाले भूख मिटाने वाले के समान हो मैं तुम्हें अन्न लाभ, कर्म प्रवृत्ति, इन्द्रियो के द्वारा दिये जाने वाले कार्यों के लिए स्थापित करता हूँ ।।९।।

हे इष्टका ! तुम पूर्व दिशा की स्वामिनी हो, तुम्हारे अधिपति अष्टावसु हैं । अग्नि तुम्हारे विघ्न-निवारक हैं । निवृत्त सोम तुम्हें पृथ्वी पर रथन्तर अन्तरिक्ष में, प्राण और देव स्वर्ग-लोक में स्थापित करें ।।१०।।

हे इष्टका ! तुम दक्षिण दिशा रूप हो । रुद्रगण तुम्हारे अधिपति हैं । इन्द्र विघ्न दूर-कर्त्ता हैं । पञ्चदश सोम तुम्हें पृथिवी पर, वृहत्साम अन्तरिक्ष में और देवता दिव्य लोक में विस्तृत करें । देवता यजमान को स्वर्ग दें ।।११।।

हे इष्टका ! तुम पश्चिम दिशा रूप हो । आदित्य तुम्हारे अधिपति हैं । वरुण तुम्हारे दुःखहारक हैं । तुम्हें सप्तदश सोम पृथिवी पर और

देवगण तुम्हें दिव्य लोक में प्रतिष्ठित करें। देवता यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराएँ ॥१२॥

हे इष्टका ! तुम उत्तर दिशा रूप हो। मरुद्गण तुम्हारे अधिपति एवं सोम विघ्नहारक हैं। एकविंशस्तोम तुम्हें पृथिवी पर और वैराज तुम्हें अन्तरिक्ष में स्थापित करें तथा देवता तुम्हें स्वर्ग-लोक में विस्तृत करें। देवता यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराएँ ॥१३॥

हे इष्टका ! तुम ऊर्ध्व दिशाधीश्वरी हो। विश्वेदेवा तुम्हारे अधिपति हैं और बृहस्पति विघ्नशामक हैं। त्रिणवत्रयस्त्रिंश स्तोम तुम्हें पृथिवी पर तथा शाक्वर और रैवत साम तुम्हें अन्तरिक्ष में स्थापित करें। वैश्वदेव अग्नि, मारुत, उक्थ तुम्हें दृढ़ता दें। देव तुम्हें स्वर्ग लोक में विस्तृत करें। यजमान को देवता स्वर्ग प्रदान करें ॥१४॥

पूर्व दिशा में प्रतिष्ठित अग्नि रूप इष्टका हिरण्मय-रश्मि-युक्त है। ऐसे अग्नि को हमारा नमन। वे हमें सुख दें। जो हमसे और हम जिससे द्वेष करते हैं, उन्हें हम अग्नि की दाढ़ में भेजते हैं ॥१५॥

दक्षिण दिशा में स्थापित इष्टका विश्वकर्मा रूप हैं। इष्टका को हमारा नमन। ये हमें सुख दें और रक्षा करें। जिनसे हम या हमसे जो द्वेष करते हैं, उन्हें हम उनकी दाढ़ों में भेजते हैं ॥१६॥

पश्चिम दिशा में स्थापित इष्टका आदित्य रूप हैं। इनकी सेनापति वर्षर्तु है। जो हमसे या जिनसे हम द्वेष करते हैं, उन्हें हम आदित्यों की दाढ़ों में भेजते हैं ॥१७॥

उत्तर दिशा में स्थापित इष्टका यज्ञ रूप है। इनकी सेनापति है—शरद्ऋतु। ये हमें सुख और रक्षा दें। जो हमसे या जिनसे हम द्वेष करते हैं, उन्हें हम अग्नि की दाढ़ों में डालते हैं ॥१८॥

मध्य दिशा में स्थापति इष्टका पर्जन्य रूप है। पर्जन्य को हमारा नमन। वे हमें सुख तथा रक्षा दें। जो हमसे या जिनसे हम द्वेष करते हैं, उन्हें हम पर्जन्य की दाढ़ में डालते हैं ॥१९॥

अग्नि स्वर्ग की मूर्धा है और वृषभ के शरीर में जैसे ककुभ सर्वोच्च है, वैसे ये सर्वोच्च हैं। ये जगत्कारण एवं रक्षक हैं और जल-तत्त्व के पोषक हैं ॥२०॥

ये अग्नि सब अन्नों के स्वामी हैं। ये क्रान्तदर्शी एवं धनों के शिर हैं ॥२१॥

हे अग्नि ! तुम्हें जल से अथर्वा ने मथा और सभी ऋत्विजों ने मथा ॥२२॥

हे अग्नि ! जब तुम हवि-भक्षक अपनी जिह्वा निकालते हो, तब तुम यज्ञ के नेता होते हो। तुम सूर्यमण्डल में स्थित होते हो ॥२३॥

याज्ञिकों की समिधाओं से अग्नि ऐसे ही प्रवृद्ध होते हैं, जैसे माता गौ को देखकर बछड़ा अथवा उषा के आगमन पर चैतन्यता अथवा शाखा को देख ऊपर उड़ते हुए पक्षी ॥२४॥

हम क्रान्तदर्शी अग्नि की स्तुति करते हैं। अपनी वाणी से अग्नि को अर्पित स्तुतियाँ उसी प्रकार अन्तरिक्ष में जाती हैं, जैसे आदित्य की स्तुतियाँ ॥२५॥

अग्नि यज्ञ के होता हैं और सोम यागादि में स्तुत होते हैं। अनुष्ठानों से ये यज्ञस्थान में स्थापित होते हैं। भृगु महर्षि ने प्राणिहितार्थ इन्हें वन में स्थापित किया ॥२६॥

यजमानों के रक्षक अग्नि स्वकर्म में चैतन्य एव कुशल और पवित्र तथा घृत को मुख में ग्रहण करने वाले हैं। ये ऋत्विजों के द्वारा नित्य नवीन रूप में प्रकट किये जाते हैं। ये अपनी स्वर्गस्पर्शिनी दीप्तियों से प्रकाशित हैं ॥२७॥

यज्ञादि कर्मों में अनेक रूप से विचरणशील, हे अग्नि ! अंगिरा-वंशी ऋषियों ने तुम्हें जल और वनस्पतियों में खोजा। तुम बलपूर्वक अरणि-मन्थन से उत्पन्न होते हो। अतः तुम्हें बलपुत्र कहा जाता है ॥२८॥

हे ऋत्विजो ! अग्नि वरिष्ठ, जल के पौत्र एवं महान् फल वाले हैं। तुम इन्हें हवि दो और इनकी स्तुति करो ॥२९॥

हे अग्नि ! तुम सेचन-समर्थ एवं सर्वाधिपति हो। तुम यजमान के यज्ञफल दाता हो। यज्ञ कर्म के लिए उत्तर वेदी में प्रदीप्त होने वाले तुम यजमान को उत्कृष्ट-धन दो ॥३०॥

हे अग्नि ! तुम अद्भुत धन वाले और हवि से प्रसन्न होने वाले हो। ऋत्विज और यजमान तुम्हें हवि-वहन के लिए आहूत करते हैं ॥३१॥

हे यजमान ! हम तुम्हारी हवि को ग्रहण करने के लिए उन अग्नि देव को आहूत करते हैं, जो जलों के पौत्र, सावधान, कर्म प्रेरक, देवदूत, यज्ञ सम्पन्न कर्त्ता और कर्म तत्पर और अविनाशी हैं ॥३२॥

अविनाशी, दूतसदृश कार्यरत अग्नि को हम आहूत करते हैं। हमारे आह्वान को सुनकर प्रसन्न वे अपने रथ के द्वारा द्रुतगति से आगमन करते हैं ॥३३॥

यजमानों को धन देने वाले, दूत के समान कार्यरत रहने वाले, वसु आदि देवताओं वाले, श्रेष्ठ कर्मा अविनाशी अग्नि ऋत्विजों से आह्वान किये जाने पर द्रुतगति से यज्ञ में आते हैं ।।३४।।

हे अग्नि ! तुम बलोत्पन्न हो । गौओं से युक्त, ज्ञान वाले और अन्न के स्वामी तुम हमें धन दो ।।३५।।

हे अग्नि ! तुम दीप्तिमान, क्रान्तदर्शी, अनेकमुखी और सबको वास देने वाले हो । वेद वाणी से स्तुत्य तथा यज्ञ में सर्वप्रथम प्राप्त होने वाले तुम तेजस्वी हो ।।३६।।

हे अग्नि ! तुम विकराल द्रष्टा, दीप्तमान और राक्षस-हन्ता हो। तुम दिवस तथा उषाकाल के सब राक्षसों को नष्ट करो ।।३७।।

हे अग्नि ! श्रेष्ठ ऐश्वर्यवान्, ऋत्विजों से आहूत तुम हमारा कल्याण करो । तुम्हारा दान मगलकारी हो । तुम्हारी स्तुतियाँ हमारा कल्याण करें ।।३८।।

हे अग्नि ! तुम जिस मन से राक्षसों को मारते हो, उसी से हमारा कल्याण करो । तुम्हारी स्तुतियाँ कल्याणकारिणी हों ।।३९।।

हे अग्नि ! तुम जिस मन से शत्रुओं को मारते हो, उसी मन से बलवान् शत्रुओं के धनुष को प्रत्यंचारहित करो। हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्यों से सुख पाएँ ।४०।।

उपकारी ऐश्वर्यवान् अग्नि को मैं जानता हूँ । अग्नि को प्रज्वलित गौएँ अपने-अपने गोष्ठों में आती हैं । अश्व वेगवान् हो गमन करते हैं। हे अग्नि ! अपने स्तोताओं को धन दो ।।४१।।

जिन वासदायक प्रज्वलित अग्नि को अश्व प्राप्त करते हैं, गौएँ जिनको सेवा करती हैं, मेधावी जिनकी सेवा करते हैं, वे हमें ऐश्वर्य दें ।।४२।।

वे चन्द्र-सदृश अग्नि हमारे लिए धनद हैं । तुम मुख से घृतपान करने के लिए अपने दर्भों के समान आकार वाले हाथों को उठाते हो। तुम उक्थवाले यज्ञों के फलस्वरूप हमें धनवान् करो और हम स्तोताओं को अन्न दो ।।४३।।

हे अग्नि ! हम यज्ञ को स्तोमों से समृद्ध करते हैं, उसी प्रकार जैसे स्तुतियों से अश्व मेघ के अश्व को प्रवृद्ध किया जाता है । हम कल्याणमय यज्ञ-संकल्प को दृढ़ करते हैं ।।४४।।

हे अग्नि ! जैसे सारथी रथ चलाते हैं, वैसे ही आप सु-अनुष्ठित, कल्याणकारी हमारे यज्ञ को पूर्ण करो ।।४५।।

हे अग्नि ! हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न होकर, हमारे अभिमुख होओ, उसी प्रकार—जैसे सूर्य उदित होकर संसार के अभिमुख होते हैं ॥४६॥

दिव्यगुण वाले, श्रेष्ठ यज्ञ से सम्पन्न, ज्वालाओं से प्रदीप्त, घृतपान के इच्छुक, मन्थन के बल से उत्पन्न और देवों को बुलाने वाले अग्नि को ज्ञानसम्पन्न शास्त्रज्ञाता विप्र के समान मैं जानता हूँ ॥४७॥

हे अग्नि ! तुम आह्वनीय रूप वाले, निवासयुक्त और धनदान-द्वारा कीर्तिवान् हो। तुम हमारे आत्मीय और रक्षक हो तथा हितकर्ता हो; हमारे यज्ञ में आओ। दीप्तिमान तुम सबके प्रकाशक हो। हम तुम्हारे सखा सुख के निमित्त तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥४८॥

मन की एकाग्रता रूप जिस तप से ऋषियों ने अग्नि को उत्पन्न किया, उसी तप से मैं स्वर्गदाता अग्नि की स्थापना करता हूँ। विद्वान् उस अग्नि को, यज्ञ की सिद्ध करने वाला कहते हैं ॥४९॥

हे ऋत्विजो ! तृतीय स्वर्ग के ऊपर श्रेष्ठ फल के आश्रय-स्थान सूर्य-मण्डल में स्थान पाने के निमित्त हम अपने परिवारीजनों के साथ अग्नि की सेवा करते हैं। हम श्रेष्ठ स्वर्ग को प्राप्त करें ॥५०॥

श्रेष्ठ पुरुषों के पालनकर्त्ता संसार के रक्षक, सदा सावधान, दीप्तिमान और पृथिवी पर स्थापित अग्नि हमारे शत्रुओं को रौंद डालें ॥५१॥

अग्नि अत्यन्त वीर, हविग्राहक और सहस्रों इष्टकाओं से युक्त हैं। ये निरालस्य हो शीघ्र प्रदीप्त हों और त्रिलोकी में श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त हों। हम अग्नि की कृपा से स्वर्ग पाएँ ॥५२॥

हे ऋषियो ! अग्नि के समीप आओ और इन्हें सुदीप्त करो। हे अग्नि ! तुम हमें देवधान-मार्ग से ले जाओ। इस यज्ञ को ऋषियों ने वाणी और मन से विस्तृत किया है ॥५३॥

हे अग्नि ! तुम जागृत होओ, यज्ञ में यजमान से सुसंगत होओ, और यजमान का अभीष्ट पूरा करो। हे विश्वेदेवो ! यह यजमान स्वर्ग में चिरकाल तक रहे ॥५४॥

हे अग्नि ! तुम जिस पराक्रम से सदक्षिण-यज्ञ को प्राप्त होते हो, उसी पराक्रम से हमारे यज्ञ को प्राप्त करो। इस यज्ञ के स्वर्ग में पहुँचने के कारण हम भी स्वर्ग में जा सकेंगे ॥५५॥

हे अग्नि ! यह तुम्हारा उत्पत्ति-स्थान है। जिस गार्हपत्याग्नि से तुम उत्पन्न होते और कर्मप्रवृत्त होते हो, उसको जानकर कुण्ड में प्रतिष्ठित होओ और हमारे धन की वृद्धि करो ॥५६॥

माघ-फाल्गुन शिशिरऋतु के अवयव हैं और अग्नि के अन्तश्लेष हैं। द्यावापृथिवी, जल और ओषधियाँ हमें श्रेष्ठता दें। द्यावा-पृथिवी की अन्य यजमानों के द्वारा चयन की गयी इष्टकाएँ शिशिर-ऋतु का कर्म-सम्पादन करती हुई उस कर्म की आश्रिता हों। हे इष्टका ! तुम दृढ़ता से स्थित होओ ।।५७।।

हे इष्टका ! तुम वायुरूप में दीप्तिमती हो। विश्वकर्मा तुम्हें दिव्य लोक में स्थापित करें। तुम्हारे अधिपति सूर्य हैं। तुम यजमान के प्राण, अपान और व्यान को ज्योतित करो तथा वायु देवता के प्रभाव से अंगिरा के समान दृढ़ स्थापित होओ ।।५८।।

हे इष्टकाओ ! पूर्व इष्टकाओं से अनाक्रान्त तुम चयन-स्थान को पूर्ण करती हुई अवकाश को भर दो और दृढ़ता से स्थित होओ। तुम्हें इन्द्राग्नी, वृहस्पति ने स्थापित किया है ।।५९।।

स्वर्ग पतित तथा धान्य सम्पादन कर्त्ता ये जल संवत्सर में त्रिलोकी में सोम को सुपरिपक्व करते हैं ।।६०।।

समुद्र के समान व्यापक, सब महारथियों में श्रेष्ठ, अग्नि के स्वामी और धर्म तथा प्राणियों के पालनकर्त्ता इन्द्र को ही सब स्तुति प्रवृद्ध करती हैं। ६१।।

अग्नि महिमामयी अरणियों से उत्पन्न होते हैं और जैसे अश्व घास के लिए हिनहिनाता है, वैसे ये घृत के लिए शब्द करते हैं। वायु अग्नि की ज्वालाओं का वहन करते हैं। हे अग्नि ! उस समय तुम्हारा गमन-पथ कृष्णवर्ण वाला होता है ।।६२।।

हे स्वयमातृणे ! तुम वृष्टिदाता, आयुवर्धक आदित्य के हृदय में प्रकाशमाला को स्थापित करते हो। तुम द्यावापृथिवी-अन्तरिक्ष में प्रकाश भरने वाली हो ।।६३।।

हे स्वयमातृणे ! विश्वकर्मा तुम्हें स्वर्ग में स्थापित करें। तुम सब प्राणियों के प्राणापान, व्यान और उदान के निमित्त स्वर्ग लोक को धारण करने योग्य बनाओ। उसे हिंसित मत करो। सूर्य तुम्हारी रक्षा करें। उनकी रक्षा पाकर तुम अंगिरा के समान दृढ़ स्थापित होओ ।।६४।।

हे अग्नि ! तुम सहस्र इष्टकाओं के समान हो, इष्टकाओं के प्रतिनिधि हो और इष्टकाओं के लिए उपयुक्त हो। मुझे अनन्त फल दो ।।६५।।

षोडश अध्याय

ऋषि : परमेष्ठी, कुत्स, वृहस्पति, प्रजापति ।

हे रुद्र ! तुम्हारे क्रोध, वाणी और बाहुओं को नमस्कार ।।१।।

हे रुद्र ! पर्वतवासी तुम्हारा रूप कल्याणकारी एवं सौम्य है। उस पुण्यफलदाता मंगलमय रूप से हमारी ओर देखो ।।२।।

हे रुद्र ! तुम पर्वत पर या मेघों के अन्दर स्थित होते हो। तुम सर्व प्राणिरक्षक हो। तुम प्रलयार्थ जिस वाणी को ग्रहण करते हो, उसे विश्व कल्याणकर्त्ता बनाओ। हमारे पुरुष एवं पशु हिंसित न हों।।३।।

हे कैलाशपति ! हम मंगलमयी वाणी से तुम्हें स्तुति करते हैं। संसार हमारे लिए आरोग्यप्रद एवं श्रेष्ठ मन वाला हो ।।४।।

हे देवहितैषी, सर्वरोग नाशकर्ता रुद्र ! आप हमारे शत्रु सर्पादि तथा राक्षसादि को दूर करें ।।५।।

सूर्यरूप में प्रत्यक्ष होने वाले रुद्र उदयकाल में प्राणियों के कर्म का विस्तार करते हैं। हम इनके क्रोध को शान्त रखने में प्रयत्नशील हैं ।।६।।

विष धारण करने से इनका कंठ नीला है। आदित्यरूप में ये उदय-अस्त होते हैं। इनके दर्शन गोप तथा पनिहारियाँ भी करती हैं। ये रुद्र हमारा कल्याण करें ।।७।।

नीलकण्ठ, सहस्रनेत्र और सेचन समर्थ, पर्जन्यरूप रुद्र को हमारा नमन। रुद्र के अनुचरों को भी नमन ।।८।।

हे रुद्र ! धनुषकोटियों पर चढ़ी प्रत्यंचा को उतार लो और बाणों का भी त्याग करो ।।९।।

इन जटाधारी रुद्र के धनुष की प्रत्यंचा उतर जाय और तरकस बाणों से खाली हो जाय। इनके बाण दिखाई न पड़ें और खड्ग का म्यान भी खाली हो जाय। हमारे रुद्र हथियारों को पूर्णरूप से त्याग दें ।।१०-११।।

हे रुद्र ! अपने हाथों के धनुष-बाण को उपद्रव-रहित रखो। हमारा सर्वतः पालन करो ।।१२।।

हे सहस्रनेत्र रुद्र ! तुम अपने धनुष की प्रत्यंचा उतार दो, बाणों के फलक फेंक दो और हमारे लिए कल्याणकारी तथा श्रेष्ठ मनवाले होओ ।।१३।।

हे रुद्र ! तुम्हारे धनुष पर चढ़े बाण को नमन। तुम्हारी दोनों

भुजाओं और शत्रु-नाश में समर्थ धनुष को हमारा नमन ।।१४।।

हे रुद्र! हमसे बड़े, छोटे, हमारे बालक, युवक, गर्भस्थ शिशु, हमारी माता तथा हमारे शरीर को हिंसित न करो ।।१५।।

हमारे पुत्र-पौत्र और हमारी आयु को नष्ट न होने दो । हमारी गौओं, अश्वों, वीरों को मत मारो । हवियुक्त हो हम तुमको नित्य पुकार रहे हैं ।।१६।।

हिरण्मयबाहु, सेनानायक, दिक्स्वामी, पशुपालक, तेजस्वी, पीतवर्ण, उपवीतधारी और गुणवान् मनुष्यों के स्वामी रुद्र को हमारा नमस्कार ।।१७।।

लोहितवर्ण, विश्वकर्मा, वनस्पति-पालक, भूमण्डल-विस्तारक, जीव-पोषक, श्रेष्ठ मन्त्रदाता, ओषधि-पालक, संग्राम में शत्रुनाशक; पंक्तिबद्ध सेनाओं के पालक और पंक्तिबद्ध सेनाओं (तीन अश्व, पाँच पैदल, एक रथ, एक हाथी वाली टुकड़ी पंक्ति कही जाती है) के रक्षक रुद्र को नमस्कार है ।।१८।।

हमारी रक्षा के निमित्त कान तक धनुष खींचने वाले, वीर सेनाओं के अधिपति एवं पालक, उपद्रवी दुष्टों पर अग्नि-प्रहारक, अपहरणकारी चोरों के नियन्ता और वनों के पालक रुद्र को हमारा नमन ।।१९।।

वृषभ पर बैठने वाले पशुओं के लिए व्याधि रूप, अन्नों के स्वामी संसार शासक; जगत्पालक, पाप से बचाने वाले, जनपालन-कर्त्ता और श्रेष्ठ कर्मवालों के रक्षक रुद्र को नमन ।।२०।।

वंचकों के द्रष्टा, गुप्तचरों के नियन्ता, उपद्रवियों के रोधक; वधिकों कोजानने वाले और दस्युओं के शासक रुद्र को नमस्कार है ।।२१।।

ग्रामचारी तथा काननचारी दोनों के अन्तःकरणवासी, परसम्पत्ति-हारियों के शासक और पापियों के भयभीत करने वाले तथा दमन करने वाले रुद्र को नमन ।।२२।।

पापियों के दमन करने के लिए बाण चलाने वाले, जाग्रतों एवं निद्रितों के भी हृदय में स्थित रहने वाले और वेगयुक्त गतिवाले रुद्र को प्रणाम ।।२३।।

सभारूप, सभापति रूप, अश्वरूप-अश्वपति रूप तथा संग्राम में स्थित हो प्रहार करने वाले रुद्र को हमारा नमस्कार है ।।२४।।

देवों के अनुचर, गणों के अधिपति, समूहों और जातिसमूहों के अधिपति, विविध रूपवाले तथा विश्वरूप वाले रुद्र को नमन ।।२५।।

सेनारूप, सेनापति रूप, रथीरूप, रथहीन रूप रथियों और सारथियों

के हृदय में स्थित रहने वाले सूक्ष्म रूप वाले रुद्र को हमारा नमन ।।२६।।

शिल्प विद्या के ज्ञाता, रथ-निर्माण विद्या के ज्ञाता और मृत्तिका के पात्र बनाने वाली कला के ज्ञाता रुद्र को हमारा नमस्कार है ।।२७।।

सम्पूर्ण विश्व के स्रष्टा, दुःखनाशक, पापनाशक, नीलकण्ठ तथा मेघ सहित आकाश में स्थित होने वाले रुद्र को हमारा नमस्कार ।।२८।।

जटाजूटधारी, मुंडित केश धनुर्धारी, पर्वत पर शयन करने वाले, सर्वान्तिर्यामी विष्णु रूप, शत्रुओं में व्याप्त और यज्ञ तथा सूर्यमण्डल में वास करने वाले रुद्र को नमस्कार ।।२९।।

अल्प शरीरी, वामनरूप धारी, प्रौढ़ांग, वज्रांग, विद्याविनयसम्पन्न, पाण्डित्यपूर्ण व्यवहार करने वाले तथा सर्वाग्रगण्य सर्वप्रमुख रुद्र को नमन ।।३०।।

विश्वव्यापक, गतिशील, जलरूप में प्रवहमान, आत्मरूप और नदी एवं द्वीप में वर्तमान रुद्र (परमात्मा) को बारम्बार नमन ।।३१।।

ज्येष्ठरूप, कनिष्ठ रूप, उत्पन्न होने वाले और सृष्टिनाश के पश्चात् सन्तान रूप में उत्पन्न होने वाले रुद्र को नमन ।।३२।।

मर्त्यलोक के प्राणियों में वर्तमान, मंगल कार्यों में वर्तमान, पापियों के नाशकर्त्ता यमरूप, परलोकवासी प्राणी के सुख में वर्तमान, यश-प्रचार के कारणरूप, प्राणियों के जन्म-मरण-बन्धन को छुड़ाने वाले और धान्यादि में विद्यमान रुद्र को प्रणाम ।।३३।।

वन-वृक्ष-तृण-पल्ली में विद्यमान, ध्वनि-प्रतिध्वनि में विद्यमान, सेनापंक्ति में विद्यमान, गमनशील रथ-पंक्ति में विद्यमान और वीरों और शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण करने वाले शस्त्रास्त्रों में विद्यमान ईश्वर रूप रुद्र को नमन ।।३४।।

शिरस्त्राण एवं तनुत्राणधारी, रथ तथा हाथी के हौदे में विद्यमान, प्रसिद्ध एवं प्रसिद्ध सेना के स्वामी, और रणभेरी में विद्यमान देवता रुद्र को नमन ।।३५।।

स्वपक्ष के वीरों के रक्षक रुद्र को नमस्कार। बिचारशील विद्वान्, खड्ग, तरकस, बाण धारक त्रिशूलादि आयुधधारक और धनुष चलाने में कुशल रुद्र देव को नमस्कार ।।३६।।

ग्राम के क्षुद्र मार्ग में, राजमार्ग में, दुर्गममार्ग में, पर्वत के निम्न भाग में, सरोवर में, जल में और पोखर में स्थित रुद्र को नमस्कार ।।३७।।

कूप गतं, अत्यन्त प्रकाश, घोर अन्धकार, धूप, मेघ वृष्टिधारा

में और वृष्टि रोकने में स्थित रुद्र को प्रणाम ।।३८।।

वायु के प्रवाह में, प्रलय रूप पवन में वास्तुकला में स्थित रुद्रदेव तथा वास्तुग्रह के पालक रुद्रदेव को नमस्कार ।।३९।।

कल्याणमयी वेदवाणी को नमस्कार। प्राणिपालक रुद्र को नमस्कार। शत्रु को सामने से मारने वाले तथा शत्रु को दूर से मारने वाले रुद्र को प्रलयंकारी रुद्र को, अत्यन्त हननशील हरितकेश रुद्र को नमस्कार। वृक्ष रूप वाले तथा संसार सागर से पार लगाने वाले परमपिता रुद्र को नमस्कार ।।४०।।

इहलोक एवं परलोक के सुखदाता, भक्तों के कल्याणकर्त्ता कल्याण-रूप रुद्र के लिए नमस्कार ।।४१।।

समुद्र क इस-उस तट और मध्य में वर्तमान, समुद्र नौका में विद्यमान तीर्थादि में विद्यमान, जल के किनारे पर विद्यमान, समुद्र के फेन में विद्यमान और कुशादि में विद्यमान रुद्र को नमस्कार ।।४२।।

नदी के रेत में, नदी के प्रवाह में, नदी के भीतर कंकरादि में, स्थिर जल में विद्यमान, जटाजूटधारी रुद्र को नमन। शरीर में अन्तर्यामी रूप से स्थित, पृथिवी में तथा जल प्रवाह में विद्यमान रुद्र को नमस्कार है ।।४३।।

गौओं के चरने के स्थान में, गोष्ठ में, शय्या में, गृहों में, हृदय में, दुर्गम रथ में और पर्वतकन्दरा और गहन जल में विद्यमान रुद्र को नमस्कार ।।४४।।

सूखे काष्ठ में, हरे पत्तों में, पृथिवी की धूलि में, पुष्पगन्ध में, तृणों में, उर्वरा भूमि में और प्रलयकालाग्नि में स्थित रुद्र को नमस्कार ।।४५।।

पूर्ण रुद्र के लिए नमस्कार। पतितपत्तों में तथा पत्रकीटों में विद्यमान के लिए नमन। हे रुद्र ! तुम सृष्टि-उत्पत्ति के उद्यम वाले, त्रिविध ताप के उत्पत्तिकर्त्ता हो, तुम्हें हमारा प्रणाम। जो अग्नि, वायु, वर्षा, सूर्य के द्वारा संसार का पालन करते हैं, उन रुद्र देव को हमारा नमस्कार ।।४६।।

हे रुद्र ! तुम पापियों की दुर्गति करने वाले, सोमपोषक, नील-लोहित वर्णवाले हो। हमारे पशुओं को भय मत दो। प्रजाओं और पशुओं को हिंसित न करो, उन्हें रोगहीन बनाओ, सबका कल्याण करो।।४७।।

हम जटाधारी रुद्र के प्रति अपनी मति अर्पित करते हैं, जिससे हमारे पशु-मनुष्यों का कल्याण हो और इस ग्राम के मनुष्य निरुपद्रव हों ।।४८।।

हे रुद्र ! अपनी कल्याणकारी शक्ति से हमारा जीवन सुखमय करो ।।४६।।

रुद्र के आयुध और उनका क्रोध हमको न सताएँ । हे इच्छित फल-दाता रुद्र ! इस यजमान के भयों को दूर करो और हमारे पुत्रादि को सुख दो ।।५०।।

हे शिव ! तुम कल्याणकारी हो । तुम हमारे लिए शान्त और श्रेष्ठ मन वाले होओ । तुम्हारे आयुध हमारे शत्रुओं और दुष्टों पर पड़ें ।।५१-५२।।

हे भगवान् ! तुम अपने सहस्रों आयुधों के मुख को हमारी ओर न करो ।।५३।।

जो रुद्र पृथिवी पर वास करते हैं, उनके आयुध हमसे दूर रहें ।।५४।।

नील कंठ, उज्ज्वलकंठ, जो रुद्र स्वर्गाश्रित हैं, उन सभी के धनुषों को हम अपनी ओर से दूर करते हैं ।।५५।।

सर्वभूताधिपति, शिखाहीन मुंडित शिर वाले अथवा जटाजूट वाले जो रुद्र हैं. उनके आयुध हमसे सहस्र योजन दूर जाकर गिरें ।।५६-५९।।

श्रेष्ठ मार्गों के स्वामी, उत्तम मार्गों के रक्षक, अन्न के धारक और जीवन-पर्यन्त संग्राम में रत रुद्रों के आयुधों को हम स्वर्ग से सहस्रयोजन दूर डालते हैं ।।६०।।

जो हाथों में ढाल-तलवार धारण करते हैं, उन रुद्र के आयुधों को हम स्वयं से सहस्र योजन दूर करते हैं ।।६१।।

अन्न-सेवन करने में रुद्र प्राणियों को अधिक ताड़ना देते हैं और जल-दुग्धादि पीते मनुष्यों को रोगादि से ग्रस्त करते हैं । हम उनके आयुधों को स्वयं से सहस्र योजन दूर करते हैं ।।६२।।

जो रुद्र सब दिशाओं में आश्रय लिये हुए हैं, उन रुद्र के सब आयुधों को मन्त्र-बल से हम सहस्र योजन दूर करते हैं ।।६३।।

स्वर्ग में विद्यमान रुद्र के बाण वर्षारूप हैं । उन्हें हमारा नमन । सब दिशाओं में हाथ जोड़कर तुम्हें हे रुद्र ! मैं नमस्कार करता हूँ । वे रुद्र हमारे रक्षक होकर कल्याण करें ।।६४।।

जो रुद्र पृथिवी पर विद्यमान हैं, अन्न जिनके बाण हैं उन्हें सब दिशाओं में हाथ जोड़कर नमन । वे हमको कल्याणकारी हों ।।६५-६६।।

सप्तदश अध्याय

ऋषि : मेघातिथि, लोपामुद्रा, भरद्वाज, विश्वकर्मा।

हे प्रसिद्धदाता मरुद्गण ! तुम बल के कारण रूप हो। हमें श्रेष्ठ गौएँ, जल और दुग्ध रस दो। हे अग्नि ! तुम हवि-भोग करो। हे अग्नि ! तुम्हारा क्रोध उस मनुष्य के पास पहुँचे, जिससे हम द्वेष करते हैं ।।१।।

हे अग्नि ! ये इष्टकाएँ तुम्हारी कृपा से मुझे अभीष्ट फल देने वाली गौ के समान हों ।।२।।

हे इष्टके ! तुम सत्यवृद्धिकर्त्री ऋत्-रूप हो। तुम हमें घृत-मधु से सींचने वाली सुशोभिता एवं अभीष्ट देने वाली होओ ।।३।।

हे अग्ने ! जलशैवाल द्वारा मैं तुम्हें सब ओर से लपेटता हूँ। तुम मेरे लिए शोधक और कल्याणकारिणी होओ ।।४।।

हे अग्नि ! गर्भ के जरायु के समान शैवाल द्वारा मैं तुम्हें सब ओर से लपेटता हूँ। तुम हमें शुद्ध करने वाले और मंगलकारी हो ।।५।।

हे अग्नि ! तुम पृथिवी पर वेत की शाखा का आश्रय लो। तुम जलों के तेज हो। तुम जलों के साथ यहाँ आओ। हमारे इस यज्ञ को सफल बनाओ ।।६।।

हे अग्नि ! तुम्हारी ज्वालाएँ हमारे विरोधियों को सन्तप्त करें। तुम हमारे लिए शोधक और कल्याणकारी होओ ।।७।।

हे दिव्यगुण अग्नि ! तुम दीप्तिमती ज्वालाओं के समूह रूप हो। अतः आनन्द रूप होकर देवताओं का आह्वान एवं भजन करो ।।८।।

हे दिव्य अग्नि ! हमारे यज्ञ में देवों को बुलाओ और हमारी हवियाँ उन्हें प्राप्त कराओ ।।९।।

जैसे उषाकाल संसार को शोभा प्रदान करता है, वैसे पूर्णाहुति के इच्छुक, अजर, गतिमान्, शत्रुहन्ता अग्नि अपने तेज से संसार को शोभित करते हैं। ऐसे अग्नि को हम प्रदीप्त करते हैं ।।१०।।

सब रसों को खींचने वाले अग्नि की ज्वालाओं को नमस्कार। हे अग्नि ! तुम्हारी ज्वालाएँ अन्यों को संतप्त करें। हमें तो तुम पवित्र करने वाले और कल्याण देने वाले होओ ।।११।।

जठराग्नि रूप से मनुष्यों में विद्यमान, वडवाग्नि रूप से समुद्र में विद्यमान, बर्हिरूप से ओषधियों में विद्यमान, दावानल रूप से वृक्षों में वर्तमान, सूर्य रूप से स्वर्ग में वर्तमान अनेक रूप वाले अग्नियों को

पृथक्-पृथक् दी गयी आहुतियाँ स्वाहुत हों ।।१२।।

स्वाहाकार के बिना ही हविग्रहण करने वाले देवता इस यज्ञ के मधु-घृत रूप हवि को स्वयं ग्रहण कर लें ।।१३।।

जो प्राणादि देवता इन्द्रादि देवों में प्रधान हैं, जिनके बिना शरीर सचेष्ट नहीं रहता, वे प्राण न तो स्वर्ग में हैं और न पृथिवी पर हैं, बल्कि प्रत्येक इन्द्रिय में हैं ।।१४।।

हे अग्नि ! तुम प्राणापान के तथा बल के देने वाले और कल्याण-कारी हो । तुम्हारे आयुध हमसे भिन्न व्यक्तियों को सन्तप्त करें ।।१५।।

यह अग्नि यज्ञ के विघ्नकर्त्ताओं को अपने तीक्ष्ण तेज से भगा दें और हमें धन प्रदान करें ।।१६।।

सर्वद्रष्टा, परमेश्वर सब प्राणियों के पालक एवं संहारक भी हैं, वे पहले एक रूप धारण करके फिर अनेक रूप धारण करने के लिए माया के विकार वाले देहों में प्रविष्ट हो गये ।।१७।।

द्यावा-पृथिवी का निर्माण करते हुए वे परमेश्वर किस आधार पर टिके थे ? जैसे मृत्तिका से घट-पटादि बनते हैं, वैसे ही प्राणियों की रचना परमेश्वर ने किस पदार्थ से की ।।१८।।

सब ओर देखने वाले, सब ओर भुजाओं और चरणों वाले अद्वितीय परमात्मा में द्यावापृथिवी को अधिष्ठान रहित होकर ही प्रकट किया । उन्होंने अनित्य पञ्चभूतों के संयोग से बिना उपादान साधन के ही विश्व की रचना की ।।१९।।

वह वन किस प्रकार का था, वह वृक्ष कौन-सा है, जिस वन और वृक्ष से द्यावा-पृथिवी को विश्वकर्मा परमेश्वर ने अलंकृत किया ? हे विद्वानो ! सब भुवनों के धारणकर्त्ता विश्वकर्मा ने जो स्थान निश्चित किया, उस पर मनन करो, उसको पूछो मत ।।२०।।

हे विश्वकर्मा ! तुम स्वधा-रूप हवि ग्रहण करके यजमान को उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणी के धाम प्रदान करो और यजमान की हवि से प्रवृद्ध होते हुए स्वयं भजन करो क्योंकि तुम्हारा भजन करने में कोई मनुष्य समर्थ नहीं है । तुम्हीं इस यजमान को हवि-प्रदान की शिक्षा दो ।।२१।।

हे विश्वकर्मा ! मेरे द्वारा प्रदत्त हवि से प्रसन्न हुए तुम मेरे यज्ञ में पृथिवी एवं स्वर्ग के प्राणियों को मेरे अनुकूल कर दो । हमारे यज्ञ में इन्द्र हमें आत्म-ज्ञान का उपदेश करें ।।२२।।

हम यज्ञ में सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का आह्वान करते हैं । वे विश्व के

कल्याणकर्त्ता प्रीतिपूर्वक हमारी आहुतियाँ ग्रहण करें ।।२३।।

हवि-द्वारा प्रवृद्ध होने वाले हे विश्वकर्मा ! तुमने इन्द्र को विश्व रक्षक बनाया । उन इन्द्र को जैसे प्राचीन ऋषियों ने आह्वान किया था, वैसे हम भी उनका आह्वान करते हैं ।।२४।।

प्राचीन ऋषियों ने द्यावा-पृथिवी के अन्तर्देशों को सुदृढ़ किया और मन के द्वारा ईश्वर ने द्यावा-पृथिवी का विस्तार किया तथा उसको दृढ़ करके वृत्र को उत्पन्न किया ।।२५।।

परमपिता परमात्मा सर्वद्रष्टा और सबके मनों को जानने वाले हैं। उन्होंने सप्तर्षियों को उत्पन्न किया ।।२६।।

हमारे पिता विश्वकर्मा परमेश्वर हमारे उत्पन्न करने वाले; विधाता और सबके धारक हैं, सर्वज्ञ हैं । वे एक हैं; किन्तु देवों के रूप में अनेक नाम वाले हैं । प्रलय काल में सब लोक उन्हीं में विलीन हो जाते हैं ।।२७।।

ईश्वर के द्वारा उत्पन्न किये गये सप्तर्षियों ने प्राणियों की रचना करते हुए उन्हें जल-रस तथा कामनाओं का दान किया ।।२८।।

हृदय में जो ईश्वर विद्यमान है, वह स्वर्ग, पृथिवी और देवों से भी दूर है । सर्व प्रथम उत्पन्न जलों के गर्भ में कौन था, जिसके कारण ऋषि देवत्व को प्राप्त हुए ।।२९।।

जलों के गर्भ में ईश्वर ही धारित था । जिस गर्भ में सब देवता धारित होते हैं, उसका आधार क्या है ? उस अजन्मा परमात्मा की नाभि से ही सब प्राणी और देवता उत्पन्न हुए हैं ।।३०।।

जिस परमेश्वर ने यह संसार बनाया, वे प्राणियों के अन्तर में वास करते हैं । अहंकार के कारण वे दूर हो जाते हैं । उन्हें अज्ञान के कारण ही जाना जाता है । क्योंकि असत् कल्पना वाले अविचारक परलोक के मार्गों की कामना करते हुए सकाम यज्ञ करते हैं ।।३१।।

ब्रह्मांड में प्रथम देव आविर्भूत हुए । फिर अग्नि प्रकट हुए फिर ओषधियों को उत्पन्न करने वाला पर्जन्य हुआ । पर्जन्य ने उत्पन्न होकर जलों को गर्भ में धारण किया ।।३२।।

भयदाता, शत्रुहिंसक, गर्जनशील, सतत सावधान और अद्वितीय वीर इन्द्र एक साथ ही सौ सेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं ।।३३।।

हे पुरुषो ! शत्रु घर्षक; इन्द्र के बल से तुम शत्रु-सेना पर विजय पाओ और शत्रुओं को वश में करके उन्हें मार डालो ।।३४।।

शत्रुओं से संग्रामकर्त्ता इन्द्र यजमानों के यज्ञ में सोमपान के लिए

आते हैं। वे श्रेष्ठ धनुष वाले और इन्द्र बाण सहित शत्रु-सेना में जाते हैं। इन्द्र हमारे रक्षक हों ।।३५।।

हे बृहस्पते ! तुम राक्षस-हन्ता हो। तुम शत्रुओं को एवं शत्रु सेना को पीड़ित करते एवं हिंसित करते हुए हमारी रक्षा करो ।।३६।।

हे इन्द्र ! तुम शत्रु-बल को जानते हो, तुम बल से प्रवृद्ध, स्तुति-ज्ञाता एवं शत्रु तिरस्कर्त्ता हो। अपने रथ से यहाँ यज्ञ में आओ ।।३७।।

हे देवो ! इन्द्र को शत्रु-हनन के वीरकर्म में उत्साहित करो और इन्द्र के साथ तुम भी वेगवान् होओ ।।३८।।

अजेय, पराक्रमी, वज्रधारी इन्द्र राक्षसों को तिरस्कृत करते हुए हमारी सेना की रक्षा करें ।।३९।।

इन्द्र एवं बृहस्पति शत्रु विजयकर्त्री देव सेनाओं के पालन-कर्त्ता हैं। मरुद्गण देव सेना के आगे चलें सदक्षिण सोम आगे चले ।।४०।।

आदित्यगण, मरुद्गण, इन्द्र और वरुण का श्रेष्ठ बल देव-सेना का जय घोष करने वाला है ।।४१।।

हे इन्द्र ! अपने आयुध तीक्ष्ण करो। हमारे पुरुषों के मन को प्रसन्न करो। विजयशील रथों को सर्वत: फैलाओ ।।४२।

इन्द्र हमारे रक्षक हों। हमारे बाण शत्रु-तिरस्कारक हों। हमारे वीर शत्रु-वीरों से श्रेष्ठ हों। देवगण हमारी रक्षा करें ।।४३।।

हे व्याधि ! तू शत्रु-सेना-कष्टदायिनी एवं शत्रु सेनाचित्तमोहिका है। शत्रु-हृदयों को शोकतप्त कराके शत्रु घोर-अन्धकार में पड़े ।।४४।।

हे बाणरूप ब्रह्मास्त्र ! तुम अभिमन्त्रित हो। तुम हमारे द्वारा छोड़े जाकर एक साथ शत्रु-सेना पर गिरो ।।४५।।

हे सैनिको ! शत्रु सेना पर टूट पड़ो, विजय अवश्य होगी। इन्द्र तुम्हें विजय-सुख दें। तुम्हारी भुजाएँ पराक्रम-युक्त हों ।।४६।।

हे मरुद्गण ! शत्रु-सेना ओजस्विनी है, उसे मोह में डालो और युद्ध-निवृत्त करो ।।४७।।

जिस संग्राम में शत्रु के बाण घूम रहे हैं, उस संग्राम में इन्द्र, बृहस्पति और अदिति हमें विजय दिलाएँ और हमें सुख दें ।।४८।।

हे यजमान ! मैं तुम्हारे मर्म-स्थलों को कवचावृत करता हूँ। सोम तुम्हें मृत्युनिवारक कवच से ढकें, वरुण तुम्हें बलिष्ठ बनाएँ और देवता विजय दिलाएँ ।।४९।।

हे घृत-तृप्त अग्नि ! यजमान को श्रेष्ठता दो, इसकी धन-पुष्टि करते हुए इसे सन्तानवान् करो ।।५०।।

हे इन्द्र! यजमान को ऐश्वर्य दो, यह समानजन्मा शत्रुओं पर शासन करे। इसे तेजस्वी करो ॥५१॥

हे अग्नि ! हम यज्ञ में हवि प्रस्तुत करते हैं, तुम यजमान की वृद्धि करो । यह यज्ञादि कर्म करे और सब देवता यजमान को श्रेष्ठ बनाएँ ॥५२॥

हे अग्नि ! विश्वेदेवा तुम्हें ऊँचा करें । तुम ऊर्ध्वदीप्ति हो कल्याणकारी होओ ॥५३॥

यम, इन्द्र, वरुण, सोम, दिशाएँ हमारी कुबुद्धि को दूर करें। यजमान को धन-पुष्टि दें और यज्ञ रक्षक हों । हमारा यज्ञ समृद्ध हो ॥५४॥

जब देवता हवि ग्रहण करते और हवि-अन्न से अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, तो यज्ञ प्रवृद्ध होता है और यजमान तेजस्वी होता है ॥५५॥

देव, सेवक, यजमान अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ यज्ञानुष्ठान करता है । ऋत्विग् यज्ञ में देव-यजन-कामना से स्थित होते हैं ॥५६॥

जब चतुर्थ यज्ञ-अनुष्ठान होता है, तब संस्कारित हवि यज्ञार्थ प्राप्त होता है । उस समय उठे आशीर्वचन हमारा कल्याण करें ॥५७॥

सूर्य रश्मियों के साथ सूर्य प्राची दिशा में उदित होता है । सूर्य सब लोकों को देखता हुआ गमन करता है ॥५८॥

संसार-रचना करने में समर्थ सूर्य स्वर्गस्थ है और स्वतेज से द्यावा-पृथिवी अन्तरिक्ष को पूर्ण करता है, यज्ञ में स्तुत वह सूर्य तीनों लोकों के प्राणियों की कामना पूर्ति करता है ॥५९॥

समुद्र से जल ग्रहण करने वाला, वर्षा करने वाला, व्यापक, सूर्य पूर्व दिशा में उदित है और फिर आकाश में चढ़कर तीनों लोकों की रक्षा करता है ॥६०॥

रथियों में महारथी, सबके स्वामी और सत्यधर्म के पालक इन्द्र को सब स्तुतियाँ प्रवृद्ध करती हैं ॥६१॥

अग्नि देवों के लिए हवि वहन करें । देवों का आह्वान करें । यज्ञ सब देवों को हवि पहुँचाएँ ॥६२॥

हे इन्द्र ! मुझे अन्नदान दो और मेरे शत्रु को अधोगति को प्राप्त कराओ ॥६३॥

हे देवगण ! हमें उत्कृष्ट और शत्रुओं को निकृष्ट बनाओ । इन्द्र और अग्नि शत्रुओं को पतित करते हुए उन्हें विनष्ट करें ॥६४॥

हे ऋत्विजो ! उखा (पात्र) में स्थित अग्नि को हाथों में लेकर चिति अग्नि के साथ स्वर्ग में जाकर देवों के साथ निवास करो ॥६५॥

हे उखा स्थित अग्नि ! तुम मेधावी हो। तुम चिति अग्नि के साथ स्थित हो। तुम सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए हमारी सन्तान को बल दो ॥६६॥

मैं पृथिवी से उठा, अन्तरिक्ष में चढ़ा, फिर स्वर्ग में कल्याणमय पृष्ठ देश पर पहुँच ज्योतिमण्डल को प्राप्त हुआ ॥६७॥

जो विद्वान् विश्वधारक यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, वे समस्त शोकों से शुभ स्वर्ग में गमन करते एवं सुखी होते हैं ॥६८॥

हे अग्नि ! तुम यजमानों के प्रमुख हो और देवों-मनुष्यों के नेत्र हो। यजमान तुम्हारी कृपा से सुखपूर्वक स्वर्ग लोक को प्राप्त करें ॥६९॥

दिन और रात्रि सुसंगत हो, यज्ञ से अग्नि को तृप्त करते हैं। यज्ञ के फल रूप धन देने वाले देवता अग्नि को धारण करते हैं ॥७०॥

हे सहस्राक्ष अग्नि ! तुम्हारे सहस्रों प्राण और सहस्रों कान हैं। तुम सहस्रों सम्पत्तियों के अधिकारी हो। हम तुम्हें हवि देते हैं। तुम्हें दी गयी आहुति स्वाहुत हो ॥७१॥

हे अग्नि ! तुम गरुड़ के समान हो अतः पृथिवी पर स्थित होओ और तेज से अन्तरिक्ष को पूर्ण करो। अपनी सामर्थ्य से स्वर्ग और दिशाओं को दृढ़ करो ॥७२॥

हे आहुत अग्नि ! तुम पूर्व दिशा में स्थित हो और हे विश्वेदेवो ! तुम इस स्थान में अग्नि के साथ स्थित होओ ॥७३॥

सविता देव की वरणीय, विचित्र, गति को मैं ग्रहण करता हूँ। कण्वगोत्री महर्षि ने सविता देव की वाणी रूपिणी पयस्विनी गौ का दोहन किया था ॥७४॥

हे अग्नि ! स्वर्ग में जन्मी विद्युत रूपिणी तुम्हारे लिए हम हवि-विधान करते हैं। तुम चिति रूप में स्थित हो, मैं तुम्हारे लिए हवि देता हूँ ॥७५॥

हे युवकतम अग्नि ! तुम ज्वालाओं से प्रदीप्त हो सुप्रवृद्ध होओ। हम तुम्हें हवि देते हैं ॥७६॥

हे अग्नि ! अश्वमेध के अश्व को जैसे ब्राह्मण तथा यजमान यज्ञ-संकल्प से प्रवृद्ध करते हैं वैसे ही इस यज्ञ में हम तुम्हें स्तुतियों से प्रवृद्ध करते हैं ॥७७॥

मैं घृताहुति से चिति में स्थित इस अग्नि को प्रसन्न करता हूँ। इस यज्ञ में यज्ञ प्रवर्धक देवताओं में विश्वनियन्ता के निमित्त हवि प्रदान करता हूँ ॥७८॥

हे अग्नि तुम्हारी सात समिधाएँ और सात जिह्वाएँ हैं। तुम्हारे द्रष्टा सात ऋषि हैं। सात होता अग्निष्टोमादि सात यज्ञों से तुम्हें प्रवृद्ध करते हैं। सात चिति तुम्हारे उत्पत्ति-स्थान हैं। तुम्हारे निमित्त दी हुई आहुति स्वाहुत हो ॥७९॥

यज्ञ-रक्षक मरुद्गण हमारे यज्ञ में आएँ। उनको दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो ॥८०॥

इस तथा अन्य पुरोडाशों को देखने वाले, समानदर्शी, चौदह मरुद्-गण इस यज्ञ में आएँ। उनकी प्रसन्नता के लिए दी गयी ये आहुति स्वाहुत हों ॥८१॥

सत्यरूप, सत्य में स्थित, इक्कीस मरुद्गण यज्ञ में आएँ। उनको दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो ॥८२॥

सत्यजित्, शत्रु सेना के नेता, श्रेष्ठ सेनाओं वाले, समीपजनों के मित्र अट्ठाईस मरुद्गण हमारे यज्ञ में आएँ। उनको दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो ॥८३॥

समानदर्शी, सुसंगत, समान आभरण वाले पैंतीस मरुद्गण यज्ञ में आएँ। उनको दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो ॥८४॥

पुरोडाशादि के सेवन-कर्त्ता, विजयशील बयालीस मरुद्गण इस यज्ञ में आएँ, उनको दी गयी आहुति स्वाहुत हो ॥८५॥

मरुद्गण रूपी देव-सेना इन्द्र की अनुगामिनी है, उसी प्रकार सब प्रजाएँ इस यजमान की अनुगामिनी हों ॥८६॥

हे अग्नि! इस यजमान की घृतयुक्त स्रुवा से हवि को प्रसन्नता से ग्रहण करो। तुम सर्वतः गमन करने वाले हो। इस यज्ञशाला में प्रवेश करो ॥८७॥

घृत अग्नि का उत्पत्ति कारक है, तीक्ष्ण करने वाला है और अग्नि घृताश्रित है अतः मैं अग्निमुख को घृत से सींचता हूँ ॥८८॥

घृतरूप समुद्र से मधुर-तरंगें उठकर अग्नि में पहुँच अविनाशी रूप को प्राप्त करती हैं। घृत का दूसरा नाम देवताओं की जिह्वा है। यह घृत अमृत नाभि है ॥८९॥

हम यज्ञ में 'घृत' नाम का उच्चारण करते हैं। घृत से यज्ञ को धारण करते हैं। विद्वान् घृत की स्तुति को सुनें। यह घृत चार श्रृंग वाले यज्ञ को प्रकट करने वाला है ॥९०॥

इस यज्ञ के ब्रह्मा, होता, उद्गाता, अध्वर्यु; ये चार श्रृंग हैं। ऋक्, यजुः, साम, ये तीन चरण हैं। हविर्धान और प्रवर्ग्य; ये दो शिर हैं।

अनुष्टुबादि सात छन्द इसके सात हाथ हैं। तीन सवन ही इसके बँधने के तीन स्थान हैं। शब्दवान् पूज्य और दिव्य रूप वाला यह कामना वर्षक होकर मनुष्य लोक में व्याप्त है ॥९१॥

तीनों लोकों में स्थित (असुरो)प्राणियों के द्वारा छिपाये इस यज्ञफल रूप घृत को देवताओं ने गौओं में अनुमान किया। तब उसके एक भाग को इन्द्र तथा दूसरे को सूर्य ने प्रकट किया। उसके एक भाग को स्वधा रूप अन्न के रूप में ब्राह्मणों ने प्राप्त किया ॥९२॥

शत्रु और चोर से अपहरण न करने योग्य सैकड़ों पथों वाली वेद-वाणी (मन्त्र वाणी) हृदयाकाश से निकलती है और घृत-धारा के समान अविच्छिन्न रहती हुई अग्नि को प्राप्त करती है ॥९३॥

शरीरस्थ मन से पवित्र हुई वाणियाँ नदियों के समान प्रवाहित होती हुई अग्नि की स्तुति करती हैं। इस घृत की तरंगें स्रुवा से निकलकर अग्नि की ओर इस प्रकार दौड़ती हैं, जैसे व्याघ्र के भय से मृग दौड़ते हैं ॥९४॥

घृत की प्रवाहित धाराएँ स्रुवा से ऐसे वेग से निकलती हैं, जैसे वायु के योग से नदी में तरगें वेग से उठती हैं। और वे अग्नि को उसी प्रकार सींचती हैं, जैसे रणक्षेत्र में सैनिकों के बहाये पसीने भूमि को सींचते हैं ॥९५॥

घृत की धाराएँ अग्नि में गिरकर समिधाओं से मिलती हुई अग्नि में पहुँचती हैं। अग्नि उन धाराओं की बारम्बार इच्छा करते हैं ॥९६॥

घृत की धाराएँ वहीं जाती हैं, जहाँ सोमाभिषव होता है, जहाँ यज्ञ होता है। वे धाराएँ अग्नि में गिरकर अग्नि को प्रसन्न करती हैं ॥९७॥

हे देवो! श्रेष्ठ घृत एवं मधुर-घृत वाले यज्ञ में आओ। हमारे यज्ञ को स्वर्ग में ले जाओ। हमें धन और कल्याण दो ॥९८॥

हे अग्नि! जो परमदेवता समुद्र में, हृदय में और आयु में वर्तमान हैं, वे तुम्हें सब प्राणियों के आश्रय रूप बनाएँ। घृत की जो तरंगें जल में लायी गयी हैं, उनको मैं भक्षण करूँ ॥९९॥

अष्टादश अध्याय

ऋषि : देवगण, शुनःशेप, गालव, विश्वकर्मा, देवश्रव, आदि।

इस यज्ञ के फलस्वरूप देवगण मुझे अन्न दें तथा पवित्रता, ध्यान, संकल्प वेद-श्रवण की शक्ति, प्रकाश और स्वर्ग लोक प्राप्त कराएँ ॥१॥

यज्ञ के फल से मुझे प्राण, अपान, मानस-संकल्प, बाह्यज्ञान, वाणी-

सामर्थ्य, मन-चक्षु-श्रोत्र तथा ज्ञानेन्द्रिय-बल की प्राप्ति हो ।।२।।

मुझे ओज, बल, आत्मज्ञान, शरीर पुष्टि, अस्थियों और अंगों की दृढ़ता, आयु आरोग्य और प्रवृद्धता की यज्ञ से प्राप्ति हो ।।३।।

यज्ञ मुझे श्रेष्ठता, स्वामित्व, क्रोध, मधुर जल विजय, बल, महिमा, वरिष्ठता, दीर्घायु, वंशपरम्परा तथा अत्यधिक घृत-धान्य-गुण दे ।।४।।

यज्ञ फल से मुझे सत्य, श्रद्धा, धन, स्थावर-जंगम जगत्, महत्ता, क्रीड़ा, मोह, सन्तान और शुभ भविष्य की प्राप्ति हो ।।५।।

यज्ञ-फल के रूप में मुझे स्वर्ग, रोग तथा व्याधियों का अभाव, ओषधि, दीर्घायु, शत्रुओं का अभाव, अभय, यज्ञ, दान आदि धनों से युक्त कल्याणमय दिवस की प्राप्ति हो ।।६।।

निमन्त्रण-क्षमता, प्रजापालन शक्ति, धन-रक्षा-शक्ति, धैर्य, सब की अनुकूलता, मुझे यज्ञ-फल रूप में प्राप्त हों ।।७।।

यज्ञ से मुझे इहलौकिक एवं पारलौकिक सुख, प्रसन्नतादायक पदार्थ इन्द्रिय सुख और स्वस्थान प्राप्त हो ।।८।।

यज्ञ से मुझे अन्न, दुग्ध, घृत और मधु की प्राप्ति हो। मैं अपने बन्धुओं के साथ बैठकर भोजन करने वाला बनूं। मुझे यज्ञ से प्रियसत्य-वाली और शत्रु विजय सामर्थ्य प्राप्त हो ।।९।।

यज्ञ से मुझे धनों की पुष्टि और शरीर पुष्टि मिले। ऐश्वर्य, सन्तान, धन, और अन्न की प्राप्ति मुझे यज्ञ-फल रूप में हो ।।१०।।

यज्ञ से मुझे धन, भूमि, सुन्दर भविष्य, समृद्धि, ऋद्धि, कठिनता साध्य कार्यों में सफलता, मति और सुमति प्राप्त हो ।।११।।

यज्ञ के फलरूप में मैं ब्रीहि, धान्य, जौ, उड़द, तिल, मूँग, चना, काँगनी, चावल, सभा, नीवार, गेहूँ, मसूर आदि अन्नों को प्राप्त करूँ ।।१२।।

देवता यज्ञफल के रूप में मुझे पाषाण, श्रेष्ठ मिट्टी, छोटे-बड़े पर्वत, रेत, वनस्पति, सुवर्ण, लोहा, ताम्र, शीशा, राँगा की प्राप्ति कराएँ ।।१३।।

यज्ञफल के रूप में मुझे अग्नि, अन्तरिक्ष, ओषधियों की अनुकूलता प्राप्त हो। ग्राम्य-वन्य-पशु, धन, पुत्रादि से मैं सम्पन्न होऊँ ।।१४।।

यज्ञफल रूप में मुझे पशु-धन, गृह, सम्पत्ति, इच्छित पदार्थ प्राप्त हों और मेरी कामनाएँ पूर्ण हों ।।१५।।

अग्नि, इन्द्र, सोम, सविता, सरस्वती, बृहस्पति, मित्र, वरुण, धाता, त्वष्टा, मरुद्गण, अश्विनी-कुमार सब देवों की अनुकूलता मुझे यज्ञ के द्वारा प्राप्त हो ।।१६-१७।।

द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष, स्वर्ग लोक, इन्द्र, वर्षा, नक्षत्र, दिशाएँ, सब यज्ञ से मेरे अनुकूल हो जायें ।।१८।।

यज्ञ के फल रूप में सभी ग्रह अनुकूल हों ।।१६।।

आग्रयण, वैश्वदेव, ध्रुव, वैश्वानर, ऐन्द्राग्नि, महावैश्व देव आदि ग्रह यज्ञफल से मेरे अनुकूल हों ।।२०।।

यज्ञ के फलस्वरूप जूहू, चमस, वायव्य पात्र, द्रोण कलश, पाषाण, अभिषवण फलक, पवित्र आहवनीय वेदी, कुशाएँ, अष्टगृथ स्नान आदि मुझे प्राप्त हों ।।२१।।

यज्ञफल के रूप में अग्नि, घाम, सूर्य, अर्क. प्राणी, अश्वमध, पृथिवी, अदिति, दिति, द्यौ, शक्ति, दिशाएँ—ये सब मेरे अनुकूल हों ।।२२।।

व्रत, ऋतुएँ, तप, संवत्सर, रात-दिन, जंघा, घोंटू, वृहत्साम, रथन्तर साम—ये मेरे अनुकूल हों ।।२३।।

यज्ञ के फल के रूप में मुझे एक, तीन, पाँच, सात, नौ, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह सतरह, उन्नीस, इक्कीस, तेईस, पच्चीस, सत्ताईस, उनतीस, इकतीस और तैंतीस संवत्सर स्तोत्र प्राप्त हों ।।२४।।

यज्ञ के द्वारा मुझे चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अट्ठाईस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चवालीस और अड़तालीस स्तोम प्राप्त हों तथा बछड़ा, बछिया, बैल, गौ आदि भी मुझे प्राप्त हों, चार वर्ष की गौ, बन्ध्या गौ, गर्भ-घातिनी गौ, शकटवाहक बैल, नवप्रसूता गौ ये सब भी मुझे प्राप्त हों ।।२५-२६-२७।।

अन्नोत्पादन करने वाले चैत्रमास, जल-क्रीड़ादि रूप वैशाख मास, जलक्रीड़ाकारक ज्येष्ठमास, यज्ञरूप आषाढ़ मास, मात्रानिषेक सावन मास, तापकारक भादों मास, मोह उत्पन्न करने वाले आश्विन मास, पापनाशक कार्तिक मास, विष्णुरूप मार्गशीर्ष, जठराग्नि दीपक पौष-माघ मास और पालनकर्त्ता फाल्गुन मास के लिए दी गयी आहुतियाँ स्वाहुत हों। बारहों महीने की अधिष्ठात्री देवता प्रजापति के लिए दी गई आहुति स्वाहुत हो। हे प्रजापति अग्नि ! तुम अग्निष्टोमादि मन्त्रों से सबके नियन्ता हो, इस सखारूप यजमान के भी नियामक होओ। मैं वसोधारा से सींचकर वृष्टि के निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ ।।२८।।

यज्ञ के फल से आयुवृद्धि हो, प्राण रोगरहित हों, चक्षुज्योति वाले हों, कान और वाणी उत्कृष्टता को प्राप्त करें, मन स्वस्थ हो, आत्मा आनन्दित हो, और हम शास्त्रों से प्रीति करें। यज्ञ के प्रभाव से हमें परमज्योति ईश्वर की प्राप्ति हो, हम स्वर्ग को पायें। यज्ञ के प्रभाव से

ही स्वर्ग के पृष्ठ पर भी हम यज्ञ कर सकें। स्तोत्र तथा ऋक्, यजुः, वृहत् साम और रथन्तर साम यज्ञ के प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त करें। यज्ञ के प्रभाव से हम देवत्व प्राप्त कर मरणधर्म से रहित हो प्रजापति की प्रजा बनें। उक्त सभी के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ।।२६।।

अन्न की अनुज्ञा में वर्तमान हम जिस पृथिवी को वेदवाणी द्वारा अनुकूल करते हैं, उस पृथिवी में यह समस्त संसार समाहित है। सविता देव इस पृथिवी पर हमारी स्थिति दृढ़ करें ।।३०।।

इस यज्ञ में मरुद्गण, सभी गण, सभी गण-देवता, रुद्र और आदित्य गण तथा विश्वेदेवा आयें। अग्नियाँ सुदीप्त हों और हमें धनों की प्राप्ति हो ।।३१।।

हमारा अन्न समस्त दिशाओं और लोकों को पूर्ण करे। यज्ञ के धन का विभाग किये जाने पर सभी देवों के सहित अन्न हमारा पालन करे ।।३२।।

अन्न की अधिष्ठात्री देवता हमें दान की प्रेरणा दें। ऋतुओं-सहित अन्न सब देवों को यज्ञ में बुलाए। अन्न मुझे पुत्र-पौत्रादि-सम्पन्न करे और मैं अन्न से समृद्ध होकर सब दिशाओं को अपने वश में करूँ ।।३३।।

अन्न हमारे घरों में रहे। अन्न ही देवों को हवि से तृप्त करता है, मुझे भी पुत्र-पौत्रादि से तृप्त करे। मैं अन्न से पुष्टि पाकर सब दिशाओं को वश में करूँ ।।३४।।

हे अग्नि ! पार्थिव रस, जलों और ओषधियों से अपने आत्मा को सुसंगत करता हूँ। जल और ओषधियों से सिंचित होकर मैं अन्न का यजन करता हूँ ।।३५।।

हे अग्नि ! तुम पृथिवी में रस को धारण करो तथा ओषधियों, स्वर्ग एवं अन्तरिक्ष में भी रस की स्थापना करो। मेरे लिए दिशा-प्रदिशाएँ रसदायिनी हों ।।३६।।

सविता देव की प्रेरणा से, अश्विद्वय की बाहुओं और पूषा देव के हाथों से तथा सरस्वती के नियन्ता प्रजापति के नियमन में रहता हुआ मैं अग्नि के साम्राज्य से हे यजमान ! तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ ।।३७।।

सत्यरूप धाम वाले तथा पृथिवी के धारक अग्नि रूप गन्धर्व ब्राह्मण और क्षत्रियजाति की रक्षा करें। उनको दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो। मुद नाम्नी ओषधियाँ उस गन्धर्व नामक अग्नि की अप्सराएँ

हैं। वे ओषधियाँ हमारी रक्षा करें। उनको दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ।।३८।।

अहोरात्र को मिलाने वाले सूर्य रूप गन्धर्व की सोम स्तुति करते हैं। ये सूर्य ब्राह्मण क्षत्रियजाति की रक्षा करें। उनको दी गई ये आहुति स्वाहुत हो। आयुध नाम्नी मरीचि-रश्मियाँ उन सूर्य की अप्सराएँ हैं। वे हमारी रक्षा करें। उनको दी गई आहुति स्वाहुत हो ।।३९।।

सूर्य-रश्मियों से आभादान् चन्द्र रूप गन्धर्व ब्राह्मण-क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। उनको दी गई आहुति स्वाहुत हो। भेकुरि नामक नक्षत्र उनकी अप्सराएँ हैं। वे हमारी रक्षा करें, उनको दी गई आहुति स्वाहुत हो।।४०।।

वायु रूप गन्धर्व हमारी, ब्राह्मण-क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। उसको दी गई आहुति स्वाहुत हो। रस नामक जल इनकी अप्सराएँ हैं। जल हमारी रक्षा करें। उनको यह आहुति स्वाहुत हो ।।४१।।

स्वर्ग में गमनशील, प्राणिपालक यज्ञ रूप गन्धर्व ब्राह्मण क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यज्ञ देवता को दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। स्तावा-नाम्नी दक्षिण यज्ञ की अप्सराएँ हैं, ये हमारी रक्षा करें। यह आहुति उनके लिए स्वाहुत हो ।।४२।।

प्रजापालक मन रूप गन्धर्व हमारी ब्राह्मण-क्षत्रिय जाति की रक्षा करे। उसको दी गई आहुति स्वाहुत हो। एष्टि नामक ऋक्-साम की ऋचाएँ मन की अप्सराएँ हैं। वे हमारी रक्षा करें। उनको दी गई आहुति स्वाहुत हो ।।४३।।

हे प्रजापति! तुम स्वर्ग में वास करते हो और विश्वपालक हो। हमारी ब्राह्मण-क्षत्रिय जाति की रक्षा करो। प्रजापति को दी गई आहुति स्वाहुत हो ।।४४।।

हे वायु! तुम समुद्र जलों से आर्द्र रहते हो, नभ मण्डलवासी हो, पृथिवी को वर्षा से आर्द्र करते हो। दोनों लोकों को सुख देने वाले हो। हमें दोनों लोकों का सुख दो। हे वायु! तुम मरुद्गण रूप हो। तुम प्रकाश करो, जिससे हम दोनों लोकों का सुख पायें। हे वायु! तुम अन्नोत्पादक हो। हमारे अभिमुख वहन करते हुए प्रकाश करो और हमें दोनों लोकों का सुख दो ।।४५।।

हे अग्नि! सूर्यमण्डल में विद्यमान तुम्हारी दीप्ति स्वर्ग में विराजती है। उस दीप्ति से हमें तथा हमारी सन्तान को यशस्वी करो ।।४६।।

हे इन्द्राग्नी। हे वृहस्पति ! हे देवो ! तुम्हारा तेज सूर्य मण्डल मे गौओं और अश्वों में विद्यमान है। हमें भी अपने तेज से तेजस्वी बनाओ ।।४७।।

हे अग्नि ! हमारे ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को तेजस्वी करो। मुझमें सब कान्तियों से बढ़कर कान्ति की स्थापना करो ।।४८।।

हे वेदमन्त्रों से वन्दित वरुण ! हविदान करने वाले यजमान की अभीष्ट पूर्ति के लिए वेदमन्त्रों से मैं तुम्हारी स्तुति करता हुआ याचना करता हूँ। मेरे अभिप्राय को जानो। हमारी आयु क्षीण न हो और हम किसी प्रकार की क्षीणता प्राप्त न करें ।।४९।।

आदित्य देव के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। सूर्य के समान ही यह अग्नि है। मैं इसे सूर्य मण्डल में स्थापित करता हूँ। सूर्य को यह आहुति स्वाहुत हो। यह अग्नि स्वर्ग के समान है। मैं इसे स्वर्ग-ज्योति में स्थापित करता हूँ। यह आहुति स्वर्ग रूप अग्नि को स्वाहुत हो। देवों तथा तेजस्वी सूर्य को यह आहुति स्वाहुत हो ।।५०।।

स्वर्ग में उत्पन्न, धूम से प्रवृद्ध अग्नि को मैं घृत से सम्पन्न करता हूँ। हम इस अग्नि के द्वारा आदित्य लोक प्राप्त करें तथा उससे आगे दुःख शून्य लोक पायें ।।५१।।

हे अग्नि ! तुम्हारे पंख जरा रहित हैं। इन पंखों से ही तुम राक्षसों का नाश करते हो। उन पंखों से हमें उन पुण्य लोकों को प्राप्त कराओ जिनमें हमारे पूर्व पुरुष गये हैं ।।५२।।

हे अग्नि ! तुम चन्द्रमा के समान आह्लाददाता और श्येन के समान वेगवान् हो। तुम सत्य रूप यज्ञ से सम्पन्न हो, जठराग्नि रूप में शरीर के पोषक हो। तुम स्वमहिमा से भी महान् हो और ब्रह्म के पद पर स्थित हो। मैं तुम्हें नमन करता हूँ। मेरा अहित न हो ।।५३।।

हे अग्नि ! तुम स्वर्ग के मस्तक और पृथिवी की नाभि हो। तुम जलों और ओषधियों के सार, प्राणियों के जीवन, सर्वत्र व्याप्त, सबके आश्रय और स्वर्ग के मार्ग रूप हो। मेरा तुमको नमन ।।५४।।

हे सूर्यात्मक अग्नि ! तुम सब प्राणियों में मूर्धारूप से स्थित हो। तुम्हारा हृदय अन्तरिक्ष में और आयु जलों में है। द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष में कहीं भी जल हो, वहाँ से लाकर वर्षा करो। मेघ को विदीर्ण कर जल प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करो ।।५५।।

हे धन ! तुम यजमान की कामना रूप हो। इसके घर में आओ। यह यज्ञ भृगुओं और वसुओं के द्वारा सुसम्पादित है ।।५६।।

यज्ञकारक अग्नि हवि से तृप्त हो, अभीष्ट पूर्ण करें। यह हवि देवों को जाय ॥५७॥

हे ऋत्विजो ! तुम पुण्यात्माओं के धाम को जाओ। यह यज्ञ प्रजापति के प्रीत्यर्थ किया गया है। अतः जिस प्रजापति-लोक में पूर्व पुरुष गये हैं, तुम भी उसी में जाओ ॥५८॥

हे स्वर्ग ! अग्नि ने जिसे यज्ञ का फल दिया है, उस यजमान को मैं तुम्हें सौंपता हूँ। हे देवगण ! यज्ञ-समाप्ति पर यह यजमान तुम्हारे पास स्वर्ग में आयेगा ॥५९॥

हे देवगण ! तुम स्वर्ग में निवास करते हो, इस यजमान को और इसके रूप को जानो। यह देवयान मार्ग से स्वर्ग में तुम्हारे पास आयेगा ॥६०॥

हे अग्नि ! तुम सावधान और चैतन्य होकर यजमान की अभीष्ट पूर्ति करो। विश्वेदेवाओं के निमित्त यज्ञ करने वाला यह यजमान चिर-काल तक स्वर्ग में रहे ॥६१॥

हे अग्नि ! तुम जिस बल से सहस्र दक्षिणा और सर्व स्वदक्षिणा वाले यज्ञों को प्राप्त करते हो, उसी बल से यजमान को स्वर्ग में भेजो ॥६२॥

हे अग्नि ! स्रुवा, वेदी, कुशा और ऋचादि से युक्त इसयज्ञ को देवों के पास स्वर्ग तक पहुँचाओ ॥६३॥

विश्वकर्मात्मक हे अग्नि ! दीनों को दिये गये, जामाता-पुत्री-भगिनी, ब्राह्मणों को दिये गये, कूप-बावड़ी आदि का निर्माण आदि हमारे दानों को स्वर्ग तक पहुँचाओ ॥६४॥

यह अग्नि हमें उस स्वर्ग में स्थापित करे, जहाँ मधु, दुग्ध, दधि आदि की अक्षीण धाराएँ सतत बहती हैं ॥६५॥

जातवेदा, अर्चनीय, यज्ञ रूप, जल का निर्माता और अविनाशी अग्नि घृत की हवि चाहते हैं। घृत उनके नेत्र हैं, घृतान्न हवि उनका मुख है। वे आदित्य रूप और पुरोडाश रूप हैं ॥६६॥

मैं ऋग्वेद रूप अग्नि हूँ, यजुर्वेद रूप अग्नि हूँ, सामवेद रूप अग्नि हूँ। चिति रूप अग्नि हूँ। हे अग्नि ! तुम हमें दीर्घायु करो ॥६७॥

हे इन्द्र ! तुम वृत्रहन्ता और शत्रुजेता हो, हम तुम्हारा पुनः-पुनः आह्वान करते हैं ॥६८॥

हे इन्द्र ! तुम अनेक बार आहत किये गये हो। हमारे समीपस्थ

शत्रु को पीस डालो। हे इन्द्र! प्रवृद्ध देव हिंसक वृत्र को मार डालो ॥६९॥

हे इन्द्र! युद्ध में हमारे शत्रुओं को हराओ। युद्धेच्छुक शत्रु को नीचा दिखाओ। हमको क्लेश देने के इच्छुक शत्रु को अन्धकार रूप नरक में डालो ॥७०॥

हे इन्द्र! तुम विकराल हो, तुम्हारी गति वक्र है। गर्जनशील तथा शत्रुदेह में दूर से आकर प्रविष्ट होने वाले वज्र से शत्रुओं को पीड़ित करो ॥७१॥

सर्वप्राणि-हितकारी अग्नि हमारी स्तुतियों को सुन दूर देश से आकर हमारी रक्षा करें ॥७२॥

अन्तरिक्ष में सूर्य रूप अग्नि, पृथिवी पर चिति रूप अग्नि, वायु में पावकाग्नि, विश्व में प्रकाशमान वैश्वानराग्नि, विद्युत् रूप अग्नि, ओषधियों में व्याप्त अग्नि—ये सभी जानने योग्य हैं। अग्नि दिन और रात्रि में हमारी रक्षा करें ॥७३॥

हे अग्नि! तुम्हारी रक्षा में हम अन्न प्राप्त करें, सदा अक्षीण यश पायें और सब अभीष्ट पायें ॥७४॥

हे अग्नि! खुले हाथ से दान देने वाले, तुमको यज्ञ-तत्पर हम नमस्कार करते हैं। हम तुम्हें एकाग्र मन से हविर्दान करते हैं। तुम हमारी हवि देवताओं तक पहुँचाकर उन्हें तृप्त करो ॥७५॥

लोकों में व्याप्त देवता, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, वृहस्पति और विश्वेदेवा हमारे इस यज्ञ को स्वर्ग में स्थापित करें ॥७६॥

हे तरुणतम अग्नि! हमारी स्तुतियाँ सुनो! यजमान के पुत्र-पौत्रादि कुटुम्ब के सब मनुष्यों की रक्षा करो ॥७७॥

एकोनविंश अध्याय

ऋषि : प्रजापति, भरद्वाज, आभूति, हैमवर्चिर, वैखानस, शंख।

हे सोम! तुम स्वादिष्ट, तीक्ष्ण, मधुर और अमृत-सदृश हो। तुम अश्विद्वय के निमित्त पकाये गये हो ॥१॥

जो सोम श्रेष्ठ हवि है, जो यजमान को सुखदायक है, उस संस्कृत सोम को हे ऋत्विजो! गौ-दुग्ध से मिश्रित करो ॥२॥

यह नीचे की ओर शीघ्रतापूर्वक जाता हुआ सोम वायु की पवित्र

से पवित्र होकर इन्द्र का प्रिय-मित्र बनता है ।।३।।

हे यजमान ! तुम्हारे इस सोम को सूर्य की पुत्री श्रद्धा शाश्वत धन के समान पवित्र करती है ।।४।।

हे सोम ! तुम दिव्य-गुण वाले हो अतः स्वरस से देवों को तृप्त करो। सोम ब्राह्मण-क्षत्रिय जाति के तेज को अपने रस से बढ़ाते हैं ।।५।।

जैसे कृषक प्रभूत जौ प्राप्त करने के लिए जौ को काटकर शीघ्र ही पृथक् करता है वैसे ही हे सोम ! तुम इस यजमान को शीघ्र ही भोज्य-पदार्थ प्रदान करो । यह यजमान हवि को लिये कुशासनस्थ हो यज्ञ कर रहा है ।।६।।

हे देवसुरा ! हे सोम ! तुम दोनों की प्रकृति भिन्न है, अतः यज्ञ में पृथक्-पृथक् स्थान पर रहो । हे सुरा ! तुम सुरों के द्वारा स्वीकार करने योग्य हो । यह सोम तुमसे भिन्नगुण वाला है ।।७।।

हे प्रथम सुराग्रह ! उपयाम पात्र में ग्रहीत तुम तेज रूप हो । अश्वि-द्वय की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ और मोद की कामना करता हुआ, तुम्हें तुम्हारे स्थान पर स्थापित करता हूँ ।।८।।

हे सोम ! तुम तेजवर्धक हो, मुझे तेज दो; तुम वीर्यवर्धक हो। मुझे वीर्य दो; तुम बलवर्धक हो, मुझे बल दो; तुम ओज-वर्धक हो, मुझे ओज दो; तुम क्रोधवर्धक हो, मुझे क्रोध दो; और तुम सहनशील हो, मुझे सहनशील बनाओ ।।९।।

जो विशूचिका रोग व्याघ्रों, भेड़ियों, सिंहों, श्येन पक्षिग्रों को नहीं होता, वह इस यजमान को भी न हो, इसकी रक्षा करें ।।१०।।

हे अग्नि ! मैंने जो प्रसन्नता से माता का दुग्ध पिया है (और पिता से भी पालन-पोषण पाया है), मैंने माता-पिता को कभी कष्ट नहीं दिया । हे अग्नि ! मुझे शक्ति दे, जिससे मैं उनकी सेवा करता हुआ मातृ-पितृ-ऋण से मुक्त हो सकूँ ।।११।।

देवों ने इन्द्र के यज्ञ को विस्तृत किया और वैद्य रूप अश्विद्वय इन्द्र में ओज-बल की स्थापना की ।।१२।।

नवीन जौ यज्ञ की दीक्षा के लिए होते हैं । नवीन जौ और सुख-प्रद खीलें क्रीत सोम का रूप हैं । मधु और खीलें सोम के अंश के समान हैं । तीन दिन तक रखा गया अभिषुत सोमरस सुरा रूप है ।।१३-१४।।

सरस्वती और अश्विद्वय द्वारा दोहन किया गया सोम दुग्ध रूप

है। तीन दिन का रखा हुआ सोम इन्द्र के निमित्त रखा जाता है। वह क्रय किये हुए सोम का रूप है ।।१५।।

हे मनुष्यो ! तुम्हें चाहिए कि यज्ञ-सम्पादन के लिए यज्ञ के समस्त साधनों का संग्रह करो। यथा—आसन्दी वेदी पर यजमान के बैठने के लिए; कुम्भी धान्यादि पदार्थ रखने के लिए; सुराधानी (घड़ा) सोम रस भरने के लिए अन्नादि पदार्थ, उत्तरवेदी, कर्मचारी और भिषक्; (वैचिकित्सक) ।।१६।।

हे मनुष्यो ! जैसे यज्ञ की सामग्री से यज्ञ वेदी और पुरुषार्थ से विपुल-धन प्राप्त करते हैं; उसी प्रकार तुम साधनों से प्राप्त करके सब सुखों को प्राप्त करो ।।१७।।

हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विज यज्ञ-सामग्री संचय करके यज्ञ को शोभित करते हैं, वैसे तुम भी स्त्री-पुरुष घर के कार्यों को मिलकर नित्य सिद्ध किया करो ।।१८।।

जो विद्वान् अनुकूल यज्ञ-कर्मों से यज्ञीय पदार्थों को और यज्ञ-क्रियाओं तथा आहुतियों से अग्नि को संयुक्त करता है, वह सुखी रहता है ।।१९।।

हे मनुष्यो ! जैसे सद्गृहस्थ पके हुए उत्तम पदार्थों से हवन करने योग्य उत्तम पदार्थों को, गायत्री आदि छन्दों की विद्या से समिधाओं को तथा यज्ञ-क्रिया से वषट्कारों को प्राप्त करता है, वैसे तुम भी प्राप्त होओ ।।२०।।

हे मनुष्यो ! तुम हवि, सोम, दुग्ध, दधि, प्रशस्त अन्न और मधु के गुणों को जानो ।।२१।।

मधुर बदरी फल धान्य रूप हैं; और दही मिले सत्तू जौ रूप धान्य हैं, हे मनुष्यो ! तुम यह जानो ।।२२।।

हे मनुष्यो ! तुम यह जानो कि जौ दूध के समान, बदरीफल दही के समान, अन्न सोम के समान और दधि-मिश्रित उष्ण दुग्ध सोम पक्व चरु के समान हैं ।।२३।।

हे विद्वान् ! तू विद्यार्थियों को भली प्रकार विद्या को सुना, फिर स्तोत्रों को पढ़ा; जिससे विद्यार्थी धारण करने योग्य-ज्ञान को धारण करें ।।२४।।

जो विद्वान् ऋचाओं के स्वरूप को जाता है, जो सुबन्त, तिङन्त पदों और ओंकार के स्वरूप को जानता है तथा जो सोमाभिषव जानता है, वह वेद का ज्ञाता कहा जाता है ।।२५।।

जिन मनुष्यों ने अश्विनी कुमारों से (प्रातःकाल की यज्ञ क्रिया),

इन्द्र से माध्यन्दिन सवन (मध्याह्न की यज्ञ-क्रिया) और सरस्वती से सान्ध्यहवन-क्रिया को यथावत् प्राप्त किया है, वे जगत् के उपकारक हैं ॥२६॥

वायव्य सोमपात्रों से वायव्य सोमपात्रों की; वेत के पात्र से वेत्र के पात्र-द्रोणकलश की; कुम्भी (धान्य अथवा जल-पात्र) से कुम्भी की, और स्थालियों (पतीलियों) से स्थालियों की जो प्राप्ति करता है, वही धनाढ्य है ॥२७॥

यजुर्मन्त्रों से ग्रह (क्रिया-काण्ड के व्यवहार) और ग्रहों से स्तोम (स्तोत्र), स्तोमों से स्तुतियाँ, छन्दों से उक्थ (स्तुतियाँ); छन्दों से सामगान और अवमृथ (स्नान) से अवमृथ प्राप्त होते हैं ॥२८-२९॥

चार रात्रि के व्रत के पश्चात् दीक्षा प्राप्त की जाती है। दीक्षा से कुशलता, उससे श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य प्राप्त होता है ॥३०॥

इस सौत्रामणि यज्ञ (जिसमें यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है) को जो प्राप्त होता है, वह द्विज हो जाता है ॥३१॥

स्तुतियों के द्वारा देवों ने सोम को धारण किया। देवता सोमरस वाले इस सौत्रामणि यज्ञ की वृद्धि करते हैं। ऐसे यज्ञ में हम आनन्द को प्राप्त हों ॥३२॥

हे विद्वानो ! सोम का जो बल है, उस रस-सार-रूप सोम से यजमान, अश्विद्वय, सरस्वती और अग्नि को तृप्त करो ॥३३॥

अश्विद्वय नमुचि (जल) से जिस सोम को लाये, सरस्वती ने जिसे इन्द्र के बल-वीर्य के लिए अभिषुत किया, उस महान् सोमराज को मैं ग्रहण करता हूँ ॥३४॥

निष्पन्न सोम का जो अंश कर्मों-द्वारा शोधित होने पर इन्द्र ने पान किया था, उस सोम-रस को मैं इस यज्ञ में श्रेष्ठ मन से पान करता हूँ ॥३५॥

अन्न के प्रति उत्सुक पितरों, पितामहों को स्वधा नामक अन्न प्राप्त हो। पितर तृप्त होकर हमें अभीष्ट प्रदान करें। हे पितरो ! आचमन के द्वारा शुद्ध होओ ॥३६॥

पितर, पितामह; प्रपितामह मुझे पवित्र करें। उनसे पवित्र किया गया मैं पूर्णायु को प्राप्त करूँ ॥३७॥

हे अग्नि ! तुम स्वयं ही आयु प्राप्त कराने वाले हो, अतः हमें जो आदि के धान्य-रस को प्रदान करो तथा दुष्ट पापियों के कार्यों में विघ्न उपस्थित करो ॥३८॥

देवों की अनुगामी मन-बुद्धियाँ मुझे पवित्र करें। हे अग्नि ! तुम भी पवित्र करो ॥३९॥

हे अग्नि ! तुम तेजस्वी हो, हमारे यज्ञ-कर्म को देखते हुए हमें स्वतेज से पवित्र करो ॥४०॥

हे अग्नि ! तुम्हारी ज्वाला में जो ब्रह्म तेज है, उससे मुझे पवित्र करो ॥४१॥

कर्माकर्म के ज्ञाता, सर्वज्ञ और पवित्र वायु देवता हमें अपने प्रभाव से पवित्र करें ॥४२॥

हे सविता ! तुम दोनों प्रकार से पवित्र करते हुए मुझे सब ओर से पवित्र करो ॥४३॥

यह वाणी सम्पूर्ण देवों का हित करने वाली एवं पवित्रताप्रद है। सब देहधारी इसकी कामना करते हैं। इसकी अनुकूलता से हम श्रेष्ठ धनों के स्वामी हों ॥४४॥

समान मन और समान मर्यादा वाले पितर लोक निवासी हमारे पितरों को हमारा दिया स्वधारूप अन्न एवं हमारा प्रणाम प्राप्त हो ॥४५॥

जो प्राणियों में मेरे सपिंड प्राणी हैं, उनकी लक्ष्मी सौ वर्ष तक मेरे आश्रम में रहे ॥४६॥

श्रुति के द्वारा दो मार्ग बताये गये हैं—मरणधर्मा मनुष्य के देवों के समीप गमन करने के लिए जो मार्ग है—देवयान मार्ग और पितरों को पितृलोक को ले जाने वाला—पितृयान मार्ग ॥४७॥

यह हवि प्रजोत्पत्ति करने वाली, इन्द्रियों की वृद्धि करने वाली तथा सब अंगों को पुष्टि देने वाली है, यह मेरा कल्याण करे। हे अग्नि ! मेरी प्रजा-वृद्धि करो। हमारे लिए धान्य और दुग्ध बल दायक हो ॥४८॥

इहलोक, परलोक और मध्यलोक में स्थित हमारे पितर ऊर्ध्वलोक को प्राप्त हों। प्राण रूप को प्राप्त पितर हमारी पुकार को सुनें तथा हमारी रक्षा करें ॥४९॥

जो सोम-सम्पादक पितर हैं, वे सोमपान के लिए बुलाये गये हैं। पितरों के साथ यम हमारी हवियों का सेवन करें ॥५०॥

हे सोम ! तुम देवयान मार्ग प्राप्त कराने वाले हो। हमारे पितरों ने हे सोम ! तुम्हारे द्वारा ही यज्ञफल को पाया था ॥५१॥

हे सोम ! हमारे पितरों ने सोमयाग को किया था अतः तुम इस

यज्ञ में बाधकों को दूर भगाओ। हमें वीर पुरुष और अश्वरूप धन दो ।।५२।।

हे सोम ! पितरों के साथ बातें करते हुए तुमने स्वर्ग और पृथिवी का विस्तार किया है। हम तुम्हारे निमित्त-हवि विधान करते हैं ।।५३।।

हे पितरो ! तुम कुशासन पर विराजमान होते हो। हमारे कल्याण के लिए यहाँ आओ। शोधित हवियों को तुम ग्रहण करो और हमें सुख, अभय तथा पाप-मुक्ति आदि सब कुछ दो ।।५४।।

कल्याण करने वाले पितरों को मैं जानता हूँ और देवयान तथा पितृयान मार्गों को भी मैं जानता हूँ। स्वधा-सहित सोमपान करने वाले पितर यहाँ आयें ।।५५।।

हवि ग्रहण करने के लिए आहूत पितर हमारी पुकार को सुनें, यहाँ आयें और हमसे ऐसे बोलें, जैसे पिता पुत्र से बोलता है। वे हमारी रक्षा करें ।।५६।।

हमारे पितर देवयान मार्ग से आयें। वे यज्ञ में स्वधायुक्त अन्न से प्रसन्न होकर हमें उपदेश देते हुए हमारी रक्षा करें ।।५७।।

हे पितर ! हमारे यज्ञ में आइए। कुशासनस्थ हो सब प्रकार की हवियों को ग्रहण कीजिए और हमें धन दीजिए ।।५८।।

जो पितर अग्निदाह कर्म को प्राप्त हैं तथा जिनका अग्नि-दाह नहीं किया गया है, वे सभी अपने उपार्जित कर्म के भोग से स्वर्ग में रहते हैं। फिर यम इच्छानुसार यथा समय उन्हें मनुष्य-शरीर देते हैं ।।५९-६०।।

हम सत्ययुक्त पितरों को बुलाते हैं। जो पितर चमस पात्र में सोम-भक्षण करते हैं, वे हमारे लिए सुखाह्वान-योग्य हों ।।६१।।

हे पितरो ! तुम दक्षिणाभिमुख हो बैठो और इस यज्ञ की प्रशंसा करो। हमारे द्वारा अज्ञान में होने वाले अपराध पर विचार न करते हुए हमें हिंसित न करो ।।६२।।

हे पितरो ! सूर्य लोक में बैठे तुम हविदाता के लिए धन दो। इसके पुत्रों को धन दो और यज्ञ में आनन्द को उपस्थित करो ।।६३।।

हे कव्यवाहक अग्नि ! तुम जिन हवियों को ले जाओगे, उन्हें देवों तक पहुँचाओ ।।६४।।

हे कव्यवाहक अग्नि ! हम सत्य-वृद्धि-कर्त्ता पितरों का यजन करते हैं ।।६५।।

हे कव्यवाहक अग्नि ! ऋत्विजों से स्तुत तुम हवि वहन करते

हुए स्वधा के द्वारा उसे पितरों तक पहुँचाओ। हे अग्नि! तुम हवि ग्रहण करो ॥६६॥

इस लोक में वर्तमान और स्वर्ग आदि लोकों में वर्तमान पितर जिन्हें हम जानते हैं अथवा जिन्हें हम नहीं जानते; उन्हें हे अग्नि! तुम जानते हो। अतः स्वधा के द्वारा उन सब तक हमारी हवियाँ पहुँचाओ ॥६७॥

जो पितर स्वर्ग में हैं, जो मुक्ति के पात्र हैं, जो पृथिवी पर स्थित हैं, अथवा जो धर्म रूप और बलयुक्त प्रजाओं को अन्न देते हैं, यह अन्न उन सब पितरों को प्राप्त हो ॥६८॥

हे अग्नि! यज्ञ को प्राप्त करने वाले पितरों ने जैसे देहान्त पर स्वर्ग पाया है, वैसे विधिपूर्वक यज्ञ करते हुए हम भी स्वर्ग प्राप्त करें ॥६९॥

हे अग्नि! हम तुम्हें स्थापित करते और प्रदीप्त करते हैं। तुम पितरों को हवि-भक्षणार्थ आहूत करो ॥७०॥

हे इन्द्र! तुम सभी यज्ञों में विजयी हुए हो। तुमने नमुचि राक्षस का शिर समुद्र फेन से काट डाला और उसे मारकर जल में डाल दिया ॥७१॥

निष्पन्न सोम अमृत-सदृश होता है। वह रस रूप होता है। सोम पीने पर बल उत्पन्न करने वाला, अमृतत्व गुण वाला और दुग्ध-सम मधुर होता है ॥७२॥

जैसे अंगों के रस को प्राण पीता है, वैसे ही अपनी बुद्धि के द्वारा हंस जलों के रस-रूप दुग्ध का पान करता है; इससे यह प्रमाणित होता है कि ये इन्द्रियों के बल को बढ़ाने वाला है और इसका सारहीन स्थूल भाग पृथक्करणीय है ॥७३॥

निर्मल आकाश में विचरण करने वाले आदित्य ने जलयुक्त सोम को छन्दों द्वारा पृथक् करके इसके रस रूप का पान किया, यह सत्य है। यह पेय इन्द्रियों को बल देने वाला है। यह रस इन्द्र के पीने के योग्य है ॥७४॥

इन्द्र का यह अन्न रूप सोमरस इन्द्रियों को श्रेष्ठ बल देने वाला और अमृतत्व-प्रदाता है ॥७५॥

मनुष्य वीर्य गर्भरूप होकर जरायु से ढका हुआ जन्म लेता है। जन्म के पश्चात् जरायु को छोड़ता है। यह सत्य है, सत्य से ही जाना जाता है। इन्द्र का यह श्रेष्ठ अन्न सोम अमृतरूप दुग्ध है ॥७३॥

प्रजापति ने सत्य और असत्य को देखकर विचार कर दोनों को अलग-अलग स्थापति किया। असत्य में अश्रद्धा और सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया। यह सत्य है, सत्य से ही जाना जाता है ॥७७॥

प्रजापति के द्वारा प्रेरित धर्म और अप्रेरित अधर्म के स्वरूपों को जानकर धर्म को ग्रहण करे और अधर्म को त्याग दे। यह सत्य है, सत्य से ही जाना जाता है ॥७८॥

प्रजापति ने परिस्रुत रस को देखकर शुद्ध भाव से दुग्ध और सोम का पान किया। यह सत्य है। इन्द्र का यह सोम बल-कारक, अमृत-सम मधुर है ॥७९॥

इन्द्र के रूप को ओषधि से पुष्ट करते हुए मननपूर्वक सौत्रामणि यज्ञ किया जाता है, उसी प्रकार जैसे ऊन से वस्त्र बुना जाता है ॥८०॥

अश्विद्वय वरुण और सरस्वती ने इन्द्र के अविनाशी रूप का सन्धान किया। रोगों के विरुद्ध वनौषधि कल्पित की और त्वचा बनायी। खीलों से मांस को पुष्ट किया ॥८१॥

पृथिवी पर सोम रस को स्थापित करते हुए चिकित्सक अश्विनी कुमार और सरस्वती ने इन्द्र के रूप को पूर्ण किया और अस्थि, मज्जा आदि को बनाया ॥८२॥

अश्विद्वय और सरस्वती ने मन से विचार करके इन्द्र के दर्शनीय रूप को बनाया। सोम को देह-रंजक एवं बुद्धि-प्रेरक बनाया और त्वगादि को रसपूर्ण किया ॥८३॥

उक्त तीनों देवों ने दुग्ध से वीर्य की उत्पत्ति की और उन्होंने अज्ञान और कुमति को रोका। आमाशय और पाक्वाशय में गये अन्न से नाड़ियाँ बनायीं और सुरा से मूत्र बनाया ॥८४॥

सविता देव ने इन्द्र के हृदय को हृदय से और सत्य को पुरोडाश से प्रकट किया। वरुण ने वायुओं से यकृत, क्लोम, हृदय के दोनों ओर की पसलियों और पित्त को उत्पन्न किया ॥८५॥

मन्त्रसिक्त स्थाली से आन्त्र, दूध देने वाली गौ और पात्र से गुदा, तथा आसन्दी से नाभि और उदर बनाया ॥८६॥

सोम-कुम्भ के रस से छोटी आँत और सोम कुम्भ से जननेन्द्रिय तथा सुराधानी पात्र से स्वधा रूप अन्न को बनाया ॥८७॥

सत् नामक पात्र इन्द्र का मुख हुआ दशापवित्र से जिह्वा बनी और चष्म से पायु इन्द्रिय हुई ॥८८॥

ग्रहों से इन्द्र के नेत्र और अजा दुग्ध से परिपक्व हवि से नेत्रों का तेज हुआ। गेहुँओं से नेत्रों के नीचे के लोम और बेरों से नेत्रों के ऊपर के लोम हुए ।।८६।।

भेड़ और भेड़ा घ्राणशक्ति के बल हुए। ग्रहों से प्राणों का मार्ग अविनाशी हुआ। सरस्वती ने अंकुरों से व्यान वायु को प्रकट किया और कुशा से इन्द्र की नासिका के बाल बने ।।९०।।

श्रोत्र सम्बन्धी ग्रहों से इन्द्र के कान बने। जौ और कुशा से नेत्र के बाल बने। बेर से मुख द्वार और मधु से लार बनी ।।९१-९२।।

अश्विद्वय ने चन्द्रमा की ज्योति से इन्द्र को रूप और चन्द्रमा से अमृत लेकर सौ वर्ष की आयु दी। सरस्वती ने इन्द्र में आत्मा डाली ।।९३।।

अश्विद्वय और सरस्वती इन्द्र को धारण करते हैं और वरुण सोम के द्वारा इन्द्र का पोषण करता है। इस प्रकार सरस्वती और वरुण इन्द्र के धारक पोषक हैं ।।९४।।

अश्विद्वय और सरस्वती ने अंशु-दुग्ध-घृत-मधु मिश्रित हव्य को लेकर शुद्ध तेज का मन्थन किया और उससे भोगप्रद सोम प्राप्त किया ।।९५।।

विंश अध्याय

ऋषि : प्रजापति, प्रष्कण्व, कौण्डिन्य, विदर्भि, गृत्समद, मधुच्छन्दा।

हे राजा ! तू राज्य का निमित्त है। तू राजकुल का जीवन-हेतु है। तुझे कोई हिंसित न करे। तू मुझे हिंसित मत कर ।।१।।

हे राजा ! उत्तम बुद्धि, कर्म और उत्तम स्वभाव युक्त तथा सत्य व्रत धारण करने वाले आप चक्रवर्ति-राज्य करते हुए न्याय-घरों में स्थित हो, और हमारी रक्षा करो ।।२।।

हे शुभलक्षणयुक्त पुरुष ! वेदाध्ययन और प्रजापालन के लिए मैं तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ ।।३।।

हे सत्य बोलने वाले, श्रेष्ठ कार्य करने और सत्य न्याय का प्रकाश करने वाले तुम सुखरूप हो और अति सुखकारी हो। इसलिए परमेश्वर के लिए और परमेश्वर जिस मन्त्र का देवता है, उस मन्त्र के लिए तुमको मैं अभिषिक्त करता हूँ ।।४।।

हे मनुष्यो ! राज्याभिषेक को प्राप्त हुए मेरी श्री ही मेरा शिर है, यश ही मेरा मुख है, न्याय का प्रकाश ही मेरे केश और दाढ़ी-मूँछ

हैं, मेरा प्राण अमृत है, ब्रह्म ही मेरा नेत्र है, और विराट् मेरे कान हैं, ऐसा तुम जानो ।।५।।

हे मनुष्यो ! मेरी जिह्वा कल्याणकारक अन्नादि का भोग करने वाली है; वाणी वेदशास्त्र के बोध से युक्त है। अन्तःकरण दुराचारियों पर क्रोध करने वाला है और बुद्धि हर्ष-उत्साह-आनन्द वाली है। मेरे अंग मेरे सखा और सहायक हों ।।६।।

हे मनुष्यो ! बल और धन ही मेरी भुजाएँ हैं। कर्म और पराक्रम ही मेरे हाथ हैं। मेरी आत्मा और हृदय दुःख से रक्षा करने वाले हों ।।७।।

हे मनुष्यो ! राष्ट्र ही मेरा शरीर है और प्रजाजन ही मेरे शरीर के अंग हैं ।।८।।

हे प्रजाजनो ! प्रजा को स्मरण करने वाली वृत्ति ही मेरी नाभि है। विशेष ज्ञान ही मेरी मूलेन्द्रिय है। मेरा राज्यैश्वर्य ही मेरे आनन्ददायक गुप्त-अंग हैं ।।९।।

प्रजाजनों में प्रतिष्ठा को प्राप्त मैं क्षत्रिय-कुल में प्रतिष्ठित हूँ तथा अश्वादि वाहनों, गौ और पृथिवी आदि पदार्थों एवं राज्य के अंगों में प्रतिष्ठित होता हूँ। मैं आत्मा, प्राण, विद्यादानादि क्रिया में प्रतिष्ठित होता हूँ ।।१०।।

तीन दिव्य गुण वाले देवता और ग्यारह दिव्य गुण वाले पदार्थ, जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये हुए हैं, उनकी तथा उन मेरे पृथिव्यादि तेंतीस पदार्थों की देवगण रक्षा करें ।।११।।

आठ वसु ग्यारह प्रणों से, ग्यारह रुद्र बारह महानों से, सत्य यज्ञ से; यज्ञ चार वेदों की मन्त्र वाणियों से; उत्तम क्रिया होम क्रियाओं से; और होम क्रियाएँ सत्य क्रिया से मेरी कामनाओं को सिद्ध करें ।।१२।।

हे उपदेशक लोगो ! जिस प्रकार मैं नम्रता से भर जाऊँ; वैसा प्रयत्न आप लोग करें ।।१३।।

हे विद्वान् ! जो हम उपदेशक, विद्वान् तथा परस्पर एक-दूसरे का अनादर करने का अपराध करें, उस समस्त अपराध को आप दूर कीजिए ।।१४।

दिन में अथवा रात्रि में बिना जाने जो हम अपराध करें, उन समस्त अपराधों से वायु देव मुझे छुड़ाएँ ।।१५।।

जगते हुए अथवा स्वप्न में जिन अपराधों को हम करें, उनसे सूर्य देवता हमें दूर करें ।।१६।।

हे विद्वान् ! ग्राम में, अरण्य में, सभा में, मन में, शूद्र के प्रति, वैश्य

के प्रति जो हम से अपराध बन पड़ें, उनसे आप हमें छुड़ाएँ ।।१७।।

हे जलाशय ! तुम गगनशील हो, किन्तु इस स्थान में मन्दगति वाले रहो। हमने ज्ञानेन्द्रियों-द्वारा देवताओं का जो पाप किया है अथवा ऋत्विजों से जो पाप हो गया है; ऐसे सब पाप को हमने जलाशय में इस यज्ञ में त्याग दिया है। हे वरुण ! हमारी रक्षा करो ।।१८।।

हे सोम ! तुम्हारा हृदय जलों में स्थित है, मैं तुम्हें वहीं भेजता हूँ। वहाँ तुम में जल और ओषधियाँ प्रविष्ट हों और वे हमारे लिए मित्रवत् हों ।।१९।।

जल देवता मुझे पाप-मुक्त करें। जैसे खड़ाऊँ को उतारते समय पाँव उन्हें अलग कर देते हैं, वैसे जल मुझे मलिनता से अलग करें ।।२०।।

इस लोक से परे स्वर्ग लोक को देखते हुए हम सूर्य लोक स्थित सूर्य को देखते-देखते ज्योति रूप को प्राप्त हो गये ।।२१।।

आज मैंने जल-कर्म को पूर्ण किया है। अब मैं रज-मुक्त हुआ हूँ। हे अग्नि ! तुम मुझे तेज, सन्तान, धन और ऐश्वर्य दो ।।२२।।

हे समिधा ! तुम तेजरूप हो, मुझे समृद्धि दो। तुम रूपवती हो, मुझे तेज दो। मैं अपने अभीष्टों के, लिए हे अग्नि ! तुम्हारे आश्रित हूँ, अतः मेरा अभीष्ट पूरा करो ।।२३-२४।।

जहाँ व्यक्ति एक मन होकर रहते हैं, वहाँ देवता और अग्नि निवास करते हैं, मैं उसी स्वर्ग लोक को प्राप्त करूँ ।।२५।।

जिस ईश्वर में इन्द्र और वायु जैसे पदार्थ भी व्याप्त हैं, जो अनादि और अनन्त हैं, मैं उस ईश्वर को जानूं ।।२६।।

बल का पोषण करने के इच्छुक सोम रस को प्रसन्नता से तृप्ति पूर्वक पीते हैं और पवित्र होते हैं। वे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होते हैं; किन्तु जो यह कहता है कि यह क्या है, वह कुछ भी नहीं पाता ।।२७-२८।।

हे इन्द्र ! इस प्रातःकाल में तुम हमारे धान्य युक्त पुरोडाश तथा स्तुति को ग्रहण करो ।।२९।।

हे ऋत्विजो ! पाप के नाशक बृहत्साम को इन्द्र के लिए गाओ। यज्ञवर्धक देवों ने इसी सामगान से इन्द्र को प्रवृद्ध किया था ।।३०।।

हे अध्वर्यु ! इस श्रेष्ठ सोम को ऊन के छन्ने में लाओ और इन्द्र के पीने के लिए शुद्ध करो ।।३१।।

जो परमात्मा सर्व प्राणि पालन कर्त्ता है और सब लोक जिसके आश्रित हैं तथा जो महत्तत्व आदि का भी नियमन करने वाला है उसी

परमात्मा की आज्ञानुसार और उसकी ही कृपा से हे ग्रह ! परमात्मभाव को प्राप्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥३२॥

हे ग्रह ! तू अश्विद्वय से उपयाम पात्र में ग्रहीत है। तेरा अश्विद्वय से सम्बन्ध है। मैं तुझे सरस्वती और इन्द्र के लिए ग्रहण करता हूँ। तुझे उत्तम रक्षा के लिए ग्रहण करता हूँ ॥३३॥

हे ग्रह ! तुम मेरे प्राण, अपान, नेत्र, श्रोत्र और इन्द्रियों की रक्षा करने वाले हो। मेरे वाणी, मन और ओषधि में स्थापित होओ ॥३४॥

हे यज्ञान्न ! आज्ञा पाकर मैं अश्विद्वय तथा इन्द्र से संस्कृत, सरस्वती द्वारा प्रस्तुत और ऋत्विजों से आहुत तुझे भक्षण करता हूँ ॥३५॥

उषाकाल के आगे चलने वाले सूर्य के रूप में पूर्व दिशा को प्रकाशित करने वाले तैंतीस देवताओं के साथ बढ़ने वाले इन्द्र (सूर्य) ने वृत्र (मेघ) को मारा और मेघों के स्रोतों को खोला ॥३६॥

यजमान जठराग्नि रूप से शरीर रक्षक, मधुर-स्वादिष्ट हबि को भक्षण करता हुआ इन्द्र का नित्य पूजन करता है ॥३७॥

आदित्यों और वसुओं से युक्त इन्द्र यज्ञशाला में आयें और कुशासनस्थ हो विराजें ॥३८॥

जैसे सुविस्तृत, सजे हुए यज्ञशाला के द्वार सब ओर खुलते हैं, उसी प्रकार सब ओर खुले वायु के स्थान, शब्द गुण वाले आकाश में विद्यमान इन्द्र यहाँ आयें ॥३९-४०॥

अद्भुत रूप से ग्रथित करने वाली रात्रि और पूजा इन्द्र को श्रेष्ठ दीप्ति में स्थापित करती है ॥४१॥

यज्ञ करने वाले होता इन्द्र भी (सूर्य की) प्रतिष्ठा करते हैं और आहवनीय अग्नि को हवियों द्वारा प्रदीप्त करते हैं ॥४२॥

सरस्वती और भारती इन्द्र की सेवा करती हैं। वे हमारे यज्ञ को दुग्ध और हवि से सम्पन्न करें ॥४३॥

त्वष्टा धरा के लिए इन्द्र को पूजते हैं। वे त्वष्टा यज्ञ के प्रमुख देवताओं को तृप्त करें ॥४४॥

वनस्पति देवता हवियों के द्वारा इन्द्र को तृप्त करते और घृत-द्वारा यज्ञ का सेवन करते हैं ॥४५॥

इन्द्र स्वाहाकार रूप में घृत के द्वारा मन में प्रसन्न होते हुए सोमपान से आनन्दित हों ॥४६॥

जिस इन्द्र के कर्म स्वर्गिक हैं, ऐसे इन्द्र क्षत्रिय-धर्म के पोषक हैं।

वे स्तुत इन्द्र हमारी रक्षा के लिए यहाँ आयें और यज्ञ में देवों के साथ हवि ग्रहण करें ॥४७॥

अभीष्टपूरक, ओजस्वी, जनपालक, वज्रधारी इन्द्र हमारी रक्षा के लिए दूर या पास से यहाँ आयें ॥४८॥

महान्, धनी, इन्द्र अपने अश्वों के द्वारा यहाँ लाये जाएँ और हव्यन्न को ग्रहण करें ॥४९॥

मैं इन्द्र को आहूत करता हूँ। वे इन्द्र हमारा कल्याण करें ॥५०॥

इन्द्र हमारे रक्षक हों। दुर्भाग्य दूर कर हमें सौभाग्य दें, अन्न दें, भयों को नष्ट करें और हमें धनवान् करें ॥५१॥

कार्य सम्पादक इन्द्र की हम कृपा पायें, हम उनके मन में बसें। वे हमारे दुर्भाग्य को दूर करें ॥५२॥

हे इन्द्र! अपने अश्वों-सहित यहाँ आओ। तुम्हें कोई न रोके। जैसे शिकारी जाल में पक्षियों को फँसाते हैं, वैसे आने से रोकने के लिए तुम्हें कोई न फँसाए ॥५३॥

महर्षि वशिष्ठ के वंशज इन्द्र को स्तोत्रों से पूजते हैं। इन्द्र हमें पशु-सन्तान-धन दें ॥५४॥

हे अश्विद्वय! अब अग्नि प्रदीप्त हो गयी, सोम निष्पन्न हो गया और सरस्वती के द्वारा सोम का दोहन कर लिया गया ॥५५॥

शरीर रक्षक अश्विद्वय और सरस्वती मधुर-रस से लोकों को पूर्ण करते हैं। निष्पन्न सोम को वे इन्द्र की बलवृद्धि के लिए वहन करते हैं ॥५६॥

अश्विद्वय और सरस्वती ने इन्द्र के लिए यज्ञ के साथ सोम और ओषधि-कन्द को धारण किया ॥५७॥

इन्द्र को आहूत करती हुई सरस्वती ने और अश्विद्वय ने इन्द्र में इन्द्रियों और वीर्य को स्थापित किया तथा इन्द्र के ही निमित्त दुग्ध-दधि को धारण किया ॥५८॥

अश्विनी कुमारों के द्वारा ओषधि-रस-सहित सस्कृत सोम को जल-धारा से ग्रहण किया और कुशासनस्थ इन्द्र को रक्षा-निमित्त भेंट किया ॥५९॥

अश्विनीकुमारों के सहित सरस्वती और इन्द्र ने यज्ञ और दिशाओं से कामनाओं को दुहा ॥६०॥

अश्विद्वय और सरस्वती ने दिन-रात्रि और सन्ध्या:काल में इन्द्र को बलयुक्त किया ॥६१॥

हे अश्विद्वय ! हे सरस्वती ! हमारी दिन में और रात्रि में रक्षा करो। हे दिव्य होताओ ! सोमाभिषव करते हुए इन्द्र की रक्षा करो ।।६२।।

सरस्वती, इन्द्रा, भारती ने अश्विद्वय की महान् ओषधियों के रस से इन्द्र के निमित्त सोम सम्पन्न किया ।।६३।।

सोमाभिषव होने पर अश्विद्वय, सरस्वती और त्वष्टा ने महोषधि सोम के द्वारा इन्द्र में कीर्ति आदि की स्थापना की ।।६४।।

सोमौषधियुक्त इन्द्र स्तुत हुए । समय-समय पर ओषधि रस तथा अन्न को इन्द्र ने प्राप्त किया । अश्विद्वय और सरस्वती ने इन्द्र के लिए मधु का दोहन किया ।।६५।।

हे अश्विद्वय ! तुम और सरस्वती; दुग्ध-दधिमिश्रित मधुर सोमरस को इन्द्र में स्थापित करो । हे प्रयाजो ! तुम और सरस्वती-निष्पन्न-मधु को इन्द्र-निमित्त धारण करो ।।६६।।

अश्विद्वय और सरस्वती ने नमुचि (जल से) इन्द्र के निमित्त संस्कृत हवि और पवित्र धन सोम को प्राप्त किया ।।६७।।

समान मन वाले होकर अश्विद्वय और सरस्वती ने इन्द्र को हवि ग्रहण करने को प्रवृत्त किया । तब इन्द्र सूर्य ने वृत्र (मेघ) को विदीर्ण किया ।।६८।।

अश्विद्वय और सरस्वती ने हवि के द्वारा इन्द्र में बल धारण कराया और उनकी स्तुति की ।।६९।।

सविता, वरुण और भगदेवता ने इन्द्र में बलस्थापन किया । वे इन्द्र यजमान की कामना पूर्ण करें ।।७०।।

रक्षक इन्द्र (सूर्य) ने नमुचि (जलों) से इन्द्रिय-बल प्राप्त किया । सविता और वरुण देव ने यजमान को धन-बल दिया ।।७१।।

सविता देव, वरुण और इन्द्र यजमान में क्षात्र-बल, सौभाग्य और लक्ष्मी की स्थापना करते हुए इस सौत्रामणि यज्ञ में आते हैं ।।७२।।

अश्विद्वय और सरस्वती ने पशुओं से इन्द्रिय सामर्थ्य और अश्वों से ओज-बल ग्रहण किया तथा ओज-बल और हवियों से यजमान एवं इन्द्र को समृद्ध किया । तृप्त इन्द्र भी यजमान को समृद्ध करते हैं ।।७३।।

स्वर्णिम मार्गों में विचरणशील, रूपवान् अश्विद्वय, श्रेष्ठ हविवाली सरस्वती और ऐश्वर्यवान् इन्द्र हमारे यज्ञ में आयें और सर्वतः रक्षा करें ।।७४।।

श्रेष्ठकर्मा चिकित्सक अश्विद्वय, कमनीय धनदात्री सरस्वती और

शतकर्मा इन्द्र ने यजमान को इन्द्रिय-सामर्थ्य देकर समर्थ बनाया ।।७५।।

हे अश्विद्वय ! हे सरस्वती ! तुम सम-मति होकर नमुचि (जलों) में विद्यमान रस (सोम) को ग्रहण करो, तृप्त होओ और यज्ञ में आकर इन्द्र के कृपापात्र यजमान के रक्षक होओ ।।७६।।

हे इन्द्र (सूर्य) ! जब तुम नमुचि (जलों) से सोम ग्रहण करते हो, तब सरस्वती स्तुति से तुम्हारी सेवा करती है ।।७७।।

अन्न-रस और सोम की आहुति ग्रहण करने वाले श्रेष्ठ-मति अग्नि के निमित्त मन-बुद्धि को शुद्ध करो ।।७८।।

हे अग्नि ! हम तुम्हारे मुख में सब ओर से हवि डालते हैं। तुम हमें श्रेष्ठ अन्न, सन्तान, धन, यश और सौभाग्य दो ।।७९।।

अश्विद्वय ने स्वतेज से नेत्र-ज्योति, सरस्वती ने प्राण-सामर्थ्य और इन्द्र ने यजमान में वाणी-सामर्थ्य तथा बल और ओज स्थापित किया ।।८०।।

हे अश्विद्वय ! तुम रुद्र रूप में पापियों को रुलाते हो। तुम इस सोम पान वाले यज्ञ में आओ और यजमान को अश्व, गौ देते हुए उसे श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाला बनाओ ।।८१।।

हे अश्विद्वय ! तुम वृष्टि-जल को फल रूप में देने वाले हो। हमारा निन्दक दुष्ट हमें अपमानित न कर सके, तुम उसे अपमानित करो ।।८२।।

हे सर्वधारक अश्विद्वय ! तुम हमें वृद्धिकारक पीतवर्णी स्वर्ण-धन दो ।।८३।।

अन्नों के द्वारा यज्ञ की अधिष्ठात्री, बुद्धि धन देने वाली और पवित्र करने वाली सरस्वती यज्ञ में आएँ ।।८४।।

सत्य एवं प्रिय वचनों की प्रेरणा देने वाली सरस्वती हमारे यज्ञ में आएँ ।।८५।।

देवी सरस्वती महिमा-रूप जल की वृष्टि करने वाली हैं। वे प्राणियों की बुद्धि को प्रदीप्त करती हैं। ऐसी सरस्वती की हम स्तुति करते हैं। वे सब प्राणियों को सुमति देकर उन्हें सत्कर्मों के लिए प्रेरित करती हैं ।।८६।।

हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ में आओ। छन्ने से छने शुद्ध सोम तुम्हारे पीने के लिए ही यहाँ रखे हुए हैं ।।८७।।

हे इन्द्र ! यज्ञ में आने की तुम्हारी प्रतीक्षा करने वाले यजमान

हवियों के समीप बैठे हैं। हे इन्द्र ! तुम स्वतः प्रेरणा से यहाँ आओ ।।८८।।

हे इन्द्र ! तुम हवि ग्रहण करने शीघ्रता से यहाँ आओ और इस सोम तथा हवियों को ग्रहण करो ।।८९।।

देवी सरस्वती, अश्विनीकुमार और इन्द्र इस मधुर सोम का पान करें।।९०।।

उत्तरार्ध

एकविंश अध्याय

(सूक्त : १ से ६० तक)

ऋषि : शुनःशेप, वामदेव, विश्वामित्र आदि ।

समिधाओं के द्वारा सुदीप्त, पूजनीय अग्नि ने यजमान में बल और आयु की स्थापना की ।

अग्नि ने शरीर पोषणार्थ गोघृत, दिव्य हवि की वाहिका तथा पूजनीय होकर यजमान में बल और आयु की स्थापना की ।

अग्नि ने अविनाशी सोम, अनुष्टुप छन्द और गौ के समान पूजनीय होकर यजमान में बल और आयु की स्थापना की ।

पूषा द्वारा स्थित किये गये अविनाशी अग्नि ने वृहती छन्द और तीन वर्ण की गौ के समान पूजित होकर यजमान में बल और आयु को स्थापित किया ।

महती दिशाओं, दीप्तिमती द्वार देवी, वृहस्पति, ब्रह्मा, पंक्ति छन्द और चार वर्ण की गौ ने पूजित होकर यजमान में बल और आयु की स्थापना की।

महती श्रेष्ठ रूप वाली दिन-रात्रि अमृतत्व गुण वाले विश्वेदेवा, त्रिष्टुप् छन्द और भारवाही वृषभ ने पूजित होकर यजमान में आयु-बल की स्थापना की ।

दिव्य होतारूप अग्नि तथा वायु इन्द्र के साथ सुसंगत होने वाले वैद्य-रूप अग्नि और जगती छन्द तथा छह वर्ण के वृषभ ने पूजित होकर यजमान को आयु-बल दिया ।

इन्द्रा, सरस्वती, भारती—तीनों देवियों, इन मरुद्गण, विराट् छन्द और पयस्विनी गौ ने यजमान में आयु और बल की स्थापना की ।

त्वष्टा देव, पुष्टि-तुष्टिदाता इन्द्र, अग्नि और द्विपदा छन्द तथा सेवन-समर्थ वृषभ ने पूजित होकर यजमान में आयु बल-स्थापना की।

सुखदायिका वनस्पति, धनप्रेरक देव सविता, ककुप् छन्द, गर्भघात वाली वन्ध्या गौ ने पूजित हो इन्द्र में बल और वय धारण कराया।

दुःखरक्षक वरुण, स्वाहाकृत प्रयाज एवं ओषधि.रूप यज्ञ, अति छन्द और महान् वृषभ ने पूजित हो इन्द्र में वय-आयु की स्थापना की।

रथन्तर साम, और त्रिवृत स्तोत्र रूप स्तुति को प्राप्त वसन्त ऋतु सहित अष्टावसु देवता ने इन्द्र में आयु-बल-स्थापन किया।

पंचदशस्तोम और वृहत्साम से स्तुत ग्रीष्म ऋतु सहित रुद्र देवता ने इन्द्र में यश-बल-आयु-स्थापन किया।

सप्तदशस्तोम और वृहत्पृष्ठ से स्तुत वर्षर्तु सहित आदित्य देवता ने इन्द्र में बल-आयु-स्थापन किया।

एकविंश स्तोम और वैराज पृष्ठ से स्तुत लक्ष्मी और शरद् ऋतु से सम्पन्न ऋभुओं ने इन्द्र में श्री, हवि और आयु की स्थापना की।

त्रिणव स्तोम से स्तुत हेमन्त ऋतु-सहित मरुद्गण ने इन्द्र में बल-सहित हवि और आयु की स्थापना की।

त्रयस्त्रिंश स्तोम और रेवती पृष्ठ-द्वारा स्तुत शिशिर ऋतु के सहित देवों ने इन्द्र में सत्ययुक्त क्षात्र बल, हवि और आयु की स्थापना की।

दिव्य-गुण वाले दिन-रात्रि तथा अश्विनीकुमारों और रक्षिका सरस्वती ने इन्द्र में बल और उनके मुख में वाणी को धारण कराया। हे मनुष्य होता! तुम भी यजमान को समृद्ध करो।

दिव्य, सेवनीय सरस्वती, अश्विनीकुमार और द्यावा-पृथिवी ने इन्द्र (सूर्य) को प्रवृद्ध किया तथा इन्द्र का यश संसार में फैलाया। इससे इन्द्र सम्पन्न हों। जैसे इन देवों ने इन्द्र (सूर्य) को प्रवृद्ध किया वैसे हे होता! यज्ञ-द्वारा तुम भी यजमान को समृद्ध करो।

कामनापूरक, दोहनशील, दिव्य, सरस्वती और अश्विनीकुमार रक्षक इन्द्र (सूर्य) में ओज, तेज धारण कराते हैं। इससे इन्द्र सम्पन्न होता है। हे होता! तुम भी यज्ञ के द्वारा यजमान को समृद्ध करो।

दिव्य होता अनुयाज देवता, सरस्वती और अश्विद्वय ने इन्द्र के हृदय में वषट्कारों के द्वारा कान्ति, बुद्धि तथा इन्द्रियों को धारण कराया। इससे इन्द्र समृद्ध हुए। हे होता! तुम भी यज्ञ-द्वारा यजमान को समृद्ध करो।

इडा, भारती, सरस्वती ने अश्विद्वय सहित इन्द्र की नाभि में बल

स्थापन एवं इन्द्रिय धारण कराया तथा समृद्ध किया। हे होता! तुम भी यजमान को समृद्ध करो।

ऐश्वर्यवान् त्वष्टा देव इन्द्र में ओज, सौन्दर्य, अमृतत्व, श्रेष्ठ उत्पत्ति एवं सामर्थ्य की स्थापना करें। जैसे इन देवों ने इन्द्र को सामर्थ्यादि दी, वैसे हे होता! तुम भी यजमान को यज्ञ-द्वारा ये सब दो।

वे वनस्पति देवता हम में तेज, वेग, सीमित क्रोध और इन्द्रिय बल धारण कराएँ। हे होता! तुम ऐसा यज्ञ करो।

हे इन्द्र! तुम्हारी सभा में अश्विद्वय और सरस्वती के द्वारा फैलाये गये बर्हि से ऐश्वर्य के निमित्त तुम्हारे देह में क्रोध रूप ऐश्वर्य का स्थापन हुआ। हे मनुष्य होता! तुम भी यज्ञ करो।

दिव्य अग्नि देव ने होता रूप में देव-वाणी मे यजन किया। इन्द्र ने वनस्पति से यजन किया। घृतपायी अन्न देवों ने भी यजन किया। इस प्रकार दिव्य होताओं ने मनुष्य होता को यश, इन्द्रिय-बल, अन्न और स्वधा की आहुति दी। ऐसे यज्ञ के यज्ञ भाग को सब देवता ग्रहण करें। हे मनुष्य होता! तुम भी यज्ञ करो।

यजमान ने पकाने योग्य हवि का पाक करते हुए पुरोडाशों को पक्व किया और अश्विद्वय तथा सरस्वती की प्रसन्नता के लिए हवि देकर उन्हें तृप्त किया।

वनस्पति देवता ने हवि से अश्विद्वय की सेवा की। सरस्वती और इन्द्र का भी हवि-सत्कार किया। इन देवताओं ने यज्ञ-भाग को ग्रहण किया और पुरोडाश-द्वारा प्रवृद्ध हुए इन्द्र, अश्विद्वय और सरस्वती ने सोमपान किया।

हे ऋषियों की सन्तान! यजमान से सुसंगत हुए अनेक देवताओं ने तुम्हारा वरण किया है। यह अग्नि देवताओं के वरणीय धन को देवों के लिए ग्रहण करते हैं। हे अग्नि! तुम्हारे जो दान देवों को प्राप्त हैं, वे सब धन यजमान को प्राप्त कराओ॥

द्वाविंश अध्याय

(सूक्त : १ से ३४ तक)

ऋषि : प्रजापति, विश्वामित्र, अरुण आदि।

हे सुवर्ण! तुम तेज रूप हो—मेरी आयु की रक्षा करो। हे रशना (करधनी)! सविता की आज्ञा में वर्तमान अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। यज्ञकर्म-कुशल-कवियों

ने यज्ञानुष्ठानारम्भ में इस रशना को ग्रहण किया था । यज्ञारम्भ में ग्रहीत रशना यज्ञ का प्रसार करने वाली होती है ।

हे अश्व ! तुम स्तुत्य एवं सर्वाश्रय रूप हो । तुम जगत्-धारक हो । तुम अग्नि को प्राप्त होओ ।

हे अश्व ! तुम देवों और प्रजापति के निमित्त स्वयं ही गमन करते हो । हे ब्राह्मण ! देवों और प्रजापति की प्रीति के निमित्त इस अश्व को बाँधता हूँ ।

हे अश्व ! तुम प्रजापति के प्रिय पात्र हो । प्रजापति अश्व को वीर्यवान् करते हैं । हे अश्व ! तुम इन्द्र और अग्नि के प्रिय पात्र हो । इन्द्र और अग्नि अश्व को ओजस्वी करते हैं । हे अश्व ! तुम वायु के प्रिय पात्र हो । वायु अश्व को यशस्वी बनाते हैं । हे अश्व ! तुम समस्त देवों के प्रिय पात्र हो । हिंसक शत्रु पराजित हों ।

उन सविता देव के सबसे वरणीय तथा सब पापों को दूर करने वाले तेज का हम ध्यान करते हैं । वे सविता देव हमारी बुद्धियों को शुभ कर्म करने की प्रेरणा दें ।

सविता देव को मैं अपनी रक्षा के लिए आहूत करता हूँ । वे ज्ञानियों के आश्रय रूप हैं । सबको चैतन्य देने वाले महिमावान् सर्वज्ञ सविता हमें कल्याणमयी श्रेष्ठमति दें । सबकी बुद्धि को जानने वाले, श्रेष्ठ मति के वर्धक सविता देव से हम सामर्थ्य रूपी धन माँगते हैं । सर्व साधन-दाता, सत्यनिष्ठों के पालक, सवितादेव को हम आह्वान करते हैं और उन्हें सुपूजित करते हैं । श्रेष्ठ-बुद्धि-द्वारा सविता देव की समस्त धनों की कारणरूपा और सर्वदेव हितकारिणी बुद्धि को हम माँगते हैं । सभी मरणधर्मा प्राणियों के कर्मफल को प्राप्त कराने वाले सविता देव की मित्रता की याचना करो । उनसे कर्म पुष्टि के निमित्त अन्न तथा धन की कामना करो । उन के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ।

हे ब्रह्मन् ! हमारे राष्ट्र में ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण हों । क्षत्रिय महारथी, बाण विद्या में चतुर, शूर हों, गाएँ दूध देने वाली हों, बली और भारवाहक तथा शीघ्रगमनशील बैल हों, स्त्री सर्वगुण-सम्पन्न और अश्व शीघ्र गमनशील हों । रथी विजयशील हों । यजमान के पुत्र युवा और वीर हों । कामना करने पर मेघ बरसे । ओषधियाँ परिपक्व फल-वती हों । हमारा योग-क्षेम हो ।

परमात्म देव, पुरुष, प्रकृति, अनन्त ईश्वर, एक रूप होकर भी

पदार्थों के रूप में अनेक रूप वाले ब्रह्म तथा रात्रि और दिन के अधिपति देवता इन सबको पृथक्-पृथक् दी गयी ये आहुतियाँ स्वाहुत हों ।

त्रयोविंश अध्याय

(सूक्त : १ से ६५ तक)

ऋषि : प्रजापति ।

प्राणियों के उत्पत्ति से पूर्व हिरण्यगर्भ ने देह धारण किया और उत्पन्न होते ही वह सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हो गये । उन्होंने पृथिवी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष को रचकर धारण किया । उन्हीं प्रजापति के लिए हम हवियों का विधान करते हैं ।

हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो । तुम्हें प्रजापति की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ । यह तुम्हारा स्थान है । तुम्हें यहाँ सूर्य की प्रीति के लिए स्थापित करता हूँ ।

तुम्हारी महिमा दिन में, वायु में, अन्तरिक्ष तथा सूर्य लोक में प्रकट है । उस महिमा से युक्त प्रजापति के लिए तथा अन्य देवों के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ।

जो प्रजापति प्राण रूप में सब प्राणियों के स्वामी हैं, जो अपनी महिमा से मनुष्यों-पशुओं के अधिपति हैं, उन प्रजापति के लिए हम हवि का विधान करते हैं ।

हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो । मैं तुम्हें प्रजापति की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ । यह तुम्हारा स्थान है और चन्द्रमा तुम्हारी ही महिमा है । तुम्हारी महिमा प्रति संवत्सर, रात्रि, पृथिवी, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्रों में प्रकट है । तुम्हारी उस महिमा और उस महिमा से युक्त प्रजापति तुम्हें अन्न देवों के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।

यज्ञकर्म में स्थित ऋत्विकरूप सूर्य क्रोध-रहित होकर सिद्धि के निमित्त विचरण करने के लिए आदित्य के समान प्रभाव वाले अश्व को रथ में जोड़ते हैं । उन आदित्य का प्रकाश सर्वत्र फैल जाता है ।

इस अश्व की सहायता के लिए पक्षी के समान गति वाले दो अश्वों को ऋत्विक् सूर्य रथ में जोड़ते हैं ।

हे अध्वर्यु ! वायु-सदृश वेगवान् अश्व ने जिस मार्ग से जलों और इन्द्र के शरीर को प्राप्त किया, उस अश्व को पुनः उसी मार्ग से लौटाओ ।

हे अश्व ! तुझे वसुगण गायत्री छन्द से और आदित्यगण जगती छन्द से अलंकृत करें। पृथिवी-अन्तरिक्ष और स्वर्ग अलंकृत करें। हे देवो ! हे प्रजापति ! हव्यन्न को ग्रहण करो।

हे अश्व ! वायु और अग्नि तुम्हारी रक्षा करें। वट और सेमल वृक्ष तुम्हारी रक्षा करें। अश्व हमारे अभीष्टों का वर्षक हो। अकलंक ब्रह्मा हमारे रक्षक हों। विघ्न दूर करने के लिए हम अग्नि देवता को नमस्कार करते हैं। यह अश्वरथ रश्मियों के द्वारा दर्शनीय है। यह अश्व लगाम के द्वारा शोभित है। जलों से उत्पन्न अश्व जलों से शोभायमान हैं। ब्रह्मा सोम के आगे गमन करते हुए इसे स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं। हे अश्व ! अपने देह की स्वयं कल्पना करो। स्वयं ही यज्ञ में यजन करो। अपने इष्ट स्थान को प्राप्त करो। इससे तुम्हारी महिमा कम न होगी। यह अश्व मृत्यु को प्राप्त नहीं होता—नष्ट नहीं होता। हे अश्व ! तुम देवयान मार्ग से स्वर्ग को जाते हो। जिस लोक में पुण्यात्मा जाते और निवास करते हैं, उसी लोक में सविता तुम्हें स्थापित करें।

सृष्टि में उत्पन्न अग्नि से देवों ने यज्ञ किया। अतः अग्नि ने लोकों को जीता। जिस लोक में अग्नि निवास करते हैं, वह लोक तेरा है, तू उसे जीतेगा। तू इस जल का पान कर। वायु पशु रूप से उत्पन्न हुआ, वायु से देवों ने यजन किया। अतः वायु ने लोकों को जीता। जिस लोक में वायु का निवास है, वह तेरा होगा, तू उसे जीतेगा। तू इस जल का पान कर। सूर्य सृष्टि में उत्पन्न हुआ। उससे देवों ने यज्ञ किया। अतः सूर्य ने लोकों को जीता। जिस लोक में सूर्य का निवास है. वह तेरा होगा, तू उसे जीतेगा। इस जल का पान कर। प्राण, अपान और व्यान की तुष्टि के लिए पृथक्-पृथक् दी गयी ये आहुतियाँ स्वाहुत हों। हे गणपति ! तुम गणों के, प्रियों के और निधियों के पति हो, हम तुम्हें बुलाते हैं। हे परमात्मा ! संसार को गर्भ रूप में धारण करने वाली प्रकृति के धारक आप हैं, यह मैं जानता हूँ।

हे राजा, प्रजाजनो ! तुम दोनों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करो। तुम दोनों इस स्वर्ग रूप यज्ञ-भूमि को प्राप्त होओ। प्रजापति तुममें बल की स्थापना करें।

हे शक्तिमान् न्यायाधीश ! स्त्रियों या पुरुषों में जो व्यभिचार-रत हो, उसे ऊपर को पग और नीचे को शिर करके दण्ड दो और प्रजाजनों को उत्तम सुख दो।

जिस प्रजा के ऊपर राजा राज्य करता है, उसे सुख को धारण करने वाली बनाये और जैसे हल भूमि को उर्वरा बनाने को कुरेदता है, इस प्रकार राजा भी प्रजा को लाभ पहुँचाने के लिए उससे कर ग्रहण करे। हे पवित्र आचरण करने वाले राजा! तू हम लोगों के प्रति असत्य का व्यवहार न कर। यदि ऐसा करेगा, तो निर्बल पक्षी के समान नष्ट हो जायगा।

हे राजा! तुम्हारी पृथिवी के तुल्य सहनशील माता और सूर्य के समान तेजस्वी तथा पालन करने वाले तुम्हारे पिता हैं। वे राज्यश्री पर आरूढ़ होते हुए प्रजा से कर रूप में अल्प धन लेकर प्रजाहित करते हैं। हम प्रजाजन उनसे प्रीति करते हैं।

हे ब्रह्मन् (सज्जन)! आपके तेजस्वी पिता और पृथिवी के समान सहनशील माता हैं। आपके पिता राज्य में विद्या और शोभा का विस्तार करते हैं। आप भी प्रमाण युक्त थोड़ा बोलने वाले बनें।

हे राजा! राज्यलक्ष्मी युक्त तू प्रजा की सदा उन्नति किया कर और ऐसा करते हुए स्वयं भी वृद्धि को प्राप्त हो।

हे प्रजापति! तुम प्रजा की उन्नति करो, उसे उसी प्रकार ऊँचा उठाओ, जैसे वायु चलने पर कृषक बरसाने के लिए धान्य पात्र को ऊँचा उठाता है।

जो राजा या राजपुरुष अपराध रोकने वाली प्रजा के उत्तमकर्मों की प्रशंसा करते हैं तथा न्यायपूर्वक प्रीति का व्यवहार करते हैं, वे राजा और प्रजाजन दोनों उसी प्रकार साथ-साथ सुखपूर्वक रहते हैं, जैसे दो मछलियाँ जल भरे छोटे गड्ढे में सुखपूर्वक रहती हैं।

जैसे स्त्री, पुरुष शरीर के अंगों से देखे जाते हैं, वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य देखा जाता है। उस सत्य से हे राजा! आप कोमल व्यवहार प्राप्त करें। प्रजा भी नम्रता का व्यवहार करे तथा राजा-प्रजा दोनों सुखी रहें।

जैसे खेत में उगे हुए जौ को हरिण खाता है, वैसे ही जो अनाचारत राजा प्रजा की पुष्टि-अपुष्टि का विचार न करते हुए उसके धन को खाता है, उसका धन नष्ट हो जाता है।

जैसे शूद्र सेवक अपने स्वामी की स्त्री के साथ व्यभिचार में रत रहकर अपनी आयु का विनाश करता है और जैसे हरिण बिना विचारे खेत में उत्पन्न जौ खा जाता है, उसी प्रकार जो राजा प्रजा के धन-ऐश्वर्य का विचार नहीं करता, वह अपना विनाश करता है।

जैसे घोड़ों के सिखाने वाले घोड़ों को पराक्रमी एवं संग्राम जितने वाले बनाते हैं, वैसे राजा भी प्रजा को बल, पराक्रम, ऐश्वर्ययुक्त बनाए।

हे विद्वान्! गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, उष्णिक् और ककुप् छन्द तुम्हें शान्ति देने वाले हों।

हे विद्वान्! दो पदवाली, चार पदवाली, तीन पदवाली, छह पदों वाली ऋचाएँ तुम्हें सुख और शान्ति प्राप्त कराएँ।

हे विद्वान्! महानाम्नी और रैवत ऋचाएँ, सब दिशाएँ, विद्युत् और सब प्राणी तुम्हारा कल्याण करने वाले हों।

प्रेम से मिलाने वाली दिशाएँ तुम्हें शान्ति और ज्ञान दें।

जैसे स्वयंवर में विवाही हुई स्त्री प्रशंसित बलयुक्त पति को प्राप्त करके उसकी सेवा करती और उसकी प्रीति को प्राप्त होती है; उसी प्रकार पति से प्रेम करने वाली, उचित आचरण वाली, प्रेम से बँधी स्त्रियाँ अपने पतियों को प्राप्त करके सुख भोगें।

जैसे कृषक जौ को भुस से अलग करते हैं, वैसे ही तुम इन मनुष्यों में से उसी मनुष्य का चयन करो, जो शुद्ध अन्न वाले हैं, जो जल-भोजन देने के लिए तुम्हारा उचित सत्कार करें।

हे विद्यार्थी! कौन अध्यापक तुझे जीवन-बन्धन से मुक्त करने की श्रेष्ठ शिक्षा देते हैं? कौन तेरे अंगों को शान्ति देता है? कौन तेरा यज्ञ कराने वाला है? और कौन अध्यापक समस्त शास्त्रों का ज्ञाता विद्वान् है?

हे विद्यार्थी! ऋतुएँ अपने-अपने गुणों से तेरा पोषण करें। अध्यापक तुझे गुणों को प्राप्त कराएँ। संवत्सर अपने तेज और कर्मों से तुझे शान्तिदायक हों।

हे विद्यार्थी! जैसे दिन-रात और महीने आयु को काटते हैं, वैसे उत्तम अध्यापक तेरे कठोर वचनों और दुष्ट कर्मों को काटें और तेरा कुव्यसन दूर करें।

हे विद्यार्थी! अध्यापक तुझे विशेष उपदेश दें। तेरे दोषों का पूरी तरह विनाश करें। प्रेम से बँधी हुई माता आदि सती स्त्रियाँ भी तुझे ऐसी ही शिक्षा दें।

हे विद्यार्थी! द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष, वायु, सूर्य और नक्षत्रों-सहित चन्द्रमा तेरी प्रत्येक इन्द्रिय को सुख दें। तेरे व्यवहार को सुन्दर बनाएँ और उत्तम सत्य को देखने के लिए तुझे प्रकाश दें।

हे विद्यार्थी! जैसे पृथिवी आदि तेरे शरीर के लिए, उत्तम भागों, मध्यम भागों तथा अधःभागों, अस्थियों, मज्जा आदि के लिए सुखप्रद हों,

वैसे अपने उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों से अध्यापक भी तेरे लिए सुखप्रद हों।

प्रश्न : कौन अकेला विचरण करता है? कौन बार-बार उत्पन्न होता है? शीत की भेषज क्या है? और कौन बीज बोने का विशाल आधार है?

उत्तर : सूर्य अकेला विचरण करता है। चन्द्रमा बार-बार जन्म लेता है। शीत की दवा अग्नि है और पृथिवी बीज बोने का विशाल आधार है।

प्रश्न : सूर्य के समान ज्योति कौन-सी है? समुद्र के समान तालाब कौन-सा है? पृथिवी से बड़ा कौन है? और किसका परिमाण नहीं है?

उत्तर : सूर्य के समान ज्योति ब्रह्म है। समुद्र के समान तालाब अन्तरिक्ष है। पृथिवी से बड़ा सूर्य है और वाणी का परिमाण नहीं है।

हे विद्वानों के मित्र! यदि तुम यहाँ मन से स्थित हो, तो मैं तुम्हें पूछता हूँ, विष्णु (परमात्मा) ने जिन तीन पदों से क्रमण किया, क्या उन तीन पदों में सम्पूर्ण भुवन समा गया?

उत्तर : हे मनुष्यो! विष्णु (परमात्मा) कहते हैं—जिन तीन पदों में मैंने विश्व को व्याप्त किया है और जिन तीन स्थानों में समस्त विश्व आ गया, उन तीनों स्थानों में मैं व्याप्त हूँ। द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष और उससे ऊपर के लोकों को भी मैं एक मन के द्वारा ही जान लेता हूँ।

प्रश्न : हे ब्रह्मन्! परमात्मा किन पदार्थों में रमा हुआ है? और कौन पदार्थ ईश्वर में स्थापित है? यह मैं जिज्ञासापूर्वक तुम्हें पूछता हूँ।

उत्तर : हे जिज्ञासु! परमात्मा पंचभूतों तथा उनकी सूक्ष्म मात्राओं में व्याप्त है और वे पंचभूत तथा उनकी सूक्ष्म मात्राएँ परमात्मा में स्थापित हैं। यह प्रत्यक्ष जानता हुआ मैं तुम्हें उत्तर दे रहा हूँ।

प्रश्न : हे ब्रह्मन्! अनादि समय में संचित होने वाली कौन है? सबसे विशाल कौन है? चिकनी वस्तु क्या है? रूप को निगलने वाला कौन है?

उत्तर : अनादि समय में संचित होने वाली विद्युत है। महत्तत्त्व सबसे विशाल है। भूमि वृष्टि-द्वारा चिकनी होती है और रूप को निगलने वाली रात्रि है।

प्रश्न : हे विदुषी! कौन बार-बार रूप का आवरण करने वाली है? कौन बार-बार यवादि अन्नों के अवयवों को निगलने वाली है? कौन बार-बार न्यारी-न्यारी चाल चलता है! और कौन मार्ग में विविध प्रकार से जाता है?

उत्तर : हे मनुष्यो! जन्मरहित प्रकृति प्रलय-समय में विश्व के रूप

को बार-बार निगलने वाली है। सेही (शरीर पर काँटेदार एक जंगली जानवर जो भूमि को खोदकर पोली कर देती है) अन्नों का नाश कर देती है। वायु खरगोश के समान न्यारी-न्यारी चाल चलता है। मेघ मार्ग में विविध प्रकार से जाता है।

प्रश्न : हे ब्रह्मन् ! यज्ञान्त कितने प्रकार के हैं ? अक्षर कितने हैं ? होम करने योग्य वस्तुएँ कितने हैं ? समिधाएँ कितने प्रकार की हैं ? होता कितने हैं ? मैं तुमसे यज्ञ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पूछता हूँ।

उत्तर : यज्ञान्त छह हैं। अक्षर सौ हैं। होम करने योग्य वस्तुएँ अस्सी हैं। समिधाएँ तीन प्रकार की हैं। होता सात होते हैं। यह मैं तुम्हें यज्ञ का ज्ञान कराता हूँ।

प्रश्न : हे विद्वान् ! संसार की नाभि को कौन जानता है ? कौन द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष को जानता है ? बड़े सूर्यमण्डल के कारण को कौन जानता है ? और चन्द्रमा जिससे उत्पन्न हुआ है, उसको और चन्द्र लोक को कौन जानता है ?

उत्तर : हे जिज्ञासु ! इस संसार के कारण नाभि (मध्य भाग) परमात्मा को मैं जानता हूँ। द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष को मैं जानता हूँ। सूर्यमण्डल के कारण परमात्मा को मैं जानता हूँ और चन्द्रमा के उत्पन्न करने वाले परमात्मा तथा उससे उत्पन्न चन्द्रमा को मैं जानता हूँ।

प्रश्न : हे विद्वान् ! पृथिवी के परम अन्त को मैं तुमसे पूछता हूँ। ब्रह्माण्ड की नाभि को मैं तुमसे पूछता हूँ। अश्व का पराक्रम मैं तुमसे पूछता हूँ। वाणी के परमस्थान को मैं तुमसे पूछता हूँ।

उत्तर : यज्ञ की उत्तर वेदी ही पृथिवी की परम-सीमा है। यह यज्ञ (परमात्मा) ही ब्रह्माण्ड की नाभि है। प्रजापति का ओज ही अश्व का पराक्रम है। यह ब्रह्मा रूप ऋत्विज ही तीनों वेदरूप वाणी का परम स्थान है।

चतुर्विंश अध्याय

(सूक्त : १ से ४० तक)

ऋषि : प्रजापति।

(यहाँ जो पशु जिस देवता से सम्बन्धित या जिसके लिए हैं, उनमें उस देवता का गुण है, यह समझना चाहिए।)

अश्व प्रजापति की प्रसन्नता के लिए, अज अग्नि की प्रसन्नता के

लिए, श्वेत अज अश्विद्वय; कृष्णाश्वेता सोम और पूषा; श्वेत कृष्णाश्व अज सूर्य-यम, अधिकरोमाश्व त्वष्टा, श्वेत अज वायु, वामनाश्व विष्णु की प्रसन्नता के लिए है।

रक्त-धूमवर्ण और बेर-सदृश वर्ण अश्व सोम-सम्बन्धी, भूरा-लाल और भूरा-हरा वरुण-सम्बन्धी, गर्भस्थान पर श्वेत और अन्य स्थानों पर श्वेतरन्ध्र सविता-सम्बन्धी, श्वेत पद वृहस्पति सम्बन्धी, विचित्र वर्ण तथा छोटी या बड़ी बूंदों वाला अज मित्रा-वरुण सम्बन्धी है।

कृष्णग्रीव पशु अग्नि सम्बन्धी, कपिलवर्णी सोम, निम्नस्वभावी सविता देव, वत्सछायी सरस्वती, श्यामवर्णी पूषादेव विविधरूपा विश्वे-देवा, तथा वशा गौ द्यावापृथिवी सम्बन्धी है।

धूम्रवर्णी तथा भूरे वर्ण वाले पशु सोमयुक्त पितरों से सम्बन्धित हैं। कपिलवर्णी धूम्र के सदृश पशु कुशासनस्थ पितरों के सम्बन्धी कपिल और कृष्णवर्णी पशु अग्निस्नात नामक पितरों तथा कृष्णवर्णी बूंदों वाले पशु त्र्यम्बक नामक पितरों से सम्बन्धित हैं।

अग्नि सम्बन्धी कृष्ण वर्ण, सोम सम्बन्धी बभ्रु वर्ण और सविता सम्बन्धी उपध्वस्त पशु हैं। वत्सतरी सरस्वती, कृष्ण पूषा-सम्बन्धी, चितकबरे शुनासीर-सम्बन्धी, श्वेत वायु-सम्बन्धी तथा छाग सूर्य सम्बन्धी है।

कपिंजल चातक वसन्त के लिए, कलविंक चटक वर्षा-ग्रीष्म, तीतर वर्षा, बटेर शरद्, ककर हेमन्त के लिए तथा बिक्कर शिशिर के लिए हैं।

समुद्र के लिए शिशुमार जलचर, पर्जन्य के लिए मण्डूक, जलों के लिए मत्स्य, मित्र के लिए केकड़ा और वरुण के लिए कुलीरक नक्र हैं।

सोम के लिए हंस, वायु के लिए जल-कुक्कुट, वरुण के लिए चक्रवाक हैं।

अग्नि के लिए कुक्कुट, वनस्पति के लिए उलूक, अग्नि-सोम के लिए नीलकण्ठ, अश्विद्वय के लिए मयूर और मित्रा-वरुण के लिए कपोत हैं।

सोम के लिए बटेर, त्वष्टा को कुलीक, देवपत्नियों के लिए गोपादि, देवभगिनियों के लिए कुलीक और गृहपति के लिए प्रारुष्ण हैं।

अहन् देव के लिए कपोत, रात्रि के लिए सी चापू, दिन काल की सन्धि के लिए पात्र, मास के लिए कलकण्ठ और संवत्सर के लिए बड़े सुपर्ण हैं।

भूमि के लिए मूषक, अन्तरिक्ष के लिए पाङ्क्त और आकाश के

लिए काश हैं। दिशाओं के लिए नेवला, अन्तर्दिशाओं के लिए बभ्रुवर्ण वाले नेवले हैं।

विश्वमृग आदित्य-सम्बन्धी, ऊँट-चील-कण्ठस्तनयुक्त पशु मतिदेवी-सम्बन्धी, नील गौ अख्य-सम्बन्धी, रुरुमृग रुद्र-सम्बन्धी, मुर्गा-कलकट वाजिदेवों-सम्बन्धी, कोकिल कामदेव-सम्बन्धी है।

गैंडा विश्वेदेवा-सम्बन्धी; काला श्वान गधा-व्याघ्र राक्षस-सम्बन्धी; शूकर इन्द्र-सम्बन्धी, सिंह मरुद्गण-सम्बन्धी, कृकलास-पपीहा-शकुनि शख्यदेवी-सम्बन्धी और पृष हरिण विश्वेदेवा-सम्बन्धी हैं।

पञ्चविंश अध्याय

(सूक्त : १ से ४८ तक)

ऋषि : प्रजापति, गौतम।

हिरण्यगर्भ (परमात्मा) सृष्टि से पूर्व अकेले थे। सृष्टि के होने पर उसके अकेले ही पति हुए। उन्होंने अपनी शक्ति से उस पृथिवी और अन्तरिक्ष को धारण किया। उन्हीं हिरण्यगर्भ की प्रसन्नता के लिए हम हवि देते हैं।

ईश्वर ही जीवन देते हैं और उनके द्वारा ही पलक उठते-गिरते हैं। वे सब प्राणियों के स्वामी हैं। उन्हीं के लिए हवि देते हैं।

बर्फ से ढके पर्वत, नदियाँ, दिशाएँ और समुद्र जिनकी महिमा प्रकट करते हैं, उनकी भुजाएँ ही संसार-पालिका हैं। उन्हीं देव के लिए हम हवि देते हैं।

जो देह में प्राण-संचार करता है, जो बल देता है, सब प्राणी जिसकी उपासना करते हैं, सभी देव जिसके अधीन हैं, जिसकी छाया का स्पर्श मुक्तिदाता है और जिसे न जानना ही जन्म-मरण का कारण है, उसी देव को हम हवि देते हैं।

सर्वत: विघ्नरहित अक्षम मन वाले हम कल्याणकारी यज्ञों को करें, जिससे देवगण प्रतिदिन हमें समृद्ध करें।

सरल देवों की कल्याणकारिणी मति हमारे अभिमुख हो। उन देवों का दान हमारे सम्मुख उपस्थित हो। देवता हमारी आयु-वृद्धि करें।

पूर्वकाल में स्वयं उत्पन्न अच्युत, भग, मित्र, अदिति, सोम और अश्विद्वय को हम पुकारते हैं. वे हमें सुख दें।

वायु हमें सुखकारी ओषधियाँ दे। पृथिवी हमें सुखकारिणी भेषज

दे। स्वर्ग हमारे लिए सुखकारी जल दे। सोमाभिषव करने वाले पाषाण हमारे लिए सुखकारी ओषधि रूप हों। सबके आश्रय रूप अश्विनीकुमार हमें सुख दें।

जो सबके स्वामी हैं और जिनकी प्रेरणा से ही सब चैतन्य होते हैं, हम उन रुद्र देव का आह्वान करते हैं।

इन्द्र हमारा कल्याण करें। पूषा, गरुड़ और वृहस्पति हमारा कल्याण करें।

अदिति-पुत्र, मरुद्गण और विश्वेदेवा हमारे द्वारा दी गयी हवि को ग्रहण करने यज्ञ में आयें।

हे देवो। हम दृढ़ शरीर वाले होकर और पुत्रादि सम्पन्न होकर तुम्हारी स्तुति करें। हम अपने कानों से कल्याणकारी बातों को सुनें; नेत्रों से सुख को ही देखें और देवताओं की उपसना में लाने वाली आयु को प्राप्त करें।

हे देवो ! हम तब जरावस्था को प्राप्त हों, जब हमारे पुत्र सन्तानवान् होकर पिता बन जायँ। हमारा जीवन सौ वर्ष का हो।

हम अपने यज्ञ में जिस सूर्योत्पन्न अश्व का चरित्र करेंगे, उससे हमारी निन्दा, मित्र, वरुण, अर्यमा, आदित्य, वसुगणादि न करें।

जब ब्राह्मण स्नानादि से संस्कृत अश्व को घृत-हवि देते हैं, तब अज-अश्व इन्द्र और पूषा को तुष्ट करता है।

यह अज-अश्व जब प्राप्त किया जाता है, तब प्रजापति उसे श्रेष्ठ यश की प्राप्ति कराते हैं।

ऋत्विज उस यज्ञीय अश्व की तीन परिक्रमा करते हैं। तब वह अज-अश्व यज्ञ को प्राप्त होता है।

हे ऋत्विजो ! तुम उस श्रेष्ठ हवि और दक्षिणा वाले अश्वमेध-यज्ञ के द्वारा उत्कृष्ट जल वाली नदियों को पूर्ण करो।

ऋत्विज यज्ञ-कर्म कुशलतापूर्वक करते हैं, उनका वह कर्म हमें तृप्त करने वाला हो।

मननीय-श्रेष्ठ-फल स्वयं हमें मिले। उस हमारे प्राप्त फ़ल की सभी इच्छा करते हैं। हमने यह देवों का मित्र अश्व बनाया है। सभी विद्वान् हमारे इस कर्म का अनुमोदन करें।

विशेष टिप्पणी : यहाँ से आगे के पन्द्रह मन्त्रों में अश्वमेध यज्ञ के अश्व के बलिदान का वर्णन किया गया है। यह बलिदान वास्तविक अश्व का नहीं है, बल्कि यहाँ अश्व को 'अज' यानी अजन्मा कहते हुए

रूपक अलंकार के द्वारा वर्णन किया गया है, यथा अथर्ववेद में कहा गया है कि देवों ने साध्य अश्वमेध यज्ञ 'अश्वरूप हवि' से किया। उसमें वसन्त ऋतु उस यज्ञ का घृतरूप हुई। ग्रीष्मर्तु समिधारूप हुई और शरद् ऋतु पुरोडाश रूप हुई। १९/६/६७

इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा गया है—'हे अश्व ! स्वर्ग तुम्हारी पीठ और पृथिवी तुम्हारे पाँव है। अन्तरिक्ष तुम्हारी आत्मा और समुद्र तुम्हारी उत्पत्ति का स्थान हैं।'—यजुर्वेद—१९/२०

इस अवमेध यज्ञ के सम्बन्ध में बृहदारण्यक उपनिषद में लिखा है—"उषा इस अश्व का शिर रूप है। सूर्य नेत्र रूप, वायु प्राण रूप, अग्नि मुख रूप, संवत्सर आत्म रूप, द्युलोक पृष्ठ रूप और अन्तरिक्ष इसका उदर रूप है। पृथिवी इसके पैर रखने के स्थान के रूप में है। दिशाएँ इसका पार्श्व रूप, अवान्तर दिशाएँ पसली रूप, ऋतुएँ अंग रूप हैं। मास-अर्धमास इसके अंगों के जोड़ हैं। दिन और रात्रि इसके चरण रूप हैं। वृहदारण्यक है—१/१

इस प्रकार यह समझ लेना चाहिए कि इसी अध्याय में अथवा अन्यत्र जहाँ भी अश्व का, अश्व के अंगों का वर्णन है, वहाँ भौतिक अश्व से तात्पर्य नहीं, वह अज-अश्व है। यानी सर्वव्यापक परमात्मा का ही अश्व के रूपक से वर्णन है।

षड्विंश अध्याय

(सूक्त : २ से २६ तक)

ऋषि : याज्ञवल्क्य, लौंगाक्षि, रम्याक्षी, आदि।

अनुकूल गुण वाले अग्नि और पृथिवी मेरा अभीष्ट पूर्ण करें। वायु और अन्तरिक्ष मेरी कामनाएँ फल-संगत करें। आदित्य, स्वर्ग, जल और वरुण मेरी कामनाओं को फल से अभिन्न करें। हे परमात्मा ! तुम देवों के आश्रय हो, मेरी कामनाएँ पूर्ण करो।

चारों वर्णों के लिए यह वाणी कहता हूँ। इसके द्वारा देवों को दक्षिणा देने वालों का प्रिय हूँगा। मेरा यह अभीष्ट सफल हो और मेरा अमुक कार्य सिद्ध हो जाय।

हे वृहस्पति ! तुम सत्य से प्रकट हुए हो। हम यजमानों को धन दो।

इन्द्र यहाँ यज्ञ में आयें और सोम का पान करें। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है। मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए इस स्थान पर स्थापित करता हूँ।

हे इन्द्र ! तुम यहाँ आओ और स्तुतियों-सहित निवेदित सोम पियो। हे ग्रह ! मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करके स्थापित करता हूँ।

अविनाशी अग्नि की हम स्तुति करते हैं। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। अग्नि की ही प्रसन्नार्थ तुम्हें तुम्हारे इस स्थान पर स्थापित करता हूँ।

अग्नि देवता की मति से हम प्रतिष्ठित हों। वे ज्ञानाग्नि द्वारा उत्पन्न हुए विश्व को देखते हैं और सूर्य के समान कीर्तिमान होकर वर्षा आदि करते हैं।

अग्नि हमारी रक्षा के लिए दूर देश से भी आएँ।

यज्ञ में स्थापित महान् अग्नि की हम स्तुति करते हैं। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो। अग्नि की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें तुम्हारे इस स्थान पर स्थापित करता हूँ।

महान् इन्द्र हमें सुख दें और हमारे द्वेषी को नष्ट करें।

हे यजमानो ! प्रभुत्व से सबको दबाने वाले, तुम्हारी हवि से तृप्त इन्द्र को हम प्रसन्न करते हैं।

वृहत्साम से अग्नि की प्रार्थना करो कि हे अग्नि ! तुम श्रेष्ठ धन देने वाले हो। तुम हमें अभीष्ट धन दो।

सब ऋतुएँ हमारे यज्ञ को समृद्ध करें। सब मास हमारे हविरन्न की रक्षा करें और संवत्सर यज्ञ को पूर्ण करें तथा हमारी सन्तान की रक्षा करें।

पर्वतों के समीप, नदियों के संगम पर तथा पवित्र स्थानों पर अपने साधन और बुद्धि से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है।

हे सोम ! आपके रस रूप अन्न से उत्पन्न श्रेष्ठ पुत्रादि-युक्त सुख और कीर्ति रूपी धन को भूमि ग्रहण करती है।

हे सोम ! तुम कीर्ति रूप धन के ज्ञाता और यश के योग्य हो, अतः इन्द्र, वरुण, मरुद्गण की तृप्ति के लिए आहुत किये जाने के योग्य हो।

हे प्रभो ! हमें सब धनों को प्राप्त कराओ। हम दानशील उपासक धनों का सदुपयोग करें।

हे देव ! हम वीर पुत्र पायें। हम गौओं और अश्वों से युक्त हों तथा हमारे ऐश्वर्य, मनुष्य और पशु पुष्टि प्राप्त करें।

हे अग्नि ! हमारे यज्ञ की प्रशंसा करो। ऋतु की अधिष्ठात्री देवता

के साथ यज्ञ में सोमपान करो।

हे ऋत्विजो ! अग्नि सोमपान की कामना करते हैं, अतः यजन करो। सोम की ओर गमन करो।

हे देवांगनाओ ! इस यज्ञ में अपने घर के समान चली आओ और कुशासनस्थ हो, परस्पर वार्तालाप करती हुई तृप्त होओ।

हे सोम ! तुम सुस्वादु-धारासहित द्रोणकलश में जाओ। तुम इन्द्र के पानार्थ ही निष्पन्न हुए हो।

हे सोम ! देवों द्वारा राक्षसों का नाश कराने वाले तुम द्रोण कलश में जाते और यज्ञस्थान में स्थित होते हो।

सप्तविंश अध्याय

(सूक्त : १ से ३५ तक)

ऋषि : अग्नि, प्रजापति, हिरण्यगर्भ, वसिष्ठ।

हे अग्नि ! वर्ष, ऋतु, संवत्सर और ऋषि तुम्हें मन्त्रों से प्रवृद्ध करें। तुम सब दिशाओं को दीपित करो।

हे अग्नि ! तुम प्रदीप्त होकर यजमान को यज्ञार्थ प्रेरित करो और सौभाग्यशाली बनाओ। तुम्हारे भक्त यश गायें।

हे अग्नि ! ब्राह्मण तुम्हारा वरण करते हैं, तुम हमारे लिए कल्याण-कारी होओ, शत्रुओं का नाश करो और हमारी रक्षा करो।

हे अग्नि ! यजमान का धन पुष्ट करो। याज्ञिक तुम्हारी अवज्ञा न करें। क्षत्रिय तुम्हारे लिए वश करने योग्य हों। तुम्हारा उपासक नाश को प्राप्त न हो।

हे अग्नि ! तुम क्षत्रिय यजमान के द्वारा यज्ञारम्भ कराओ। सूर्य से सुसंगत हो यज्ञ सम्पन्न करो। हे अग्नि ! तुम समानजन्माओं के मध्य रहते हो। तुम यज्ञ में आओ और प्रदीप्त होओ।

हे अग्नि ! दुरानागियों को वश में करो, पापों को दूर करो और हमें वीर पुत्र तथा श्रेष्ठ धन दो।

हे अग्नि ! तुम अपराजेय, सर्वज्ञ, अच्युत और महा बलवान् हो। यज्ञ कर्म में लगो और हमारा अभीष्ट पूर्ण करो।

हे वृहस्पति ! हे सविता देव ! यजमान को यज्ञ-कर्म में प्रेरित करो। इसे सौभाग्यशाली बनाओ।

हे वृहस्पति ! हमें परलोक-भय, यमराज के भय, मृत्यु-भय तथा इस जन्म एवं पूर्व जन्मों के अभिशाप से छुड़ाओ।

इस लोक से परे स्वर्ग-लोक को देखते हुए तथा सूर्य-लोक में सूर्य के दर्शन करते हुए हम ज्योति-स्वरूप हो गये।

यजमानों के द्वारा प्रकट किये गये अग्नि की रश्मियाँ समिधाओं से ऊर्ध्वगामिनी होती हैं।

अविनाशी, प्राणवान्, देव श्रेष्ठ अग्नि मधुर-घृत से यज्ञ के मार्ग को सींचें।

हे अग्नि ! ऋत्विजों से स्तुत तुम सबके वरणीय हो। तुम यज्ञ को मधुर करते हो।

यज्ञ कर्मरत याज्ञिक अध्वर्यु घृत-हवि-सहित अग्नि के निकट जाते हैं।

यज्ञ कर्म स्थित अध्वर्यु चैतन्यप्रद अन्नवान् अग्नि की उपासना करते हैं।

दिव्य द्वार जब अग्नि कर्म को धारण करते हैं। तब सभी देवता अग्नि-व्रत धारण करते हैं।

अग्नि की अनुगामिनी दिन-रात्रि यज्ञ को गार्हपत्य-अग्नि से संगत करें।

दिव्य होता अग्नि और वायु हमारे यज्ञ का सम्पादन करें। अग्नि ज्वालाएँ ऊर्ध्वगामी हों।

इन्द्रा, भारती और सरस्वती देवियाँ यज्ञ में कुशासनस्थ हों।

त्वष्टा श्रेष्ठ सामर्थ्य वाले धन को हमें शीघ्र प्राप्त कराएँ।

अग्नि हवियों का संस्कार करने वाले हैं। हे वनस्पति ! देवरूप होकर तुम हवियों का हवन करो।

हे सर्वज्ञ अग्नि ! इन हवियों को इन्द्र को तथा विश्वेदेवाओं को प्राप्त कराओ।

वायु के अश्वारूढ़ होने पर ऋत्विज सन्तान देने वाले श्रेष्ठ यज्ञ-कर्म करते हैं।

द्यावापृथिवी ने जलरूपी धन को प्राप्त करने के लिए वायु को प्रकट किया। वाणी ने वायु को धारण किया। वायु को नियुक्त अश्व वहन करते हैं।

प्रजापति ने हिरण्यगर्भ अग्नि को प्रकट किया तो वे जलमय संसार में व्याप्त हो गये। उन्हीं से सब देवताओं की आत्मा प्रकट हुई। हम प्रजापति रूप एकात्म ब्रह्म को हवि देते हैं।

जिस ब्रह्म ने प्रजापति अग्नि को धारण करने वाले जलों को देखा और जो देवताओं के एकमात्र स्वामी हैं, उन ब्रह्म के लिए हम हवि देते हैं।

हे वायु ! तुम अश्व पर आरूढ़ हो, यजमान के पास आते हो। अतः उसी वाहन से हमारे लिए धन लाओ।

हे वायु ! तुम शत-सहस्र वाहनों से हमारे यज्ञ में आओ। इस तृतीय सवन में तृप्त हो, अपने साधनों से हमारी रक्षा करो।

हे वायु ! तुम अश्वारूढ़ हो यज्ञस्थान में आओ। यह शुक्र तुम्हारे लिए उपस्थित है।

हे वायु ! यज्ञों में रस का सारभूत यह शुक्र प्रमुख है। यह तुम्हारे लिए प्रस्तुत है। आओ और सोमपान करो।

यज्ञ द्वारा तृप्त होने वाले वायु अश्व पर चढ़कर सोमपानार्थ यज्ञ में आयें।

हे वायु ! तुम्हारे सहस्रों रथ हैं। उनमें अश्वों को योजित कर सोमपानार्थ यज्ञ में आओ।

हे वायु ! तुम आत्मसमृद्धि रूप हो। तुम एक, दो, तीन, दस, बीस, तीस अश्वों के द्वारा जिन यज्ञ-पात्रों को धारण करते हो, उन्हें इस यज्ञ में छोड़ो।

हे वायु ! तुम सत्य के स्वामी और अद्भुत रूपवान् हो। हम वायु की कृपा से पोषण पाएँ।

हे इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। जैसे बिना दुही गौ बछड़े को चाहती है, वैसे हम तुमसे पुष्टि को चाहते हैं।

अष्टाविंश अध्याय

(सूक्त : १ से ७६ तक)

ऋषि : बृहदुक्थ, वामदेव्य।

दिव्य-होता समिधाओं से इन्द्र का यजन करे, इन्द्र हवि ग्रहण करें। पृथिवी पर गार्हपत्याग्नि रूप से, अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप से और स्वर्ग में आदित्य रूप से अग्नि प्रज्वलित होते हैं।

दिव्य होता अजेय हवियों द्वारा इन्द्र को तृप्त करने के लिए यज्ञ करें। इन्द्र हविरूप घृत का पान करें।

होता प्रयाज देवता सहित इन्द्र का यजन करें। वज्रधारी इन्द्र घृतपान द्वारा तृप्त हों।

दिव्य होता ने बलदान्, यजमान हितैषी इन्द्र को कुशासन पर प्रतिष्ठित करके इन्द्र का पूजन किया। गण के साथ कुशासन पर बैठ घृतपान किया था।

साधनों के द्वारा देवताओं ने इन्द्र की वृद्धि की। वे इन्द्र दुष्ट पशुओं और हिंसकों तथा बाधाओं को दूर करें और धन देने के लिए घृतपान करें। हे होता! तुम भी इस उद्देश्य से यज्ञ करो।

उषा और नक्त देवता यज्ञ के अवसर पर इन्द्र को आहूत करें। वे यजमान को धन-लाभ कराने के निमित्त यज्ञ में घृतपान करें। हे होता! तू इस अभिप्राय से यज्ञ कर।

अहोरात्र की अधिष्ठात्री देवियाँ इन्द्र को प्रवृद्ध करती हुई यजमान को धन देती हैं। वे घृतपान करें। हे होता! इसी अभिप्राय से यजन करो।

अन्न और जल से परिपूर्ण दोनों देवियाँ दुग्ध के द्वारा इन्द्र की वृद्धि करती हैं। अतः ये दोनों घृतपान करें। हे होता! तुम इसी उद्देश्य से यजन करो।

दिव्य होताद्वय ने इन्द्र को प्रवृद्ध किया था। वे यजमान को धन देने के निमित्त यज्ञ में घृतपान करें। हे होता! इसलिए तुम यजन करो।

भारती, इन्द्रा और सरस्वती ने इन्द्र को प्रवृद्ध किया था। ये तीनों धनदान एवं सुस्थिति दान के लिए घृतपान करें। हे होता! इसीलिए तुम यजन करो।

जिस यज्ञ में देवों की प्रशंसा होती है, वह यज्ञ ऋक्, साम और यजुः से संयुक्त होकर इन्द्र की वृद्धि करता है और सैकड़ों गौओं के द्वारा वहन किया जाता है। इस यज्ञ के होता मित्रा-वरुण और स्तोता वृहस्पति यजमान को धन देने और सुस्थिति देने को यज्ञ में घृतपान करें। इसीलिए हे होता! तुम यजन करो।

वनस्पति देवता ने इन्द्र को प्रवृद्ध किया। वे वनस्पति देव यज्ञ में घृतपान करें और यजमान की धन-वृद्धि करें। हे होता! तुम इस अभिप्राय से ही यज्ञ करो।

अनुयाज देवता इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं। वे यज्ञ में घृतपान करें

और यजमान को धन तथा सुस्थिति दें। हे होता ! तुम इसी निमित्त यज्ञ करो।

अग्नि ने इन्द्र को प्रवृद्ध किया। वे आज हमें इष्ट फल दें और यजमान को धन तथा सुस्थिति दें तथा इसी निमित्त यज्ञ में घृतपान करें। हे होता ! इसी निमित्त यज्ञ करो।

यह यजमान पाक-योग्य चरु का पाक कर रहा है और होता कर्म में अग्नि का वरण कर रहा है। वनस्पति देवता ने परिपक्व हवि को ग्रहण कर इन्द्र की वृद्धि की। आज यह यजमान अग्नि का वरण कर रहा है।

दिव्य होता ने गायत्री छन्द, इन्द्रिय-बल और वायु की इन्द्र में स्थापना की : वरणीय यज्ञ में प्रयाज देवता इन्द्र के साथ घृतपान करें, हे होता ! इसी अभिप्राय से यजन करो।

दिव्य होता ने अदिति-पुत्र इन्द्र का पूजन किया। तब उष्णिक् छन्द युक्त इन्द्रिय, गौ और आयु की यजमान में स्थापना हुई। वे इन्द्र यज्ञ में घृतपान करें, हे होता ! तुम इसी हेतु यज्ञ करो।

दिव्य होता ने सोम से प्रसन्न होने वाले इन्द्र का यजन किया। प्रयाज देवता ने अनुष्टुप् छन्द, इन्द्रिय, गौ और पूर्णायु की स्थापना की। वे इन्द्र घृतपान करें, हे होता ! इसी हेतु तुम यजन करो।

दिव्य होता ने आयुदाता इन्द्र का पूजन किया। बर्हि देवता वृहती छन्द, बल, गौ, आयु की स्थापनापूर्वक घृतपान करें। हे होता ! तुम इस हेतु यज्ञ करो।

दिव्य होता ने इन्द्र का यज्ञ किया। प्रयाज देवता पंक्ति छन्द, बल, गौ, आदि की स्थापनापूर्वक घृतपान करें, हे होता ! इसी हेतु यज्ञ करो।

दिव्य होता ने नक्त एवं उखा देवियों के द्वारा इन्द्र का यजन किया। वे दोनों देवियाँ त्रिष्टुप् छन्द, बल और गौ तथा आयु की यजमान में स्थापना करें, यज्ञ में घृतपान करें, हे होता ! तुम इसी निमित्त यज्ञ करो।

दिव्य होता ने दोनों होताओं के साथ आयुदाता इन्द्र का यज्ञ किया। वे दोनों दिव्य होता जगती छन्द, बल, गौ, आयु की स्थापना यजमान में करें और हवि घृत पियें, इसी हेतु हे होता ! यजन करो।

दिव्य होता ने इडा, सरस्वती, भारती और इन्द्रा का यजन किया। वे सब विराट् छन्द, बल, गौ, आयु की स्थापना यजमान में करें और

यज्ञ में हवि-घृत का पान करें, इसी हेतु हे होता ! यज्ञ करो ।

दिव्य होता ने वीर्यवान् त्वष्टा और इन्द्र का पूजन किया । वे त्वष्टा द्विपदा छन्द, बल, गौ, आयु को यजमान में स्थापित करें और यज्ञ में घृतपान करें, इसीलिए हे होता ! तुम यज्ञ करो ।

दिव्य होता ने वनस्पति और इन्द्र का यज्ञ किया । वे वनस्पति देव ककुप् छन्द, बल, वृषभ और आयु की स्थापना यजमान में करें और घृत पियें, अतः हे होता ! यज्ञ करो ।

दिव्य होता ने अग्नि, इन्द्र और प्रयाज देवता का यज्ञ किया । वे अतिछन्दस छन्द, बल, गौ, आयु की स्थापना यजमान में करें और यज्ञ में घृत पियें, हे होता ! यज्ञ करो ।

बर्हि ने आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध किया । बर्हि, गायत्री छन्द, बल, गौ आदि को यजमान को दें और घृत पियें अतः हे होता ! यज्ञ करो ।

उष्णिक् छन्द के द्वारा देवी प्राण-बलादि की स्थापना यजमान में करती और इन्द्र-पूजन करती हैं, अतः वे यजमान को धन-लाभ कराने हेतु यज्ञ में घृत पियें, हे होता ! यजन करो ।

एकोनत्रिंश अध्याय

(सूक्त : १ से ६० तक)

ऋषि : बृहदुक्थ, वामदेव्य, जमदग्नि, भरद्वाज ।

हे अग्नि ! तुम सुदीप्त होकर बुद्धिमानों के हृद्गत भावों को प्रकट करते एवं घृतपान करते हुए प्रसन्न होते हो । तुम देवों की हवि को देवों तक पहुँचाते हो ।

देवों के मार्ग को घृतसिंचित करता हुआ यह यज्ञ देवों तक पहुँचे । हे अश्वरूप यज्ञ ! तुमको दिशास्थ प्राणी जाता हुआ देखें । यज्ञ यजमान को अन्न प्रदान करे ।

हे वेगवान् अश्वरूप यज्ञ ! तुम स्तुत्य एवं नमस्कार्य हो । वसुओं से प्रीति करते हुए अग्नि तुम्हें देवों तक ले जाए ।

हे अग्नि ! तुम अरणियों से उत्पन्न होकर प्रजापति के द्वारा प्रवृद्ध होकर यज्ञ को धारण करते हो । तुम स्वाहाकार युक्त होमी गयी हवियों द्वारा आचमन करो, जिससे देवता हमारी हवियों को प्राप्त करे ।

हे अश्वरूप अग्नि ! परमात्मा के द्वारा अन्तरिक्ष से प्रथम उत्पन्न

किये गये वायु के समान जब तुम शब्द करते हो, तब हरणशील तुम्हारी अर्चिरूप भुजाएँ श्येन पक्षी के समान वेग से निकलती हैं, तुम्हारा यह कर्म स्तुति-योग्य है।

वसुओं ने अग्नि रूप अश्व को सूर्य-मण्डल से निकाला। फिर यम (अन्तरिक्ष) द्वारा प्रदत्त इस अश्व को वायु ने कार्य-नियुक्त किया। देव प्रधान इन्द्र इस पर चढ़े और गन्धर्व ने इसकी लगाम पकड़ी।

हे वेगवान् अश्व ! तुम गुप्त कर्म द्वारा यज्ञ, आदित्य और इन्द्र के तीनों स्थानों में स्थित हो। तुम सोम के साथ एकाकार हुए हो। ऋक्, यजुः, साम ये तीन तुम्हारे बन्धन हैं।

हे अश्व ! सूर्य-मण्डल तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है। स्वर्ग में तुम्हारे तीन बन्धन हैं और अन्तरिक्ष में भी तीन बन्धन हैं।

हे अश्व ! मैं तुम्हारे स्थानों को देखता हूँ। तुम्हारे द्वारा आक्रान्त स्थानों को भी देखता हूँ। तुम्हारी कल्याणकारिणी रज्जु को भी देखता हूँ, जो कि यज्ञ के साधन तुम्हारी रक्षा करती है।

हे अश्व ! नीचे आकाश-मार्ग से सूर्य की ओर गमन करते हुए तुमको मैं मन से जानता हूँ। सुखपूर्वक गमन करने योग्य तथा उपद्रव रहित मार्गों से जाते हुए सूर्य रूप वाले तुम्हें मैं देखता हूँ।

हे अश्व ! तुम्हारे यज्ञ की इच्छा वाले रूप को मैं सूर्य-मण्डल में भली प्रकार देखता हूँ। जब यजमान तुम्हारे लिए हवि भेंट करता है, तब उस ओषधि रूप हव्यन्न को तुम भक्षण करते हो।

हे अश्व ! (वायु के) रथ में जब तुम जुड़ जाते हो, तो सारथी (दीप्तियाँ) तुम्हारा अनुगमन करते हैं। गौए (अर्थियाँ) तुम्हारा अनुसरण करती हैं। मनुष्यों ने तुम्हारे मित्र भाव को पाया है और देवता तुम्हारे पराक्रम को जानने वाले हैं।

स्वर्ण के समान कान्ति वाले अश्व (अग्नि) पर (विद्युत् रूप) इन्द्र आरूढ़ होते हैं। अश्व के चरण मन-सदृश वेगवान् हैं। देवगण इस अश्व को प्राप्त करते हैं।

जब भीतर से पुष्ट और बाहर से कृश निरन्तर गतिशील सूर्य के रथ के अश्व पंक्तिबद्ध होकर चलते हैं, तो वे स्वर्ग को व्याप्त करते हैं।

हे अश्व ! तुम्हारा देह प्रकाशमान और मन वायु के समान वेगवान् है। तुम्हारी दीप्तियाँ दावानल रूप से वनों में फैलती हैं।

देवताओं की ओर जब गमनशील अन्नवान और मन के समान

वेगवान् यह अश्व गमन करता है, तो स्तोता ऋत्विज इसकी स्तुति करते हैं।

जब यह अश्व (अग्नि रूप अश्व) माता-पिता के परम स्थान दिव्य लोक को प्राप्त हो, तो हे अश्व! देवगण तुम्हें उपयोग्य वस्तुएँ प्रदान करें।

हे मित्र, हितैषी अग्नि! तुम प्रदीप्त होकर यजमान के ग्रहों में देवों को बुलाओ, क्योंकि तुम यह कार्य करने वाले देवदूत हो। तुम यज्ञ के भाग को देवों को वहन करते हो।

हे अग्नि! तुम्हारी ज्वालारूप जिह्वाएँ श्रेष्ठ हैं। तुम यज्ञ के गमन-योग्य पथ को मधुर-रस से सींचो और यज्ञ को देवों को प्राप्त कराओ।

हम यज्ञों में पूज्य प्रजापति की महिमा की स्तुति करते हैं। श्रेष्ठ-कर्म वाले बुद्धिमान् देवगण हवियों का भक्षण करते हैं।

समान मन वाली नारियों के समान दो धनुष्कोटियों वाला धनुष दोनों धनुष्कोटियों के बीच में बाण धारण करके टंकार करती है। हे धनुषकोटि! तुम शत्रुओं को तिरस्कृत करो।

यह तरकस अनेक बाणों का रक्षक है। पिता रूप इसके आश्रय में बाण पुत्र रूप में रहते हैं। युद्ध में यह तरकस चीत्कार करता है और आदेश मिलने पर रणभूमि में वीरों को विजय प्राप्त कराता है।

अश्व रथ को वहीं ले जाते हैं, जहाँ सारथी चाहता है। वह लगाम भी प्रशंसनीय है; जो पीछे रहकर भी अश्वों के मन को वश में रखती है।

जिनके हाथों में अश्वों की लगाम है, वे पुरुष घोर शब्द करते हैं। अश्व रथों में चलते हुए शत्रुओं को खरों से रौंदते हैं और स्वयं अहिंसित रहते हुए शत्रुओं की हिंसा करने में समर्थ होते हैं।

वहन करने वाले इस रथ में वीर के कवच और आयुध रखे हैं। इस रथ को हम सुरक्षित स्थान में स्थापित करें।

जो रथ सुखपूर्वक बैठने योग्य, आयुधधारक एवं रक्षक, संकट काल में सेवन से पूर्व दृढ़, विचित्र सेनायुक्त, बाणरूप शक्ति से स्वशक्त, उग्र और विशाल उसमें हम स्थित हों।

जो बाण सुन्दर रक्षा करने वाला है, उसके फाल शत्रुओं को खोजते हैं। वह सन्नद्ध बाण शत्रुओं पर गिरता है। वीर पुरुष जहाँ जाते हैं, उस युद्धभूमि में वह बाण हमारा कल्याण करे।

हे ऋजुगामी बाण। तुम हमको छोड़ अन्यों पर गिरो। हमारा

शरीर पाषाण-सदृश दृढ़ हो जाय। सोमदेव हमारी प्रार्थना का अनुमोदन करें। माता अदिति हमारा कल्याण करें।

हे अश्व प्रेरक चाबुक! तुम रण क्षेत्र में अश्वों को प्रेरित करो। तुम्हारे द्वारा ही अश्वचालक अश्वों के मांसल प्रदेशों और कटि प्रदेश में चोट करते हैं।

वनस्पति-काष्ठ से निर्मित यह रथ सुदृढ हो। हमारा सखा रूप यह हमें संग्राम जिताए। यह कर्मपरायण और वीर से युक्त हो। हे रथ! तेरा रथी जीतने योग्य शत्रु-धनों को जीतने में समर्थ हो।

हे दुन्दुभि! तुम द्यावापृथिवी को गुँजा दो। तुम्हें विश्व जाने। तुम इन्द्र तथा अन्य देवों के प्रीति पात्र हो। हमारे शत्रुओं को दूर भगाओ।

हे दुन्दुभि! तुम्हारे शब्द को सुन शत्रु सेना रोने लगे। तुम हमें तेज दो, हमारे पापों को दूर करो। दुष्ट शत्रुओं को हमारी सेना के समीप रह दूर करो। तुम इन्द्र की सृष्टि हो, हमें सुदृढ़ करो।

हे इन्द्र! इस शत्रु-सेना को सर्वत: दूर करो। यह दुन्दुभि घोर शब्द कर रही है, अतः हमारी सेना विजय श्री लेकर ही लौटे; हमारे शीघ्रगामी अश्ववा विजयी हों।

त्रिंश अध्याय

(सूक्त : १ से ३० तक)

ऋषि : नारायण, मेधातिथि, सविता, परमेश्वर।

हे सविता देव! हमारे यज्ञ से हमारी ऐश्वर्य वृद्धि की कामना पूर्ण कीजिए। यज्ञ-देवता हमें यज्ञ की सामर्थ्य दें। गन्धर्व देवता हमें ज्ञान दें।

हे सविता देव! हमारे पापों को दूर करो और हमारा कल्याण करो।

हे सविता देव! हम तुम्हारे तेज का ध्यान करते हैं। हमारी बुद्धियों को सत्कर्म में प्रेरित करो।

अद्भुत धनों के धारक और मनुष्यों के कर्म-द्रष्टा सविता को हम यज्ञ में बुलाते हैं।

ब्राह्मण को परमात्म सेवनीय है। क्षत्रिय को वीर कर्म, वैश्य को मरुद्गण, शूद्र को सेवा, चोर को अन्धकार, नपुंसक को पापाचरण, व्यभिचारिणी को कामाचार सेवनीय हैं।

हे परमेश्वर ! नृत्य के लिए सूत को; गीत के लिए नट को, धर्म-रक्षा के लिए सभापति को, कोमलता के लिए स्तुति करने वाले को; आनन्द भोगने के लिए स्त्री से मित्रता रखने वाले पति को; बुद्धि के लिए कारीगर को, धीरज के लिए महीन काम करने वाले बढ़ई को उत्पन्न कीजिए और अति दुष्ट नरों की गोष्ठी में प्रवृत्ति को तथा विवाह से पहले व्यभिचार को निवृत कीजिए ।

हे परमेश्वर ! बर्तन पकाने के ताप को झेलने के लिए कुम्हार को; बुद्धि बढ़ाने के लिए शोभनकर्मा को, सुन्दर स्वरूप बनाने के लिए मणि बनाने वाले को, शुभाचरण के लिए गुणों को बोने वाले को, बाण बनाने के लिए बाणकर्त्ता को, हथियार बनाने के लिए आयुधकर्त्ता को उत्पन्न कीजिए तथा मृत्यु प्राप्त कराने वाले व्याघ्र को, हमसे और समाज से दूर हटाइए ।

हे परमेश्वर अथवा राजा ! नदियों को बिगाड़ने वाले धानुक को, और हिंसक प्रवृत्ति वाले अभिमानी को, और पिशाचों से माँ को पृथक् कीजिए ।

काम-क्रीड़ा में प्रकृत अविवाहित ज्येष्ठ भ्राता को अनुज-वधू से; ज्येष्ठ भाई को बाँट न देने वाले छोटे भाई को, साली से जीजा को, काम को चेतन करने वाली दूती को, उत्तम कार्यों से हटाने वाले साथी को पृथक कीजिए ।

हे परमेश्वर अथवा राजा ! नाश करने को प्रवृत्त कुबड़े को; प्रबल कामादि के आनन्द के लिए बौने को, सोने के लिए अन्धे को और धर्माचरण के लिए बहरे को पृथक् कीजिए तथा रोग निवृत्ति के लिए वैद्य को, ज्ञान बढ़ाने के लिए उत्तम विषयों के ज्ञाता को, विद्या-ग्रहण के लिए प्रश्नकर्त्ता को; वेदादि की विद्या ग्रहण करने के लिए बहुत प्रश्न करने वाले को और न्याय-अन्याय की व्यवस्था करने के लिए न्याय-अन्याय-वेत्ता को उत्पन्न कीजिए ।

हे ईश्वर अथवा राजन् ! प्राप्ति कराने वालों के लिए हस्ति-रक्षक को; वेग के लिए अश्वशिक्षक को, पुष्टि के लिए गौ-पालक को, वीर्य बढ़ाने के लिए गड़रिए को तेज वृद्धि के लिए बकरे के रक्षक को, अन्न के लिए सोम रस को, धर्म-अर्थ-काम के लिए धन-धारण-कर्त्ता को और अध्यक्षों के स्वत्व के लिए अनुकूल सारथि को उत्पन्न कीजिए ।

हे परमेश्वर अथवा राजा ! दीप्ति के लिए लकड़ी लाने वाले को, कान्ति के लिए अग्नि को, सुख विशेष के लिए परोसने वाले को, विद्वानों

के दर्शन के लिए विद्याओं के ज्ञाता को प्रकट कीजिए।

हे परमात्मा अथवा राजा ! हिंसा में प्रवृत्त छली-कपटी को; वैर बढ़ाने वाले निन्दक को पृथक् कीजिए। विवेक के लिए धर्मात्मा को, बल के लिए सेवक को, सृष्टि की अधिकर्ता के लिए सेचन-समर्थ वीर्य सींचने वाले को प्रीति के लिए प्रियवादी को, सुख विशेष संचित करने के लिए अंशों को पूर्ण करने वाले को और सब आनन्दों के लिए विद्वान् को प्रकट कीजिए।

हे जगदीश्वर अथवा हे राजन् ! बड़े तालाबों के प्रबन्ध के लिए धीवर को; समीपस्थ निकृष्ट क्रियाओं के लिए दास को; छोटे जलाशयों के प्रबन्ध के लिए निषाद को; नरसल वाली भूमि के लिए मत्स्यजीवी को; पार की भूमि के लिए नौका को इस पार से उस पार पहुँचाने वाले को; तरने के साधनों के लिए बाँध बाँधने वाले को; शब्दों के लिए व्याध-पुत्र को; श्वानों के लिए भील को; गुहाओं के लिए बहेलिए को; पर्वत-सानुओं के लिए हिंसक को, कुत्सित पुरुषों को पर्वत के लिए उत्पन्न कीजिए।

हे जगदीश्वर अथवा राजन् ! धूर्त को अक्षराज के लिए; आरम्भ में ही दोष देने वाले को कृत के लिए; प्रबन्धक को त्रेता के लिए; अति कल्पना वाले को द्वापर के लिए, स्थिर सभासद को अस्वाद के लिए; गौ को ताड़ित करने वाले को मृत्यु के लिए; गौ-हिंसक को यम के लिए; गौ-हिंसा के प्रायश्चित स्वरूप भिक्षाजीवी को क्षुधा के लिए और ठग के पुत्र को पापकर्म के लिए नियुक्त कीजिए।

प्राप्ति कराने वाले को प्रतिज्ञा करने वाली के लिए; सब ओर से बोलने वाले को घोषणा के लिए; बहुत बोलने वाले को मर्यादा वाले के लिए; गूंगे को मर्यादा रहित के लिए; नीच शत्रु के लिए शंख बजाने वाले को; वन के लिए वन-रक्षक को उत्पन्न कीजिए। और शब्द करने को प्रवृत्त हुए, हल्ला-गुल्ला करने वाले को, कोसने वाले को, बाजे विशेष के बजाने वाले को, वन के जलाने वाले को दूर कीजिए।

हे राजन् ! क्रीड़ा के लिए प्रवृत्त व्यभिचारिणी को; हँसने को प्रवृत्त हुए पागल को; जल-जन्तुओं को मारने में प्रवृत्त हुई कबरे मनुष्य की कन्या को दूर कीजिए। और ग्राम-पथ-दर्शक ज्योतिषी को, वीणावादक, मृदंगवादक, और वंशीवादक को नृत्य के लिए तथा ताली बजाने वाले को आनन्द के लिए नियुक्त कीजिए।

हे परमेश्वर ! अग्नि के लिए मोटे पदार्थ को; पृथिवी के लिए

सर्पादि को; आकाश के लिए नर्तक नटादि को, सूर्य के ताप-प्रकाश के लिए शीत-प्रदेशी मनुष्यों को; चन्द्रमा तथा आनन्द को देने के लिए गौर वर्ण वाले को उत्पन्न कीजिए। और वायु के स्पर्श के लिए भंगी को, क्रीड़ा के लिए गंजे को, राज्य-विरोध में प्रवृत्तों के लिए कबरों को और अन्धकार के लिए प्रवृत्त हुए काले रंग वाले और पीले नेत्रों वाले पुरुष को दूर कीजिए।

एकत्रिंश अध्याय

ऋषि : नारायण !

सहस्रों शिरों, सहस्रों नेत्रों और सहस्रों चरणों वाले ये परम पुरुष पंचभूतों को व्याप्त करते हुए दश अंगुल के बराबर प्रदेश को अतिक्रमण करके स्थित हुए हैं।

वर्तमान विश्व, बीता हुआ विश्व और आगे होने वाला विश्व ये सब परम पुरुष रूप ही हैं और जो अन्न विश्व को प्राप्त होता है, उसका स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही है।

यह त्रिकालात्मक विश्व परम पुरुष की महिमा ही है। यह पुरुष स्वयं तो विश्व से अत्यधिक है, सभी प्राणी-समूह इस पुरुष के चतुर्थ भाग हैं। इस पुरुष का त्रिपात् रूप अविनाशी और अपने ही प्रकाश स्वरूप में स्थित है।

संसार से निर्लेप यह तीन पाद वाला परम पुरुष उच्च-स्थान में स्थित है। इसका एक पाद संसार में बार-बार आवागमन करता है और स्थावर-जंगम प्राणियों को देखता हुआ उनमे व्याप्त होता है।

उस आदि पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई। वह विराट् उत्पन्न होकर विभिन्न रूप वाला हुआ और उससे पृथिवी तथा सप्तधातु वाले देहों की रचना हुई।

उस सर्वात्मा की जिस यज्ञ में प्रजा हुई उस यज्ञ से दधि युक्त घृत उत्पन्न हुआ। उसी वायु से सम्बन्धित गौ-अश्व-हरिणादि पशु उत्पन्न हुए।

उससे ही ऋक्-साम-अथर्व और यजुर्वेद उत्पन्न हुए।

उस यज्ञ-पुरुष से अश्व गर्दभादि ऊपर-नीचे दोनों ओर के दाँतों वाले पशु गौ-भेड़-बकरी आदि उत्पन्न हुए।

सृष्टि के पूर्व उस साधन भूत पुरुष को यज्ञ में संस्कृत करते हुए

मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों ने उसी पुरुष से मानस-योग सम्पन्न किया।

उस विराट् को संकल्प-द्वारा अनेक रूपों में प्रकट किया। उसका मुख क्या हुआ ? उसकी भुजाएँ, जंघाएँ और चरण कौन कहे जाते हैं ? शरीरों की रचना करते हुए वह विराट् पुरुष कितने प्रकार का हो गया ?

ब्राह्मण इसका मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य जंघा और शूद्र चरण रूप हुए।

उसके मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, श्रोत्र से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि प्रकट हुए।

नाभि स अन्तरिक्ष, शिर से स्वर्ग, पाँवों से पृथिवी और श्रोत्र से सब दिशाएँ उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार अन्य लोक भी संकल्प से प्रकट हुए।

इस प्रकार से देव शरीर की प्राप्ति होने पर देवों ने पुरुष रूप को मानस-यज्ञ की हवि मानकर यज्ञ विस्तृत किया। उस यज्ञ में वसन्त ऋतु ऋत, ग्रीष्म समिधा और शरद् ऋतु हवि हुई।

जब देवताओं ने मानस-यज्ञ को विस्तृत करत हुए इसमें पशु रूप की भावना की, तब यज्ञ की सात परिधियाँ हुईं और इक्कीस छन्द इसकी समिधाएँ हुईं।

मानस-यज्ञ के द्वारा देवों ने यज्ञ रूप प्रजापति की पूजा की और वे धर्मधारकों में प्रमुख हुए। जिस स्वर्ग में प्राचीन साध्य देवता निवास करते हैं, उसी स्वर्ग को सिद्ध महात्मा-जन प्राप्त करते हैं।

पृथिवी आदि की रचना के निमित्त रूप पंचभूतों से जिस रस की पुष्टि हुई और जो रस सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, उसी रस और रूप को धारण करते हुए सूर्य नित्य प्रकट होते हैं।

ये महान्, अनुपम आदित्यरूप पुरुष अन्धकार-रहित हैं। उनको जान लेने पर ही मृत्यु को जीता जाता है। आश्रय-प्राप्ति के लिए इससे अन्य कोई मार्ग नहीं है।

सर्वात्मा प्रजापति अजन्मा होते हुए भी गर्भ में प्रविष्ट होकर अनेक रूपों में जन्म लेते हैं। ब्रह्मज्ञानी उन प्रजापति के स्थान को देखते हैं। सम्पूर्ण भुवन उन कारणात्मक प्रजापति ब्रह्म में ही स्थित है।

जो सूर्यात्मक प्रजापति देवताओं के लिए सर्वतः प्रकाशित होते हैं और जो देवों से ही प्रकट किये गये हैं तथा देवों के पूजनीय हैं, उन सूर्य रूप ब्रह्म को हमारा नमस्कार है।

देवताओं ने ज्योति-रूप सूर्य रूप ब्रह्म को प्रकट करके पहले यह कहा कि हे आदित्य ! जो ब्राह्मण तुम्हें अजर-अमर रूप में प्रकट हुए जानते हैं, हम देवता उन ब्राह्मणों के वशवर्ती हैं !

हे ज्योति स्वरूप ब्रह्म ! जो लक्ष्मी (शोभा) सम्पूर्ण विश्व को समृद्ध करती है, वह वैभवरूप लक्ष्मी तुम्हारी ही पत्नी है। दिन-रात दोनों तुम्हारे दो पार्श्व हैं, नक्षत्र तुम्हारा ही रूप है और द्यावा-पृथिवी तुममें व्याप्त हैं। कर्मफल की इच्छा वाले तुम मेरे लिए परलोक की इच्छा करते हुए मुझे मुक्त करने की इच्छा करो।

द्वात्रिंश अध्याय

(सूक्त : १ से १२ तक)

ऋषि : ब्रह्म, मेधाकाम, श्रीकाम।

अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा और शुक्र वही स्वयम्भू ब्रह्म है। जलों और प्रजापति में भी वही व्याप्त है।

उसी विद्युत् के समान तेजस्वी पुरुष से सभी काल प्रकट हुए हैं। इस पुरुष को ऊपर-नीचे, इधर-उधर अथवा मध्य में कहीं भी ग्रहण नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह प्रत्यक्ष देखा ही नहीं जा सकता।

उस आदि पुरुष की कोई प्रतिमा नहीं है। उसके नाम और यश अत्यन्त महान् हैं।

यह प्रसिद्ध देव सब दिशाओं में व्याप्त होकर स्थित है। हे मनुष्यो ! सर्वप्रथम पुरुष ही प्रकट हुआ। वही गर्भ में स्थित होता है। जन्म लेने वाला भी वही है। वह सब पदार्थों में व्याप्त और अनेक मुख वाला है।

जिससे पूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ और जो अकेला ही सर्वलोक व्याप्त है, वह सोलह कला वाला प्रजापति प्रजा से सुसंगत होकर तीनों ज्योतियों का सेवन करता है।

जिस पुरुष के द्वारा वृद्धि देने वाला स्वर्ग लोक बनाया गया, जिसने भूलोक को धारण आदि से दृढ़ किया; जिसने सूर्यमण्डल और स्वर्ग को स्थापित किया, जो अन्तरिक्ष में वृष्टि-रूप जल का स्रष्टा है; हम उस देवता को छोड़ और किसके लिए हवि प्रदान करें।

जिस ब्रह्म ने हवि रूप अन्न के द्वारा प्राणियों की आधार रूप द्यावापृथिवी को उत्पन्न किया, जिसके प्रभाव से ही द्यावापृथिवी के मध्य उदय हुआ सूर्य अधिक शोभा पाता है; हम उसके अतिरिक्त अन्य किसको अपनी हवि प्रदान करें।

सृष्टि के रहस्य को जानने वाले ज्ञानी उस गुहा में (गुप्त-स्थान में) निहित सत्स्वरूप ब्रह्म को देखते हैं; जिसका यह विश्व ही नीड है और जिस ब्रह्म में ही प्रलय काल में सब प्राणी विलीन हो जाते हैं तथा पुनः सृष्टि काल में उसी ब्रह्म से प्रकट होते हैं, वह ब्रह्म सब प्रजाओं में व्याप्त है।

रहस्य को जानने वाला विद्वान् इस ब्रह्म के अविनाशी एवं गुप्त-स्थान में निहित स्वरूप का वर्णन करता है। इस पुरुष के तीन पाद गुप्त स्थान में स्थित हैं, जो उन्हें जानता है, वह पिता के भी पिता के समान है।

वह पुरुष हमारा बन्धु है, वह ही हमारा उत्पन्न-कर्त्ता है, वह ही विधाता है और सब लोकों तथा सब प्राणियों को जानने वाला है। जहाँ मोक्षप्रद ज्ञान की प्राप्ति होती है; ऐसा ब्रह्म स्वर्ग रूप तृतीय धाम है।

जो समस्त भूतों, समस्त लोकों तथा समस्त दिशा-प्रदिशाओं को ब्रह्म मानकर सर्वप्रथमोत्पन्न वेद वाणी का सेवन करते हुए यज्ञ में लीन हो जाता है और जो द्यावापृथिवी को ब्रह्म जानते हुए लोकों, दिशाओं तथा स्वर्गादि को ब्रह्म रूप देखते हुए यज्ञ-कर्मानुष्ठान आदि सम्पन्न करता है, वह अज्ञान से छूटकर ब्रह्मरूप ही हो जाता है।

त्रयस्त्रिंश अध्याय

(सूक्त १ से ९७ तक)

ऋषि : कुत्स, वत्स, वशिष्ठ आदि।

परस्पर विभिन्न रूप वाले कल्याणकारक दिन-रात दोनों ही प्राणियों को दुग्धपान कराते हैं। इनके विचरण करने पर रात्रि में हरे वर्ण के अग्नि और दिन में सूर्य तेजस्वी होते हैं।

देवदूत यह अग्नि यज्ञों में स्थित होने वाले सोम यागादि में स्तुत होने वाले ऋत्विजों के द्वारा यहाँ यज्ञ में प्रतिष्ठित किया गया है। यजमानों का उपकार करने के लिए भृगुओं ने अद्भुत शक्तिशाली अग्नि को घनों में प्रज्वलित किया।

अग्नि में स्थापित एवं मन्त्रों से संस्कृत अग्नि-तेज जब यजमान के यज्ञ में व्याप्त होता है, तब वह अग्नि-तेज अन्तरिक्षस्थ मेघ से निर्दोष जल को उत्पन्न करता है। वह जल वृष्टि-रूप में पृथिवी पर गिरता है।

हे अग्नि! तुम सौभाग्य के निमित्त जल को प्रकट करो और श्रेष्ठ

यश वाले होओ। यजमान दम्पती को प्रीति युक्त करो और उसके शत्रुओं को दबाओ।

सूर्योदय-काल में सविता हम अपराध रहितों को श्रेष्ठ-कर्मों में प्रेरित करें।

सविता देव हवि और स्तुतियों से पूर्ण हमारे यज्ञ में आयें। हे देव-गण ! तुम भी प्रसन्नता से यहाँ आओ और सम्पूर्ण विश्व को अपने द्वारा प्रदत्त वृद्धि से तृप्त करो।

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम आज यहाँ प्रकाशित हो। यह यज्ञस्थान तुम्हारे अधिकार में है।

हे सूर्य ! तुम तरनिरूप हो, विश्व को दृष्टि देने वाले हो और ज्योतिकर्त्ता हो तथा विश्व-प्रकाशक हो।

सूर्य वे महान् देवता हैं, जो विश्व में रहकर ग्रहमण्डल को आकृष्ट करते हुए नियमित रखते हैं। जब सूर्य अपनी हरी किरणें आकाश में फैलाते हैं, तभी रात्रि आकर संसार को ढक लेती है।

द्युलोक की गोद में स्थित सूर्य मित्रावरुण को रूप देते और उनके माध्यम से जगत् को देखते हैं। सूर्य का एक रूप अनन्त ब्रह्म है और एक रूप कृष्ण वर्ण वाला है, उसे दिशाएँ धारण करती हैं।

हे सूर्य ! तुम वास्तव में महान् हो, इसीलिए सब तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे देव ! तुम सर्वश्रेष्ठ हो।

हे सर्य ! तुम धनद होने के कारण भी महान् हो। हे देव ! तुम सर्व-हितैषी और यज्ञ की महिमा रूप हो।।

सूर्य की आश्रित रश्मियाँ ही इन्द्र के धन का सेवन करती हैं और हम उन धनों को अपने भाग के समान धारण करते हैं।

हे देवताओं ! यह सूर्योदय हमें पाप से छुड़ाए। मित्र, वरुण, अदिति सिन्धु, पृथिवी और स्वर्ग हमारी कामना का अनुमोदन करें।

सविता देव अपने रथ पर चढ़कर देवताओं तथा पृथिवीस्थ मनुष्यों को अपने-अपने कर्म में लगाते हैं।

घोर पापों से हमें मुक्त करो और हमें निन्दा से बचाओ।

हे सविता देव ! उदय काल में तुम यज्ञ योग्य देवों के निमित्त यज्ञ भाग प्रेरित करते हो और फिर उदय को प्राप्त होकर अपनी रश्मियों को बढ़ाते हो तथा रश्मियों के अनुयायियों को समृद्ध करते हो।

यज्ञ तुम्हारी प्रीत्यर्थ है, अतः हे आदित्यो ! तुम हमारा कल्याण

करो। हमें श्रेष्ठ मति दो।

हे सविता देव ! तुम सुवर्ण-सदृश जिह्वा वाले होओ। तुम कल्याण-कारी होकर हमारी रक्षा करो। हमें नवीन सुख दो। किसी पापी शत्रु का हम पर प्रभुत्व न हो।

सूर्य-पृथिवी दोनों कर्म-साधक, ज्योति-स्वरूप, महत्परिणामी हैं। ये दोनों यज्ञ को सुन्दर रूप देने वाले और यज्ञ-रक्षक हैं।

हे आदित्य ! मेरी स्तुति रूप वाणी तुम्हें प्रवृद्ध करे। तुम तेजस्वी को जानने वाले विद्वान् तुम्हारी स्तुति करते हैं।

बुद्धिमान् विद्वान् मेरे लिए जिन धनों की कामना करते और प्रशंस-नीय वद-वचनों की अभिलाषा करते हैं तथा बलकारी एवं हवनादि से पुष्ट मेघ मेरे लिए जो सुख पहुँचाता है, वह सब मुझे मिलता है।

सभी वर्ण वाले मनुष्य ईश्वर के सेवक हैं। अदानशील व्यक्ति शत्रु रूप है। धन की रक्षा शस्त्रधारी तथा शत्रु हिंसक देवता करते हैं। ये धन सब ईश्वर के ही हैं।

जो अभीष्ट धन लाभार्थ हवि-दान करता हुआ मित्रा-वरुण की उपासना करता है, वह देवकर्म में तो समृद्ध होता ही है, सर्व-कल्याण भी प्राप्त करता है।

हम दिव्य-बुद्धि से स्तुति करते हुए रक्षा और अभीष्ट प्राप्ति के लिए देवाधिदेव को आहुति करते हैं।

वैश्वानर अग्नि स्वर्ग पृष्ठ में दीप्त और हवि-दान से प्रदीप्त होता है तथा अपने ओज से अन्न-सम्पादन करता हुआ अन्धकार को नष्ट करता है।

हे इन्द्राग्नी ! यह बिना प्राण की उषा पाँव वाले प्राणियों से पहले जग जाती और आ जाती है। बिना शिर वाली होते हुए भी शिर वालों को कर्म-प्रेरणा देती है। वह प्राणियों की वाक्शक्ति को दीप्त करती हुई तीस घड़ियों को एक दिन में लाँघ जाती है।

चतुस्त्रिंश अध्याय

(सूक्त : १ से ५८ तक)

ऋषि : शिव संकल्प।

जागृत पुरुष का जो मन दूर जाता है, वह सुप्तावस्था में भी पुनः दूर चला जाता है। दूर जाने वाले मन और ज्योतिर्मयी इन्द्रियों की

ज्योति एक हो। मेरा मन कल्याणमय विचारों से युक्त हो।

कर्म तत्पर, धीर, मेधावी जन जिस मन के द्वारा यज्ञ में श्रेष्ठ कर्म करते हैं और जो मन शरीरस्थ है, वह ज्ञान में अपूर्व तथा पूजनीय भाव वाला होता हुआ शिव-संकल्प वाला हो।

ज्ञानोत्पादक जो मन चैतन्य, धीर और अविनाशी है, वह सब प्राणियों के हृदय को प्रकाशित करने वाला है। उसके बिना कोई भी कार्य करना सम्भव नहीं। वह मन शिव-संकल्पी हो।

जो अविनाशी मन भूत-भविष्य-वर्तमान सम्बन्धी पदार्थों को ग्रहण करता है और जिसके द्वारा सप्त होता यज्ञ का विस्तार करते हैं, वह मन शिवसंकल्प वाला हो।

जिस मन में ऋचाएँ, साम और यजुः स्थित हैं; जिसमें पहिए में अरों के समान शब्द स्थित हैं; जिसमें प्रजाओं का सब ज्ञान ओत-प्रोत है; वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो।

जो मन मनुष्यों को कार्य में प्रवृत्त करता है और मनुष्यों को प्रेरित करके ऐसे ले जाता है, जैसे सारथि लगाम से वेगवान् रथ को ले जाता है। जरा-रहित अत्यन्त वेगवाला मन हृदय-प्रतिष्ठ है। वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो।

महान् बल के धारक उस अन्न की हम स्तुति करते हैं, जिसके बल से इन्द्र ने वृत्र को मारा।

हे अनुमति ! हमारी बात को मानो और हमारा कल्याण करो। हमारी संकल्प-सिद्धि के लिए हमारी आयु-वृद्धि करो।

हे अनुमति ! हमारे यज्ञ को देवों के पास पहुँचाओ। हवि-वाहक अग्नि हमारे यज्ञ को देवों तक पहुँचाएँ। अनुमति और अग्नि यजमान को सुख दें।

ये पृथिवी-पुत्र अग्नि विज्ञान-कर्म-सहित प्रकट हुए हैं। इनके प्रदीप्त बल को अरणि धारण करे। ये अरणियाँ इच्छा करने पर अग्नि को तुरन्त उत्पन्न करती हैं।

हे जातवेदा अग्नि ! पृथिवी की नाभि उत्तरवेदी के मध्य में हवि वहन करने के लिए हम तुम्हें स्थापित करते हैं।

संग्राम में शत्रु-विजेता, सेनाओं के पालन-कर्त्ता, बलदाता, बलों के रक्षक, श्रेष्ठ और सुन्दर निवास वाले तथा यशस्वी जन, हे सोम ! तुम्हारा अनुमोदन करें।

इस सोम के लिए जो यजमान हवि देता है, उसको यह सोम गोदान

करता है, अश्वदान करता है तथा उसे कर्म-कुशल सद्गृही, और वीर पुत्र प्रदान करता है।

हे सोम ! तुम दिव्य-बल वाले हो, हमें श्रेष्ठ धन दो। तुम्हारे दान अरोक हों। तुम बल वाले कार्यों के लिए ईश्वर रूप हो। हमें दोनों लोकों में सुख मिले, ऐसा यत्न करो।

हे सोम ! तुम इन सभी ओषधियों को प्रकट करते हो। तुमने जलों और गौओं को प्रकट किया है।

हिरण्य दृष्टि वाले सविता देव हविदाता यजमान को वरणीय धन दें। ये सविता देव आठों दिशाओं, तीनों लोकों और सातों समुद्रों को प्रकाशित करते हैं।

सविता विविध प्रकार से देखने वाले हैं। वे द्यावापृथिवी के मध्य सूर्य को प्रेरित करते हैं।

सुखदाता और ऐश्वर्यवान् सविता देव सब दोषों को देखते हुए राक्षसादि का शमन करते हुए उदय होते हैं। वे हमारे अभिमुख हों।

हे सविता देव ! प्राचीन काल में जो रजरहित मार्ग निर्मित हुए हैं, उन मार्गों से आप हमें प्राप्त होओ और हमारी रक्षा करते हुए हमें अपना बनाओ।

सविता देव अपनी किरणों से लोकों को स्तम्भित किये हुए हैं। ये देवों और मनुष्यों को स्वकर्म में लगाते और सब देखते हुए आगमन करते हैं।

हे रात्रि ! तुम पृथिवी लोक को मध्य लोक के स्थानों से सर्वतः पूर्ण करती हो। तुम्हारी महिमा से ही घोर अन्धकार छा जाता है।

हे उषा ! तुम हमें उस अद्भुत और प्रसिद्ध धन को दो, जिससे हम अपने पुत्र-पौत्रादि का पालन करने में समर्थ हों।

हम प्रातः काल अग्नि देव का आह्वान करते हैं तथा इन्द्र, मित्रा-वरुण, अश्विद्वय, भगदेव, और रुद्रदेव का भी आह्वान करते हैं।

हम प्रातः काल सूर्य का आह्वान करते हैं, जो सूर्य संसार के धारक हैं और निर्धन-राजा-रोगी सभी जिन्हें कामना-सिद्धि के लिए चाहते हैं।

हे भगदेव ! तुम अविनाशी धन के दाता हो, अतः धन-दान द्वारा हमारी बुद्धि को उत्कृष्ट करो। हमें गो-अश्वादि से समृद्ध करो। हम पुत्रादि से युक्त हों।

हे भगवान ! हम सर्योदय काल, सर्यास्तकाल और दिन के मध्य में

धनवान् रहें और देवताओं के सदा प्रिय रहें ।

हे देवगण ! हमारे लिए भगदेव धन दें । हे भगदेव ! प्रसिद्ध तुमको सभी आहुत करते हैं । तुम हमारे सब कार्यों की सिद्धि करो ।

उषाभिमानी देव सबके लिए एक से होते हैं और नियमित होते हैं । भगदेवता श्रेष्ठ धनों को हमारे लिए लायें ।

संसार के पालक अच्युत विष्णु ने तीन पदों को क्रमित किया । उन्हीं पदों में उन्होंने सब धर्मों को धारण किया ।

विष्णु का जो परम पद है, उसे निष्काम कर्म करने वाले और कर्मों में आलस्य न करने वाले ब्राह्मण ही प्राप्त करते हैं ।

सब प्राणियों की आश्रय और विस्तीर्ण पृथिवी मधुर-रस का दोहन करने में समर्थ है । द्यावापृथिवी श्रेष्ठ रूप वाली, जरारहित, बीज रूप है और वरुण की शक्ति से दृढ़ हुई है ।

यजमान की सत्यप्रिय वाणीरूप स्तुति और सम्मान योग्य फलप्रद यह स्तोम हे मरुद्गण ! तुम्हें निवेदित है । हमारी आयु वृद्धि करो और हम जीवनदाता-बलसाधक अन्न प्राप्त करें ।

सप्तर्षियों ने पूर्व ऋषियों के सदृश सृष्टि-यज्ञ किया । उसी प्रकार, जैसे इच्छित स्थान पर जाने की कामना वाला रथी अश्वों को लगाम से ले जाता है ।

यह आयुवर्धक, कान्तिदाता, धनरूप, पुष्टि-वर्धक, ज्ञानद्वारा उत्पन्न, तेज-प्रकाशक सुवर्ण, विजय के निमित्त मेरा आश्रित हो ।

जो अलंकार रूप में स्वर्ण को धारण करता है, वह दीर्घायु होता है । वह दिव्य लोक में अधिक काल निवास करता है ।

दक्षवंशीय ब्राह्मणों ने बहुत सेना वाले राजा के जिस सुवर्ण को बाँधा, उसी सुवर्ण को मैं अधिक काल (सौ वर्ष) तक जीवित रहने के लिए बाँधता हूँ ।

यह स्तुति बुद्धिरूप जुहू-द्वारा सनातन काल से प्रकाशवान् आदित्यों को समर्पित है । मित्र, अर्यमा, भग, त्वष्टा, वरुण, दक्ष भी हमारी स्तुति रूप वाणी को सुनें ।

शरीर में स्थित प्राणादि रूप सप्तर्षि सदा प्रमाद-रहित रहते हुए देह की रक्षा करते हैं । ये सोते हुए देहधारियों के हृदयों में भी सदा व्याप्त होते हैं । इन ऋषियों के गमनकाल में सुषुप्ति में प्राणियों की रक्षारत प्राण-अपान ही जागृत रहते हैं ।

ब्रह्मणस्पते ! उठो, जिससे हम देवताओं की कामना करते हुए तुम्हारे आगमन की प्रार्थना करें । श्रेष्ठदान वाले मरुद्गण और इन्द्र भी तुम्हारे साथ रहें ।

तुम्हीं इस सूक्त-संसार के शासक हो । अतः हमारी स्तुति को जान हमारे पुत्रादि पर प्रसन्न होओ । देवगण जिस कल्याण को पुष्ट करते हैं, वह कल्याण हमें मिले ।

पंचत्रिंश अध्याय

(सूक्त : १ से २२ तक)

ऋषि : आदित्य, शुचीक, शुनःशेप आदि ।

देव-द्वेषी, परधनापहारी और दुःखदाता राक्षस यहाँ से चले जाएँ । यह स्थान सोमाभिषवकर्त्ता इस मृत यजमान का है ।

हे यजमान ! सविता तुम्हारे शरीर के लिए पृथिवी पर स्थान देने की इच्छा करें । वे स्थान तेरे लिए प्रकाशवान् और उपयोगी हों ।

वायु देवता, सवितादेव, अग्निदेव, सूर्यदेवता इस स्थान को पवित्र करें ।

हे ओषधियो ! तुम अश्वत्थ एवं पलाश वृक्ष पर रहती हो । तुम यजमान पर अनुग्रह करने के कारण उसकी कृतज्ञता की पात्र हो ।

हे यजमान ! सवितादेव तेरे शरीर को पृथिवी की अंक में स्थापित करें । हे पृथिवी ! तुम यजमान के लिए कल्याणकारिणी होओ ।

हे मृतक पुरुष ! प्रजापति की स्मृति में तुम्हें जल के निकटवर्ती स्थान में स्थापित करता हूँ । प्रजापति देवता हमारे पापों को दूर करें ।

हे मृत्यु ! तुम लौट जाओ । तुम्हारा मार्ग देवयान से भिन्न पितृयान है । तुम मेरी संतान को भी हिंसित न करना ।

हे यजमान ! तुम्हारे लिए वायु कल्याणकारिणी हो, सूर्य इष्ट, अग्नि कल्याणकारी हों । वे तुम्हें सन्तप्त न करें ।

दिशाएँ तुम्हें सुख दें । जल, अन्तरिक्ष एवं समस्त दिशाएँ तुम्हारा ..ल्याण करें ।

हे मित्रो ! यह पाषाण जैसे कठोर प्रवाह वाली (कर्म) नदी प्रवाहित है । अतः शुभकर्माभिमुख होकर पार करने का यत्न करो ।

इसके पार करने की बाधाओं को दूर करो। सुखकारी उत्तम अन्नादि का भोग करते हुए दुःखों का उल्लंघन करो।

हे अपामार्ग! जैसे तुम रोगों को दूर करते हो, वैसे हमारे मन से पापों को भी दूर करो, दुष्ट क्रिया को दूर करो, बाह्य इन्द्रियों से बनने वाले पाप को दूर करो, निद्रा में होने वाले बुरे विचार को भी दूर करो।

जल और ओषधियाँ हमारे मित्र हों और हमारे शत्रुओं को ये दोनों शत्रु के समान हों।

वृषभ को हम मंगलार्थ स्पर्श करते हैं। हे अनड्वान्! तुम हमें पार लगाओ। इन्द्र के समान तुम भी देवों को धारण करने वाले होओ।

हे मनुष्यो! जैसे सूर्य को देखते हुए धर्मात्मा सुख को प्राप्त होते हैं, वैसे ही धर्मात्मा परमात्मा को जानकर मोक्ष पाते और आनन्दित होते हैं।

इन जीवों के परिश्रम से कमाये धन को आम कोई न ले, मैं परमेश्वर इस मर्यादा को व्यवस्थित करता हूँ। शुभ आचरण करते हुए तुम सौ वर्ष तक जिओ।

हे अग्नि (परमेश्वर!) आप अन्नादि पदार्थों अथवा अवस्थाओं को पवित्र करते हैं। हमारे लिए बल और विज्ञान को प्राप्त कराइए तथा कुत्तों के समान दुष्ट प्राणियों को ताड़ना दीजिए।

हे पृथिवी! तू हमारे लिए सर्वतः कंटकहीन और सुखद हो और जल हमारे लिए कल्याणप्रद बनकर हमारे पापों को दूर करें।

हे अग्नि! तुम यजमान के द्वारा प्रकट किये गये हो। तुम इसे स्वर्ग प्राप्त कराओ। तुम्हारे लिए दी गयी यह आहुति स्वाहुत हो।

षट्त्रिंश अध्याय

(सूक्त : १ से २४ तक)

ऋषि : दध्यङ्ङाथर्वण, वामदेव, मेधातिथि।

मेरे आत्मा में प्राण और अपान दृढ़ हों। वाणी बलवती हो। मैं शरीर बल को प्राप्त करूँ। मैं मनन कर्त्ता वेद-वाणी को प्राप्त होऊँ। मैं उत्तम नेत्रों और श्रेष्ठ कानों को प्राप्त करूँ।

मेरे नेत्रों के दोष तथा अन्तःकरण की व्याकुलता को बृहस्पति (परमात्मा) दूर करें।

उन सविता देव के वरणीय तेज का हम ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में लगाएँ।

दिन-रात्रि, इन्द्राग्नी, इन्द्र-वरुण, इन्द्र-पूषा और इन्द्र-सोम हमारा कल्याण करें और इन्द्राग्नी अपने रक्षा साधनों से हमारा मंगल करें।

हे प्रभो ! जिस रूप से तुम हमारा कल्याण करना चाहते हो, उस रूप के द्वारा हमें अभय प्रदान करो। हमारी सन्तान और पशुओं के लिए कल्याणकारी होओ।

वे देवताओं के चक्षुरूप सूर्य पूर्व दिशा में उदित होते हैं। उनकी कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें-सुने, बोले,, जिएँ, अदीन हो और सौ वर्ष शरद् ऋतुओं को पूर्ण करें।

सप्तत्रिंश अध्याय

(सूक्त १ से २१ तक)

ऋषि : दध्यङ्ङाथर्वण।

हे अभ्रे ! सवितादेव की अनुज्ञा में स्थित होकर अश्विद्वय की भुजाओं और पूषादेव के हाथों के द्वारा तुम्हें ग्रहण करता हूँ। तुम शत्रु-रहित होओ।

महिमामय, ज्ञानी यजमान के ऋत्विज आदि अपने मन को तथा अपनी बुद्धि को भी यज्ञ-कर्म में लगाते हैं। सर्वज्ञ ईश्वर ने उनको समर्थ किया है। उन सविता देव ईश्वर की स्तुति भी महिमामयी है।

हे दिव्य द्यावापृथिवी। देव-यज्ञ के इस स्थान में आज तुम्हारी अंश रूप मृत्तिका और जल को ग्रहण कर यज्ञ सम्पादित कर रहा हूँ। हे मृत्पिण्ड ! यज्ञ के मुख्य कार्य के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ।

हे उपजिह्वकाओ ! तुम प्राणियों में प्रथमोत्पन्न हो। तुमको ग्रहण कर देव-पूजन-स्थान में यज्ञ के शिररूप (प्रारम्भ) का सम्पादन कर रहा हूँ। यज्ञ के शिर रूप में तुम्हें ग्रहण करता हूँ।

प्रारम्भ में यह पृथिवी सामान्य प्रदेश मात्र थी। अब इसे ग्रहण कर देवभाग स्थान रूप में यज्ञ के शिर का सम्पादन करता हूँ। यज्ञ के निमित्त तुम्हारा ग्रहण करके तुम्हें यज्ञ के मुख्य कार्य के लिए लेता हूँ। हे पूतिकाओ ! तुम इन्द्र के ओज रूप हो। तुम्हें ग्रहण करके पृथिवी के देवार्चन-स्थान में यज्ञ के शिर रूप (प्रारम्भ) का सम्पादन करता हूँ। यज्ञ के मुख्य कार्य-सम्पादनार्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे गवेधुकाओ ! तुम्हें यज्ञ के शिर रूप में स्पर्श कर रहा हूँ।

ब्रह्मणस्पति इस यज्ञ में आयें। दिव्य-सत्यवाणी यहाँ आयें। देवगण

हमारे शत्रु-नाशक हों। जनहितकारी देव यज्ञ-भाग को प्राप्त करें। हे सम्भारी! तुम्हें यज्ञ के लिए ग्रहण करता हूँ और यज्ञ के शिर रूप में स्थापित करता हूँ। हे महावीर! तुम्हें यज्ञ के शिर-साधन-कार्य के निमित्त ग्रहण करता हूँ।

हे महावीर! तुम यज्ञ के शिर के समान हो अतः मैं तुम्हें स्पर्श करता हूँ। तुम्हें यज्ञ के प्रधान कार्य के लिए स्पर्श करता हूँ। यज्ञ के शिर रूप तुम्हें यज्ञ के प्रधान कार्य के लिए चिकना करता हूँ। यज्ञ के निमित्त चिकना करता हूँ।

हे महावीर! पृथिवी के देवार्चन स्थान में यज्ञ के शिर रूप में तुम्हें स्थापित करता हूँ और धूप देता हूँ। यज्ञ के प्रधान कार्य के लिए तुम्हें धूप देता हूँ। यज्ञ कर्म के निमित्त, यज्ञ के प्रधान कार्य के निमित्त तुम्हें पकाता हूँ—यज्ञ के शिर रूप कार्य के लिए तुम्हें पकाता हूँ।

हे महावीर! ऋजु देवता की तथा वायु, पृथिवी और अग्नि की प्रसन्नता के लिए तुम्हें पकाकर निकालता हूँ। तुम्हें यज्ञ के लिए अजा-दुग्ध से सींचता हूँ—यज्ञ के लिए सींचता हूँ—यज्ञ रूपक के लिए सींचता हूँ।

हे महावीर! यज्ञ की प्रसन्नता के लिए तुम्हारा प्रोक्षण करता हूँ। यज्ञ कार्य के लिए और सूर्य के तेज के लिए तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ। सविता देव तुम्हें घृत से लपेटें। हे रजत! महावीर को पृथिवी के राक्षसों से रक्षित कर। हे महावीर! तुम आभारूप और तप हो।

हे पृथिवी! पूर्व दिशा में राक्षसों से अहिंसित रहती हुई तुम अग्नि की रक्षा में स्थित रहकर मेरे लिए आयुदायिनी बनो। दक्षिण में इन्द्र के स्वामित्व में रहती हुई पुत्रवती होकर मेरे लिए पुत्रदायिनी बनो। पश्चिम में सविता के स्वामित्व में रहती हुई सुखदायी बनकर मुझे सुख-दात्री बनो। उत्तर में धाता के स्वामित्व में रहती हुई तुम यज्ञ योग्य हो अतः मुझे धन और पुष्टि दो। ऊर्ध्व दिशा में बृहस्पति के स्वामित्व में रहती हुई तुम धारयित्री हो, अतः मेरे लिए बलदायनी होओ। हे दक्षिण भूमि! तुम मेरे मन की कामनाओं को पूर्ण करो। हे धर्म! तुम स्वाहाकार हो, तुम्हें मरुद्गण आश्रय दें। हे सुवर्ण! तुम देव-पालक बनो। धर्म में मैं प्राण-उदान-व्यान को मधुरूप में स्थापित करता हूँ।

दिव्य महावीर सविता देव से सुसंगत होता है। दिव्य, ग्राहक, बुद्धिपालक प्रजापति धर्म और सूर्य से संगत होकर प्रकाशित होता है।

अग्नि के समान धर्म अग्नि से संगत होकर सविता देव से एकाकार होता है और सूर्यरूप से प्रकाशित होता है। स्वाहाकार युक्त धर्म तेज से संगति करता है और सविता रूप होकर सूर्य के साथ प्रकाशित होता है।

दिव्य-तेज बाण देवधारक, अविनाशी, तप से प्रकट धर्म; भूमिपर सुशोभित होता है, वह हमें यज्ञ में देवताओं को प्राप्त कराएँ।

अनेक दिशाओं का पालक वह देवलोकों के मध्य स्थित होता है। अन्तरिक्ष में अच्युत रूप से स्थित और देवमार्गों से उसे आते-जाते मैं देखता हूँ।

सर्व-लोक-पालक, सबके मनों के स्वामी, सबकी वाणियों के प्रेरक हैं—धर्मरूप देव। हे धर्मरूप देव! तुम देवताओं का पालन करो। हे अश्विद्वय! इस यज्ञ में देवताओं को तृप्त करने वाले 'मधु' संज्ञक तुम्हें 'मधु' कहा गया है, अतः तुम्हारे लिए यह मधु भेंट है।

हे देव! हृदय की स्वस्थता के लिए तुम्हारी स्तुति करता हूँ। स्वर्ग प्राप्ति एवं सूर्य की तृप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम इस यज्ञ को देवों तक पहुँचाओ।

हे देव! तुम ही हमारे पिता हो। तुमने ही हमें प्रेरणा दी है, अतः हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। हमें हिंसित न करना।

दिवसकर्म से युक्त प्रीति वाली होकर अपने तेज से तेजस्विनी यह श्रेष्ठ हवि प्राप्त हो। रात्रिकर्म से प्रीति युक्त वाली होकर अपने तेज से श्रेष्ठ तेजस्विनी यह हवि प्राप्त हो।

अष्टात्रिंश अध्याय

(सूक्त : १ से २८ तक)

ऋषि : अथर्वण, दीर्घतमा।

हे रज्जु! सविता देव की आज्ञा में स्थित और अश्विनी-कुमारों की भुजाओं तथा पूषा के हाथों से तुझे ग्रहण करता हूँ। तू अदिति रूपा धेनु की मेखला है।

हे इन्द्र और अदिति रूपिणी धेनु! हे वाणीरूपिणी गौ! हे अमुक नाम वाली धेनु! यहाँ आओ।

हे रज्जु! तू अदिति रूपिणी गौ की मेखला है। तू अदिति रूपिणी

गौ के शिर के समान स्थित है।

हे दुग्ध ! तुम अश्विद्वय सरस्वती और इन्द्र के निमित्तक्षरित होओ।

हे सरस्वती रूपिणी गौ ! तुम्हारा थन सुखपूर्वक स्थित रहने वाला कल्याणकारी, ऐश्वर्य का कारण तथा श्रेष्ठ फल देने वाला है।

हे महावीर ! द्यावापृथिवी की प्रसन्नता के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे धर्म ! मैं इस महावीर रूप आकाश में तुम्हें ग्रहण करता हूँ। यह वषट्कार युक्त आहुति स्वाहुत हो।

हे धर्म ! प्राणियों को उत्पन्न करने वाले वायु देव तुम्हें सुहुत करते हैं। हे धर्म ! सचेष्ट करने और रक्षा करने, संताप नाश करने वाले वायु के लिए तुम्हें सुहुत करते हैं।

हे धर्म ! वसु, रुद्र और आदित्य युक्त एवं शत्रु-नाशक इन्द्र के लिए तुम स्वाहुत हो। हे धर्म ! ऋभु, विभु युक्त और बाज युक्त सविता, विश्वेदेवा और वृहस्पति के लिए तुम स्वाहुत हो।

हे धर्म ! अंगिराओं और पितरों-सहित यम के लिए स्वाहुत हो।

इस यज्ञ में दक्षिण की ओर बैठे हुए अध्वर्यु ने सब दिशाओं एवं सब देवों का पूजन किया।

हे महावीर ! यज्ञ को भली प्रकार स्वर्ग में स्थापित करो। यज्ञ हितैषी अग्नि के लिए यह आहुति स्वाहुत हो।

पूषा, शब्दवान् प्राणी, ऊर्ध्व बर्हिवालों, पितरों और द्यावापृथिवी के लिए यह आहुति स्वाहुत हो।

स्तुत रुद्र के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। ज्योति से ज्योति सुसंगत हो। दिन, रात्रि और प्रजा के तेज सुसंगत हों, यह आहुति स्वाहुत हो।

हे धर्म ! स्वर्ग में प्रथित गायत्री छन्द और यज्ञ में विशिष्ट तुम्हारी दीप्ति प्रवृद्ध हो। हमारी यह आहुति स्वाहुत हो।

हे धर्म ! क्षत्रियों और ब्राह्मणों की बल-वृद्धि के तथा यज्ञ के फल सिद्धि निमित्त हम तुम्हारा अनुगमन करते हैं।

ये चारों दिशाएँ जो सत्य रूप एवं यज्ञ की नाभि रूप हैं तथा आयुदा हैं, हमें पूर्णायु दें, हमें समृद्ध करें।

हे धर्म ! तुम अपने पुष्टिकारक रूप में प्रवृद्ध होओ। हम प्रवृद्ध एवं पुष्ट हों।

विद्युदग्नि मित्र के समान दर्शनीय, वृष्टि का कारण, शब्दकारी, जलों का निधि रूप और सूर्य सम प्रकाशवान् है।

जल और ओषधि हमारे लिए श्रेष्ठ मित्र हों। हमारे शत्रुओं को ये जल और ओषधियाँ शत्रु रूप हो जायँ।

अन्धकार युक्त इस लोक से परे उत्तम स्वर्ग लोक को देखते हुए, योगी जन श्रेष्ठ रूप को प्राप्त हुए।

तीन दीप्ति वाला धर्म अपने सुशोभित तेज के सहित ब्रह्म ज्योति से सुसंगत हो और मुझमें प्रतिष्ठित हो।

हे कान्तिप्रद ! हे सुखकारी धर्म ! तुम्हारे मधुर अंश को मैं प्राप्त करता हूँ। प्रजापति, इन्द्र के पान से अवशिष्ट अंश का मैं पान करता हूँ।

एकोनचत्वारिंशत् अध्याय

(सूक्त : १ से १३ तक)

ऋषि : दीर्घतमा।

सर्वान्धपति हिरण्यगर्भ के सहित प्राणों के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, स्वर्ग को पाने के लिए और सूर्य के लिए यह आहुति स्वाहुत हो।

दिशाओं, चन्द्रमा, नक्षत्रों, जलों, वरुण, नाभि देवता और शोधक देवता की प्रसन्नता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो।

वाणी देवता, प्राण की प्रीति, चक्षुओं की प्रीति एवं प्रसन्नता, श्रोत्रों की प्रीति एवं प्रसन्नता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो।

मैं मन की प्रसन्नता, इच्छा-पूर्ति को पाऊँ और वाणी के सत्य-व्यवहार की क्षमता को पाऊँ। पशुओं से मेरे घर की शोभा हो, अन्न से श्रेष्ठ स्वाद मुझे मिले तथा लक्ष्मी और सुयश मेरे आश्रित हों।

विकराल, भीम, घोर शब्दकारी, कम्पित करने वाले, सबका तिरस्कार करने वाले, सबसे संगत होने वाले और सबके क्षेपणकारी वायु देवता की प्रसन्नता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो।

हृदय के एवं हृदयाग्र के द्वारा अग्नि देवता को प्रसन्न करता हूँ। सम्पूर्ण हृदय से पशुपति को, यकृत-खण्ड से भगदेवता को, हृदयास्थि विशेष से शर्म देव को, आधारास्थि से ईशान देव को, पार्श्वास्थि से महादेव को और स्थूल आँत से उग्र देवता को प्रसन्न करता हूँ।

यम के लिए, अन्तक के लिए, मृत्यु के लिए, ब्रह्म के लिए, ब्रह्महत्या

के लिए, विश्वेदेवों के लिए और द्यावापृथिवी के देवताओं के लिए एवं उक्त प्रत्येक के लिए पृथक्-पृथक् दी गयी ये आहुतियाँ स्वाहुत हों।

चत्वारिंशत् अध्याय

(सूक्त : १ से १७ तक)

देवता : आत्मा।

संसार में जो भी पदार्थ हैं, उनमें ईश्वर व्याप्त है, वे उसी के हैं। अतः उनका त्याग-भावना से भोग करो। किसी के धन का लोभ न करो।

इस लोक में धर्मयुक्त कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। इससे भिन्न दूसरा मार्ग नहीं है। निष्काम भाव से कर्म करने वाला कर्म से लिप्त नहीं होता।

जो काम्य-कर्म में लगे रहकर आत्मा का तिरस्कार करते हैं, वे देह-त्याग कर असुरयोनि में जाते हैं और अज्ञान से आवृत वे बार-बार जन्म-मरण प्राप्त करते हैं।

आत्मा अपने में ही सदा स्थित, एकाकी, मन से भी वेगवान् और सर्वप्रथम प्रकट होने वाला है तथा वह क्रियारहित भी इतना सक्रिय है कि सबका अतिक्रमण करता है। आत्म-तत्त्व के द्वारा ही अन्तरिक्ष में वायु जलों को धारण करता है।

वह आत्मा चलता-फिरता-सा लगता है; पर चलता नहीं। वह दूर भी है और पास भी है। वह शरीर में वास करता है और शरीर के बाहर भी है।

जो सब प्राणियों को अपने में (आत्मा में) और सब प्राणियों में अपने को (आत्मा को) देखता है, वह सन्देह में नहीं पड़ता।

जब वह सब प्राणियों को एक ही जान लेता है, तो फिर उसको मोह-शोक नहीं होते।

परमात्मा सर्व शक्तिमान् शरीररहित, दोषरहित, शुद्ध और पाप-रहित है। वह सर्व-व्याप्त, सर्वज्ञ, सनातन और सबकी रचना करने वाला है।

जो लोग परमेश्वर को छोड़कर अन्य की उपासना करते हैं, वे अज्ञानान्धकार में प्रविष्ट होते हैं और जो व्यसनों में रत हैं, वे और भी अधिक अन्धकार में पड़े हैं।

ब्रह्म की उपासना का फल और है और जड़ जगत् की उपासना का फल और है, ऐसा विद्वान् बताते हैं।

जो ज्ञानी आत्मा-परमात्मा को एक समझता है, वह मृत्यु से पार होकर अमृत हो जाता है।

जो निष्काम कर्म छोड़ सकाम कर्म करते हैं, वे अज्ञान में पड़े हैं २ जो ज्ञानयुक्त होकर भी भेदात्मक सकाम उपासना करते हैं, वे और भी अधिक अज्ञानी हैं।

ज्ञानयुक्त कर्म का और फल है तथा अज्ञानयुक्त किये गये कर्म का और फल विद्वानों ने बताया है।

जो विद्या रूपी ज्ञानी और अविद्या रूपी कर्म दोनों को जानता है, वह कर्म के द्वारा मृत्यु को पार करता और ज्ञान के द्वारा अमृत को प्राप्त होता है।

हे जीव ! तू शरीर छूटते समय ईश्वर का स्मरण कर, अपने स्वरूप का स्मरण कर, अपने किये का स्मरण कर और यह जान कि शरीर अन्त में भस्म होने वाला ही है।

हे अग्नि (परमात्मा) ! तुम हमारे सब कर्मों के ज्ञाता हो अतः हमें निष्काम करने वालों को मुक्ति प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ मार्ग से ले चलो पापों को हमसे दूर करो। शरीर का अन्त हो जाने के कारण हम तुम्हारे लिए कर्म करने में असमर्थ हैं। तुम्हारे लिए हम प्रणाम करते हैं।

तेज के आवरण से सत्य का मुख ढका हुआ है। आदित्य रूप में जो पुरुष (ब्रह्म) प्रत्यक्ष विद्यमान है, वह मैं ही हूँ। ओंकार आकाश के समान व्यापक है, वही ब्रह्म है।

A.H.W.
Sameer Series

वेद हमारे सबसे पुराने और महत्वपूर्ण ग्रंथों में से है और यजुर्वेद उनमें एक विशेष स्थान रखता है। इस काल की संस्कृति व समाज के बारे में हमें वेदों से काफी जानकारी मिलती है। पाठकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत है सरल सुबोध भाषा में यजुर्वेद सार।

यजुर्वेद

डायमंड पाकेट बुक्स